

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य-लेखन का आलोचनात्मक अध्ययन

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध



शोध-निर्देशक

डॉ. अरविंद सिंह तेजावत

शोधार्थी

पारुल यादव

अनुक्रमांक: 1504

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग

भाषा, भाषा विज्ञान, संस्कृति एवं विरासत संस्थान

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

जांट-पाली, महेन्द्रगढ़-123031

पंजीयन संख्या : CUH/35/2012

वर्ष : 2016

घोषणा-पत्र

मैं **पारुल यादव** यह घोषणा करती हूँ कि डॉ. अरविंद सिंह तेजावत के शोध निर्देशन में ‘गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य-लेखन का आलोचनात्मक अध्ययन’ विषय पर पीएच.डी.(हिंदी) की उपाधि के लिए शोध प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ। मेरा शोध कार्य पूर्णतः मौलिक है और यह अन्यत्र अप्रकाशित है। यह पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से किसी भी संस्था अथवा विश्वविद्यालय में किसी भी उपाधि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस शोध प्रबंध के लेखन में प्रयुक्त संदर्भ पुस्तकों का यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है।

शोधार्थी

पारुल यादव

अनुक्रमांक -1504

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

जांट-पाली, महेन्द्रगढ़

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **पारुल यादव** ने मेरे निर्देशन में पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु 'गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य-लेखन का आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक पर शोधकार्य किया है। यह शोधकार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है।

मैं शोध-प्रबंध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत कर इसे मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

शोध निर्देशक

डॉ. अरविंद सिंह तेजावत

सहायक प्रोफेसर

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग

भाषा, भाषाविज्ञान, संस्कृति एवं विरासत संस्थान

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

जांट-पाली, महेन्द्रगढ़

अनुक्रमणिका

भूमिका	I-V
अध्याय	पृष्ठ सं.
प्रथम अध्याय : हिंदी व्यंग्य का उद्भव और विकास	1-54
1.1 व्यंग्य की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप	
1.2 व्यंग्य की परिभाषा	
1.3 हास्य का स्वरूप	
1.4 हास्य की परिभाषा	
1.5 हास्य और व्यंग्य में संबंध एवं अंतर्विभेद	
1.6 हिंदी साहित्य में व्यंग्य लेखन की परम्परा	
द्वितीय अध्याय : गोपाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व और कृतित्व	55-80
2.1 जीवन वृत्त	
2.2 व्यक्तित्व	
2.3. कृतित्व	
तृतीय अध्याय : गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में सामाजिक चेतना	81-123
3.1 वर्ग विषमता	
3.2 संबंधों में बदलाव	
3.3 नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण	
3.4 सामाजिक रूढ़ियाँ	

- 3.5 शिक्षा संबंधी
- 3.6 साहित्य संबंधी
- 3.7 कानून व्यवस्था

चतुर्थ अध्याय : गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार का
उद्घाटन 124-179

- 4.1 राजनीतिक व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन
- 4.2 प्रशासन संबंधी व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन

पंचम अध्याय : गोपाल चतुर्वेदी की व्यंग्य शैली: एक आलोचनात्मक अध्ययन
180-203

- 5.1 वर्णणात्मक शैली
- 5.2 पत्र शैली
- 5.3 पैरोडी शैली
- 5.4 संवाद शैली
- 5.5 साक्षात्कार शैली
- 5.6 प्रश्नोत्तर शैली
- 5.7 अन्योक्ति शैली
- 5.8 रेखाचित्र शैली

5.9 विवरणात्मक शैली

5.10 मिथकीय शैली

5.11 फंतासी शैली

उपसंहार	204-209
परिशिष्ट	210-217
संदर्भ ग्रन्थ सूची	218-225

भूमिका

जीवन और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। इसी धारणा पर मैंने गोपाल चतुर्वेदी की व्यंग्य रचनाएँ पढ़ी तो भावना और दृढ़ हो गयी कि व्यंग्य मानव जीवन के बिल्कुल करीब है। व्यंग्य संवेदनशील एवं सत्यनिष्ठ मन द्वारा विसंगतियों पर कि गयी प्रतिक्रिया है। अतः जीवन में विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं का एहसास ही व्यंग्य को जन्म देता है। यह भी जरूरी है कि व्यंग्यकार का स्वयं का जीवन भी आदर्शों और नैतिक मूल्यों की कसोटी पर खरा हो। एक व्यंग्यकार जब समाज की स्वयं से तुलना करता है तो जहां उसे हल्कापन दिखता है वहां उस पक्ष पर वह व्यंग्य करता है। यदि वह स्वयं को भी नैतिकता और आदर्शों से परे पाता है तो आत्मव्यंग्य भी करता है। वास्तव में एक सफल व्यंग्यकार वही है जो बेईमानी, आडम्बरों और विसंगतियों पर तीखा प्रहार कर सके, चाहे ये बेईमानी, आडम्बर और विसंगतियां स्वयं की ही क्यों न हो। गोपाल चतुर्वेदी का लेखन ऐसा ही है। उनके लेखन में यथार्थवादी मान्यताएं स्पष्ट हैं और उनके व्यंग्य समाज में व्याप्त विसंगतियों का दर्पण है, अतः इसी कारण मैंने उनके व्यंग्यों को अपने विषय के रूप में चुना।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य एक शैली है, व्यंग्य एक अभिव्यक्ति प्रणाली है, आदि बातें आलोचक कहते आ रहे हैं। किन्तु आज हिंदी में व्यंग्य एक आधुनिक विधा है। स्वतान्त्र्योत्तर काल के अनेक वैशिष्ट्यों में व्यंग्य का विधा के रूप में उदित होना सार्थक एवं सायुक्तिक है। व्यंग्य समाज की विकृत स्थितियों को जितनी स्पष्टता से प्रकट करता है। उतनी साहित्य कि अन्य विधाएँ नहीं कर पातीं। इसीलिए व्यंग्य आज लोकप्रिय हो रहा है।

आज हर पुराने के स्थान पर नए की स्थापना के प्रयास हो रहे हैं। जीवन से सम्बद्ध पुरानी मान्यताएं, परम्पराएँ, मूल्य आदि का विघटन हो रहा है अतः आधुनिक समाज में विसंगतियां उभरती हुई

दिखाई देती हैं। आज का मनुष्य अत्यधिक अशांत है, इसलिए उसे केवल कल्पनात्मक साहित्य ही पसंद नहीं आता। वह साहित्य में कल्पना के स्थान पर सामाजिकता सच्चाई को देखना चाहते हैं और व्यंग्य सामाजिक सच्चाई को सामने लाने का एक अच्छा माध्यम है। व्यंग्य सामाजिक विसंगति ही नहीं मनुष्य के दोषों को भी उसके समक्ष प्रस्तुत करता है। अतः मनुष्य के अन्दर तिलमिलाहट पैदा करते व्यंग्य जन और समाज से विसंगतियों को दूर करने का प्रयास करता है। इसी कारण व्यंग्य का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

व्यंग्य-लेखन की परम्परा की प्राथमिक कड़ी कबीर को माना जा सकता है। हिंदी गद्य में व्यंग्य लेखन 'अंधेर नगरी' और 'शिवशम्भू के चिट्ठे' से शुरू होता है। किन्तु हिंदी व्यंग्य-लेखन का जो परिष्कृत रूप आज हमारे सामने है उसके पीछे हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और रवीन्द्रनाथ त्यागी जैसे व्यंग्यकारों का विशेष एवं महत्त्वपूर्ण योगदान है। हिंदी में व्यंग्य ने साहित्य की सभी विधाओं में प्रायः अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है, किन्तु इसे साहित्य में विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी इन व्यंग्यकार त्रयी को जाता है। इसके पश्चात् बरसाने लाल चतुर्वेदी, लतीफ़ घोषी, नरेन्द्र कोहली, अशोक चक्रधर, कन्हैयालाल नंदन, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेमजन्मेजय, अश्विनी कुमार दुबे, जवाहर चौधरी आदि ने भी व्यंग्य विधा को समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने एवं समृद्ध बनाने की इस परम्परा में गोपाल चतुर्वेदी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। इनके व्यंग्य समाज में विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को आईना दिखाते नज़र आते हैं। अतः मैंने “गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य-लेखन का आलोचनात्मक अध्ययन” इस विषय को अपने शोध-प्रबंध के लिए चुना।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम अध्याय का विषय है, हिंदी-व्यंग्य का उद्भव एवं विकास'। इसमें व्यंग्य के अर्थ एवं स्वरूप के अंतर्गत व्यंग्य के शाब्दिक तथा पारिभाषिक अर्थ, हास्य की परिभाषा, हास्य और व्यंग्य में सम्बन्ध तथा अंतर्विभेद तथा हिंदी में व्यंग्य परम्परा आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय का सम्बन्ध गोपाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से है। इसमें गोपाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उन्हें प्राप्त पुरस्कारों के साथ ही साथ उनकी रचनाओं के सारांश को बताने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार का उद्घाटन के अंतर्गत राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों एवं भ्रष्टाचारों को व्यंग्यकार ने किस रूप में देखा है और इसके प्रति उसकी क्या प्रतिक्रिया रही है, इसका अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का विषय है 'गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में सामाजिक चेतना' इसमें उनकी सामाजिक दृष्टि और वातावरणीय सजगता का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय में 'शैली' के अर्थ को बताते हुए, व्यंग्य विधा में शैली के महत्त्व को दिखाते हुए, गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में प्रयुक्त शैली को उदहारण के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस प्रकार इस शोध प्रबंध में गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य-लेखन को समझाते हुए अन्य व्यंग्यकारों को उनके समक्ष रखते हुए, उनके व्यंग्यों का आलोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। साथ ही आज के दौर में व्यंग्य विधा की प्रासंगिकता पर भी समकालीन परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में विचार करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध-कार्य में मुझे प्रवृत्त करने का श्रेय डॉ० कमला नन्द झा को है, जिन्होंने मुझे इस विषय को अपने शोध-विषय के रूप में चुनने के लिए प्रेरित किया। उनके प्रति मैं अपनी अथाह श्रद्धा ज्ञापित करती हूँ। उनके विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन से ही मेरा यह शोधकार्य पूरा हो सका है।

प्रो० रामनरेश मिश्र के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मेरे इस शोधकार्य को व्यवस्थित रूप में आरंभ करने के लिए मुझे प्रेरित किया।

मैं अपने शोध-निर्देशक डॉ० अरविन्द सिंह तेजावत का विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके कुशल एवं बहुमूल्य निर्देशन में मेरा यह शोध-कार्य पूरा हो सका है। डॉ० सिद्धार्थ शंकर राय का भी आभार व्यक्त करना चाहूंगी जिन्होंने शोध में अपेक्षित सहायता और मार्गदर्शन तो दिया ही इसके साथ ही कठिन परिस्थितियों में मेरा संबल भी बढ़ाया। डॉ० अमित कुमार की सहजता मुझे हमेशा ही प्रभावित करती रही है, उनका भी निर्देश मुझे समय-समय पर प्रोत्साहित करता रहा है, मैं उनकी भी आभारी हूँ।

मैं गोपाल चतुर्वेदी जी की भी विशेष आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अपनी साहित्यिक रचनाओं पर शोध-कार्य करने की अनुमति तो प्रदान की ही साथ ही साथ समय-समय पर अपेक्षित सहयोग भी प्रदान करते रहे।

मैं अपने माता-पिता, सास-ससुर एवं भाई-बहनों का भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने हर कदम पर मुझे सहयोग प्रदान किया।

मेरे इस शोध-कार्य को पूर्ण करने में मेरे मित्रों रतनलाल जी, रहीश भाई, रीना दी, छोटी मनीषा, निर्मल दी, लीलाराम भैयाजी, प्रेम, मनीषा, दीपक, मनोज, प्रवेश, सरस्वती, शिवशंकर, विभु, प्रदीप, उमा, विभव आदि का विशेष योगदान रहा है। इन सबका आभार व्यक्त करना मेरी धृष्टता ही होगी। भविष्य के लिए इन सबको ढेर सारा प्यार और शुभकामनाएँ।

इस शोध-कार्य को पूर्ण करने में इन्द्रजीत से मुझे बहुत सहयोग मिला, मेरे बेटे रूद्र और इनके कारण ही मैं इस शोध-कार्य में प्रवृत्त होकर उसे पूर्ण कर सकी हूँ। इनका आभार व्यक्त करके मैं इनके कद को छोटा नहीं करना चाहती। मेरे बेटे रूद्र का त्याग मेरे इस शोध-कार्य की रीढ़ है। उसके लिए कुछ भी कहने का साहस और शब्द मेरे पास नहीं हैं।

पारुल यादव

प्रथम अध्याय

हिंदी व्यंग्य का उद्भव और विकास

1.1 व्यंग्य की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप :

व्यंग्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से मानी जा सकती है। जिसका प्रयोग संस्कृत में विशिष्ट अर्थ भेद के साथ होता रहा है। संस्कृत में ‘व्यंग्य शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से शब्द शक्तियों के अंतर्गत ही हुआ है “शब्दों में अर्थ-द्योतन का जो गुण है उसको ‘वृत्ति’ या शक्ति कहा गया है। शब्द शक्तियाँ तीन मानी गई हैं अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। ये तीनों शब्द शक्तियाँ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य अर्थों का बोध कराती हैं।”¹

“व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ की वह शक्ति है जो अभिधा आदि शक्तियों के चूक जाने पर एक ऐसे अर्थ का अवबोधन कराया करती है, जो एक सर्वथा विलक्षण प्रकार का अर्थ हुआ करता है।”² संस्कृत आचार्यों ने शब्द की तीन शक्तियों का वर्णन अपने ग्रंथों में किया, जो की अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना हैं। अभिधा शब्द शक्ति के अंतर्गत शब्द के मुख्यार्थ या सामान्य अर्थ को ग्रहण किया जाता है, जब अभिधा माध्यम से शब्द की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती है। तब लक्षणा के माध्यम से अर्थ का पता लगाया जाता है अर्थात् कहे हुए वाक्य का लक्ष्य क्या है? इसके माध्यम से लक्ष्यार्थ की प्रतीति लक्षणा शब्द शक्ति के द्वारा होती है किंतु शब्द की तीसरी व्यंजना शब्द शक्ति अभिधा और लक्षणा से एकदम अलग है और यह शब्द के एक अलग ही अर्थ का बोध कराती है अर्थात् जब कहा कुछ जाता है और उसका अर्थ कुछ और ही होता है, इस प्रकार के अर्थ को समझने के लिए व्यंजना शब्द-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। ये शब्द शक्ति शब्द के व्यंग्यार्थ का बोध कराती है।

व्यंजना शब्द शक्ति का व्यंग्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ‘अंजन’ धातु में ‘वि’ उपसर्ग लगाने से ‘व्यंजन’ शब्द निर्मित हुआ है जिसका अर्थ होता है विशेष प्रकार का अंजन। जिस प्रकार आँखों में लगा हुआ अंजन दृष्टि दोषों को दूर करके निर्मल बना देता है उसी प्रकार व्यंजना शक्ति शब्द के मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित कराती है। इस संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ ने ‘साहित्य दर्पण’ में व्यंजना के विषय में कहा है-

“विरतास्वाभिधाधासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।

सा वृत्तिव्यज्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च॥”³

अर्थात् अभिधा तथा लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराकर जब विरत हो जाती है तब जिस शब्द शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। व्यंजना ही व्यंग्य का बीज माना जा सकता है। समाज में मानव-मूल्यों की स्थापना के लिए व्यंग्य का उद्गम हुआ है। अतः अभिधा और लक्षणा का व्यंग्य विधा से विशेष संबंध नहीं होता है, लेकिन व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ की वही शक्ति है जो अभिधा और लक्षणा शक्तियों के समाप्त हो जाने पर एक सर्वथा विलक्षण प्रकार के अर्थ का अवबोधन कराती है, “व्यंग्य शब्द भारतीय साहित्य में नया नहीं है, हिंदी साहित्य कोश के अनुसार ‘वि’ तथा ‘अंग’ के योग से व्यंग तथा व्यंग से ‘व्यंग्य’ शब्द का निर्माण हुआ।”⁴

छविनाथ मिश्र व्यंग्य शब्द की व्युत्पत्ति वि+अज्+ण्यत् से बताते हुए अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं-

“व्यंग्य विशेषण है और इसे उपलक्षित अर्थ, व्यंग्योक्ति, परोक्ष संकेत या सब्जेक्टिव मीनिंग भी कहते हैं।”⁵

संस्कृत साहित्य में व्यंग्य का प्रयोग आधुनिक 'व्यंग्य' के अर्थ में न होकर संपूर्ण काव्यशास्त्रीय अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में व्यंग्यार्थ (व्यंजित लेने वाला अर्थ) के रूप में प्राप्त होता है। 'व्यंग्य' का संबंध मूलतः अर्थबोध की प्रक्रिया से रहा है।

साहित्यकारों की महिमा का प्रकाशन व्यंजना शक्ति में ही निहित होता है। व्यंजना के द्वारा जो अर्थ ध्वनि प्राप्त होती है, आनंदवर्धन आदि ध्वनिवादी आचार्यों ने उसे ही काव्य का प्राण माना है। “काव्य के ध्वन्य अथवा व्यंग्य अर्थ का शब्दार्थानुशासन के ज्ञान मात्र से ही बोध नहीं होता अपितु उसके लिए काव्यार्थ के मर्म तक पहुँचने वाली बुद्धि तथा काव्यार्थ के तत्त्व ज्ञान आवश्यक है। कविता की समझ रखने वाले पाठक वाच्यार्थ की अवहेलना कर झट से व्यंग्य अर्थ तक पहुँच जाते हैं।”⁶

“जिस प्रकार से शब्दों के समन्वित अर्थ द्वारा वाक्य के अर्थ का बोध हो जाता है उसी प्रकार वाच्यार्थ की प्रतीति से व्यंग्य अर्थ की प्रतिपत्ति होती है”⁷ अर्थात् व्यंग्य को समझने के लिए शब्दार्थ का ज्ञान होना ही आवश्यक नहीं है, बल्कि इसके साथ ही साथ काव्य के मर्म तक पहुँचने की आवश्यकता होती है क्योंकि व्यंग्य सीधे न करके वक्र रूप में किया जाता है अतः इसके लिए प्रखर बुद्धि का होना आवश्यक है, जो वाच्यार्थ को जानने के पश्चात् व्यंग्यार्थ तक पहुँच सके।

“व्यंग्य अर्थ को ध्वनित करने वाली शब्द वृत्ति को विद्वानों ने व्यंजना का नाम दिया है कुछ ने इसे 'रसना' भी कहा है, क्योंकि इस रूप 'व्यंग्य' इसी वृत्ति से प्रकट होता है।”⁸

“भारतीय काव्य शास्त्र में व्यंग्य शब्द का प्रयोग इसी परंपरागत अर्थ में होता रहा है। आधुनिक हिंदी समीक्षा में व्यंजना शब्द का प्रयोग तो पारम्परिक अर्थ में ही होता है किंतु व्यंग्य का अर्थ संदर्भ बदल गया है।”⁹ संस्कृत साहित्य तथा प्राचीन हिंदी साहित्य में 'व्यंग्य' का प्रयोग काव्य या गद्य में मात्र पाठक

के मनोरंजन के लिए होता था जिसका कोई उद्देश्य नहीं होता था, किंतु आधुनिक हिंदी साहित्य में 'व्यंग्य' एक विधा के रूप में विद्यमान है जो निरुद्देश्य नहीं है।

डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी व्यंग्य की गहराई को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं, “व्यंग्य शब्द ‘वि’ उपसर्ग पूर्वक अञ्ज धातु में ण्यत् प्रत्यय लगाकर बनाया गया है जिसके कई अर्थ हैं, विविक्षा द्वारा निर्देश, सांकेतिक अर्थ और शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना द्वारा निर्दिष्ट अर्थ। इस विभिन्न अर्थ से मिलते-जुलते किंचित उद्देश्य विशिष्ट अर्थ में ‘व्यंग्य’ शब्द का प्रयोग आज हो रहा है।”¹⁰

इस प्रकार साहित्य में व्यंग्य का अर्थ व्यक्ति और समाज के दोषों न्यूनताओं को सीधे न कहकर वक्रोक्ति के माध्यम से की गई वह अभिव्यक्ति है जिसका उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक अन्याय, विसंगतियों विषमताओं तथा अंतर्विरोधों को दर्शाना तथा उसे दूर करने के उपाय सुझाना है।

साहित्यिक संदर्भ में ‘व्यंग्य, अंग्रजी शब्द ‘सेटायर’ का हिंदी पर्याय माना जाता है। ‘सेटायर’ शब्द के लिए कोशों में कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं डॉ. कामिल बुल्के ने ‘सेटायर’ के लिए व्यंगिका, व्यंग्य रचना, प्रहसन, व्यंग्य, उपहास और विद्रूप शब्द दिए हैं।”¹¹ “कुछ कोशों में आइरनी को भी व्यंग्य के रूप में परिभाषित किया है।”¹² डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी आइरनी को व्यंग्य शब्द का समानार्थक माना है तथा सेटायर को विकृति का।”¹³ बरसाने लाल चतुर्वेदी विकृति को सेटायर के लिए उपयुक्त नहीं मानते हैं। उनके अनुसार, “विकृति शब्द सेटायर के लिए इसलिए समीचीन नहीं है, क्योंकि विकृति तो हास्य, वचन, वैदग्ध्य, वक्र उक्ति, प्रहसन और व्यंग्य सबके लिए ही आवश्यक आधार है।”¹⁴

“सेटायर शब्द लैटिन शब्द ‘SATURA’ से बना है जिसका अर्थ गड़बड़झाला है। सैतुरा के कम से कम दो रूप विकसित हुए थे जिसका एक रूप बाद में प्रचलित रहा और यह रूप पद्य-निबंध के समान था। पुरातन काल में सैतुरा शब्द परनिंदा के अर्थ में प्रयुक्त होता था और ऐतिहासिक अर्थ की छाया

वर्तमान सैटायर शब्द पर भी पड़ी है। अब सेटायर में केवल परनिंदा नहीं होती है कुछ बातों में हेर फेर होता है। आलम्बन की खिंचाई होती है या आलम्बन की तुलना चिढ़ाने योग्य, बदनाम या काबिले नफरत चीज से की जाती है या बात को उलट दिया जाता है या उसे बातों में उड़ा दिया जाता है।”¹⁵

अनिल राकेशी ने सेटायर शब्द के अर्थ को इस प्रकार बताया है, “सेटायर शब्द लैटिन शब्द सैटूरा से निकला है जिसका अर्थ था भरपूर और बाद में इसका अर्थ हो गया विभिन्न चीजों का मिश्रण या घालमेल।”¹⁶

गिल्बर्ट हिगेट ने सेटायर को खाद्य पदार्थ से संबंधित माना है उनके अनुसार “संभवतः यह शब्द आहार या खाद्यान्न से संबंधित था। देवताओं को अर्पित किए जाने वाले मौसम के पहले फलों के पंचमेल को ‘लैक्स सैटूरा’ कहा जाता था। वस्तुतः इसकी मूल उत्पत्ति के अनुसार सेटायर में विविधता होनी चाहिए इसमें व्यापकता होनी चाहिए और इसे अपरिष्कृत तथा जीवंत होना चाहिए।”¹⁷

कुछ विद्वानों ने ‘व्यंग्य’ शब्द सेटायर से अधिक व्यापक माना है, “व्यंग्य शब्द भारतीय साहित्यशास्त्र में अपना एक निश्चित परम्परागत अर्थ रखता है जो ‘सेटायर’ से कहीं अधिक व्यापक है। इसलिए उसे व्यंग्य काव्य या व्यंग्य साहित्य कहना भी उचित नहीं है। ये दोनों शब्द वस्तुतः ध्वनि काव्य के ही पर्याय हैं। सेटायर को व्यंग्य गीत कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि व्यंग्यात्मकता को गीत में सीमित करने की धारणा अपने आप में बड़ी विडम्बनापूर्ण है इसलिए उसके लिए सर्वाधिक लोक प्रचलित शब्द व्यंग्य ही स्वीकार कर लेना चाहिए।”¹⁸

हिंदी साहित्य के विकास के साथ ‘व्यंग्य’ का अर्थ एक सा नहीं रहा है। उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहा है। “व्यंग्य शब्द जो संस्कृत में ध्वनित या प्रतीयमान का पर्यायवाची था हिंदी में वह सामान्य बोलचाल में ताना, चुटकी, कटाक्ष, बोली-ठोली, बिरह आदि का पर्याय बन गया है।”¹⁹

डॉ. शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य के अर्थ को इस प्रकार समझाया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में व्यंग्य हमारे अभिष्ट अर्थ में कहीं-कहीं तो लिखा गया है किंतु इस संज्ञा का अस्तित्व इस अर्थ में नहीं था। कभी उसे 'परिहास' कहा गया कभी 'चुहुल' कभी खिल्ली उड़ाना कभी भंडौवे के रूप में प्रयुक्त किया गया और कभी 'स्यापा' कहकर पुकारा गया। शुद्ध व्यंग्य लेखन की परंपरा भारतेंदु युग से विकसित होनी आरंभ हुई क्योंकि भारतेंदु कबीर के समान ही सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों और विद्रूपताओं के प्रति खड़गहस्त थे।²⁰ इससे यह तथ्य परिलक्षित होता है कि व्यंग्य का वर्तमान अर्थ पुराने साहित्य में प्रचलित नहीं था। स्पष्टतः इसका कारण पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव माना जा सकता है। इस प्रकार व्यंग्य का प्रचलित अर्थ आधुनिक युग की ही देन है। आधुनिक अर्थ में पुराने अर्थ के समान ही व्यंग्य शब्द को व्यंजना शक्ति द्वारा ही प्रकट किया जाता है किंतु नए अर्थ में व्यंग्य परिहास, उपहास आदि प्राचीन अर्थ के समान प्रयोजनहीन नहीं अपितु व्यंग्यकार का व्यंग्य लिखने के पीछे एक निश्चित उद्देश्य होता है इसी बिंदु पर प्राचीन और आधुनिक अर्थ को अलग किया जा सकता है।

व्यंग्य का मूल तत्त्व इस तथ्य में निहित है कि वह विसंगतियों एवं विरूपताओं, कुरीतियों, रूढ़ियों आदि पर सीधे प्रहार न करके तिरछे रूप में करता है। व्यंग्य की प्रकृति मूलतः नीर-क्षीर करने की होती है। अर्थात् स्पष्टतः वह स्तुति या प्रशंसा का समर्थन करता हुआ सा प्रतीत होता है किंतु वास्तव में उसका उद्देश्य वह नहीं होता है जो सामान्यतः दिखाई देता है। व्यंग्य हमारे यथार्थ की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, विषमताओं, कथनी-करनी के बीच के अंतर को व्यंग्य ही सही दिशा में हमारे सामने लाता है। कभी-कभी वह आक्रामक हो जाता है लेकिन इसमें भी नैतिक और सामाजिक हितों का उद्देश्य निहित होता है। तात्कालिक संदर्भ से लगाव व्यंग्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है इसलिए आलोचकों की दृष्टि में व्यंग्य को पत्रकारिता के दर्जे की वस्तु माना गया है, किंतु व्यंग्य तटस्थ होकर

सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के प्रति उबल रहे आक्रोश की अभिव्यक्ति करता है इसलिए व्यंग्य अपनी पैठ से अधिक प्रहारक होता है।

1.2 व्यंग्य की परिभाषा

व्यंग्य को अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य लेखकों ने उसके स्वरूप, लक्षण, वैशिष्ट्य को देखते हुए परिभाषित करने का प्रयास किया है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान व्यंग्य की भी एक परिपूर्ण एवं सर्वमान्य परिभाषा सम्भव नहीं हो पाई है, क्योंकि उसका दायरा अत्यंत विस्तृत हो गया है। व्यंग्य के लक्षण तथा स्वरूप को देखते हुए उसके उतने ही गुण को परिभाषित करने का प्रयत्न व्यंग्यकारों ने किया है। व्यंग्य क्रोध, दुख, ग्लानि, असंतोष, क्रांति की भावना आदि विविध कारणों से होता है तथा इसे प्रकट करने के अलग-अलग ढंग भी हैं, कहीं बहुत तीखे तो कहीं करुणापूरित व्यंग्य के दर्शन होते हैं। पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने व्यंग्य की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। यहाँ हम पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई व्यंग्य की परिभाषाओं पर अलग-अलग विचार करेंगे।

पाश्चात्य आलोचकों की परिभाषाएं :

शार्टर आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, “व्यंग्य का अर्थ है लेखन या संभाषण में कटाक्ष वक्रोक्ति, उपहास आदि के प्रयोग द्वारा दोष, मूर्खता, अनाचार अथवा अन्य किसी भी प्रकार की बुराई की निंदा करना, कलई खोलना या मजाक उड़ाना। अर्थात् समाज की बुराईयों की सुधार के उद्देश्य से वक्रोक्ति के माध्यम से निंदा करना ही व्यंग्य है।”²¹

बैबसटर्स थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी में व्यंग्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, “ऐसी साहित्यिक रचना जो मानवीय एवं व्यक्तिगत दोषों मूर्खताओं एवं अभावों को निंदा, उपहास, आलोचना

वक्राक्ति आदि माध्यमों के द्वारा रोकती है। इसके साथ-साथ वह कभी कभी सुधार के आशय से की जा सकती है।²²

डिक्शनरी आफ लिटरेरी टर्म्स में हैरी शॉ ने व्यंग्य को इस प्रकार परिभाषित किया है: व्यंग्य का अर्थ बुराई, मूर्खता या बेवकूफी का मजाक या माखौल उड़ाना, मानव जाति की कमजोरियों, दुर्गुणों तथा गलतियों की निंदा करने अथवा कलई खोलने के लिए वक्रोक्ति, कटाक्ष या उपहास का प्रयोग। व्यंग्य एक साहित्यिक विधा या तकनीक है जिसमें हास्य तथा वक्रोक्ति के मिश्रित प्रयोग से मानवीय क्रिया कलापों एवं संस्थाओं की आलोचनापूर्ण ढंग से व्याख्या की जाती है व्यंग्य में सामान्यतया नैतिक चिंता तथा किंही तौर-तरीकों, विश्वास अथवा परंपरा में सुधार लाने की प्रबल आकांक्षा दोनों ही भाव विद्यमान रहते हैं।²³

उपर्युक्त तीनों ही परिभाषाओं में व्यंग्य को ऐसी साहित्यिक रचना कहा गया है जिसका कार्य समाज में व्याप्त बुराईयों, दोषों, कथनी-करनी के अंतर, व्यक्तिगत एवं सामाजिक कमजोरियों दुर्गुणों, अनाचार आदि की वक्रोक्ति के माध्यम से निंदा या आलोचना करना होता है और इसी निंदा या आलोचना के माध्यम से वह व्यक्ति तथा समाज को सुधारने तथा उसे नैतिकता प्रदान करने का पूर्ण प्रयास करता है।

ए.निकोल के अनुसार, “व्यंग्य इतना कटु हो सकता है कि वह किंचित भी हास्यजनक न हो। वह करारी चोट करता है। उसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता है। उसमें न दया होती है, न करुणा, न उदारता। वह कभी-कभी व्यक्ति के शारीरिक गठन पर पूरी निर्ममता से चोट करता है। वह मनुष्य के चरित्र पर आक्रमण करता है। युग की रीति-नीति पर अक्षम्य भाव से टूट पड़ता है।”²⁴ व्यंग्य को सदैव ही हास्य के साथ जोड़कर उसे हास्य व्यंग्य कहा जाता है अर्थात् जहाँ व्यंग्य होता है वहाँ हास्य का होना अनिवार्य है। ए.निकोल की परिभाषा में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि व्यंग्य कभी-कभी इतना कठोर हो जाता

है कि उसमें हास्य का पुट समाप्त हो जाता है। वह इतना कटु हो जाता है कि उसमें दया, करुणा उदारता आदि भाव समाप्त हो जाते हैं, वह मनुष्य के हृदय को भेदता हुआ उस पर करारी चोट करता है।

मेरीडिथ के अनुसार, “व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।”²⁵ जहाँ एक ओर निकोल व्यंग्य को इतना कटु तथा करारी चोट करने वाला बताते हैं जिसमें नैतिक बोध नहीं होता है वहीं दूसरी ओर मेरीडिथ व्यंग्यकार को नैतिकता का ठेकेदार बताते हैं जो समाज में फैली विकृतियों विषमताओं, कुरीतियों आदि गंदगी को साफ करने का कार्य करता है।

जोनाथन स्विफ्ट के अनुसार, “व्यंग्य एक प्रकार का आइना है जिसमें देखने वालों को अपने चेहरे के साथ-साथ दूसरों के चेहरे भी दिखाई देने लगते हैं। यही कारण है कि विश्व में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा बहुत कम लोग इससे अपने को पीड़ित अनुभव करते हैं।”²⁶ स्विफ्ट ने व्यंग्य को आइना कहा है। स्विफ्ट द्वारा कहे गए आइना शब्द को व्यंग्य के लिए उपयुक्त माना जा सकता है क्योंकि जिस प्रकार ‘आइना’ देखने वाले की काया को उसी रूप में दर्शाता है, जैसी वह है, उसी प्रकार व्यंग्य भी आइने के समान सामाजिक कार्यों को दर्शाता है।

मैथ्यू हागर्थ व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि “व्यंग्य चेतावनी है कि मनुष्य वह खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की असीमित क्षमता है और यदि व्यंग्य द्वारा इस सत्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो पर्याप्त है।”²⁷

इस प्रकार व्यंग्य की पाश्चात्य अवधारणा में वक्रोक्ति या कटाक्ष रूप में समाज में फैली विषमताओं, विद्रूपताओं को दूर करने का प्रयास किया गया है। मनुष्य अनेक दोषपूर्ण कार्य करता है। इसे स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति द्वारा सामने लाना ही व्यंग्य कहलाता है। पाश्चात्य आलोचकों की परिभाषाओं को देखने से

यह भी ज्ञात होता है कि समाज में सुधार की भावना अनिवार्य रूप से निहित होती है, किंतु उसमें हास्य की अनिवार्यता परिलक्षित नहीं होती है। भारतीय आलोचकों में कुछ इस बात से सहमत हैं तो कुछ व्यंग्य में हास्य का होना भी अनिवार्य मानते हैं।

भारतीय आलोचकों की परिभाषाएं :

भारतीय साहित्यशास्त्र की परंपरा में व्यंग्य की स्वतंत्र विवेचना का अभाव सा रहा है। जो भी थोड़ा बहुत विचार व्यंग्य को लेकर हुआ है वह उसे हास्य का ही एक भेद या अंग मानकर परंपरागत अर्थ के रूप में विकसित हुआ है। इसी तथ्य को प्रभावित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य को इस रूप में परिभाषित किया है, “व्यंग्य वह विधा है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने आपको और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।”²⁸ इसी प्रकार व्यंग्य में हास्य की उपस्थिति की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने व्यंग्य को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है “आक्रमण करने की दृष्टि में वस्तु स्थिति को विकृत करके उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।”²⁹

हरिशंकर परसाई व्यंग्य को जीवन की आलोचना करने वाला बताते हुए सामाजिक दायित्वों का अनुभव कराने वाला बताते हैं वे आचार्य द्विवेदी तथा डॉ. रामकुमार वर्मा की तरह व्यंग्य में हास्य का होना भी अनिवार्य नहीं मानते हैं। परसाई जी के अनुसार, “व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों मिथ्याचरों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है। यह नारा नहीं है। मैं यह कह रहा हूँ जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है जितनी किसी गम्भीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही। वह जीवन के प्रति दायित्वों का अनुभव करता है। जिन्दगी बहुत जटिल चीज़ है। इसमें खालिस हँसना या खालिस रोना जैसी चीज़ नहीं होती, बहुत सी हास्य रचनाओं में करुणा की धारा है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।”³⁰

डॉ. शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य की विभिन्न परिभाषाओं पर विचार करते हुए व्यंग्य की समेकित परिभाषा दी है। जिसमें समाज या व्यक्ति की दुर्बलताओं, विषमताओं आदि को कभी वक्र तो कभी सपाट शब्दों में व्यक्त किया जाता है, “व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निंदा, भाषा की टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए गम्भीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए तटस्थ लग सकती है, माखौल लगती हुई बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की उपस्थिति अनिवार्य है।”³¹ शेरजंग जी मानते हैं कि व्यंग्य में निर्दयता के साथ दयालुता हो सकती है, उसकी भाषा प्रहारात्मक लगते हुए भी तटस्थ हो सकती है, माजाक उड़ाते हुए भी उसमें बौद्धिकता होती है और कभी-कभी अतिशयोक्ति लगने पर भी वह सत्य होती है अतः व्यंग्य में विरोधाभास की स्थिति भी होती है।

वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता ने व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार दी है, “शास्त्रीय दृष्टि में व्यंग्य मानव तथा जगत् की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में लाकर उनके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है। व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो संपूर्ण साहित्यिक आक्रोश को व्यंग्य की संज्ञा दी जा सकती है।”³² उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं में व्यंग्य को एक साहित्यिक अभिव्यक्ति कहा गया है। जिसमें आक्रोश एवं आक्रमकता को अनिवार्य तत्त्व मानते हुए उसे हास्य से अलग करने का प्रयास किया गया है।

नरेन्द्र कोहली के अनुसार, “कुछ अनुचित अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जगता है-वह यदि काम में परिणत हो सकता, तो अपनी असहायता में वक्र होकर वह अपनी तथा दूसरों की पीड़ा पर हँसने लगता है तब वह विकट व्यंग्य होता है, पाठक के मन को चुभलाता सहलाता नहीं, कोड़े लगाता है।

अतः सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है।”³³ कोहली जी भी मानते हैं कि जब सामाजिक बुराईयों को देखकर मन में आक्रोश जगता है तब वाणी द्वारा वह व्यंग्य कहलाता है।

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी के अनुसार, “व्यंग्य एक विशिष्ट समानधर्मी प्रेरणाविधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है जिसका उद्भव अंतर्विरोधों के कारण होता है और जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्था विशेष के दौर्बल्य की अपेक्षात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभीष्ट पूर्ण होता है।”³⁴ अर्थात् समाज में अनुचित कार्यों को होता देख मन में उसके प्रति विरोध उत्पन्न होता है, और व्यंग्य के माध्यम से ही समाज में हो रहे उन अनुचित कार्यों में परिवर्तन लाया जा सकता है।

मधुकर गंगाधर जी की परिभाषा में भी व्यंग्य को असत्य पर प्रहार करने वाला बताया गया है किंतु इनकी परिभाषा अन्य परिभाषाओं से थोड़ी अलग है क्योंकि इनकी परिभाषा को देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे इन्होंने व्यंग्य का मानवीकरण किया हो। इनके अनुसार, “व्यंग्य जिसमें सत्य की आत्मा है निर्भीकता की काया है, हास्य का झीना वस्त्र है और असत्य पर प्रहार करने की तत्परता है। वाग्-वैदग्ध्य और विलक्षणता दो नासापुट हैं। युद्धोरत, प्रहारधर्मी व्यंग्य धीरोदात्त हाथ में जयी अस्त्र होता है। सींकिया प्रयोगी इसे फेंककर अपना ही दाँत गँवाता है।”³⁵ बेढ़ब बनारसी के अनुसार, “जब किसी व्यक्ति या समाज की बुराई को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाता है। तब व्यंग्य की सृष्टि होती है। जब व्यंग्य में क्रोध आ जाता है, तब हास्य की मात्रा कम हो जाती है।”³⁶ बेढ़ब बनारसी भी समाज की बुराईयों को वक्र रूप में व्यक्त करने को ही व्यंग्य मानते हैं।

अनिल राकेशी ने व्यंग्य की एक सम्यक् परिभाषा इस प्रकार दी है, “व्यक्ति एवं वर्ग के सर्वगुणों, दुर्बलताओं, मूर्खताओं, कथनी-करनी के अंतर तथा समाज में व्याप्त अन्याय, अनाचार, शोषण, पाखण्ड,

अंधविश्वास जड़ता आदि बुराईयों पर जब उपहास, वक्रोक्ति, विद्रूप, विडम्बना, अतिरंजना, अपकर्ष अथवा किसी ऐसी ही अन्य विधि से प्रहार किया जाता है, तो इसे व्यंग्य कहते हैं। आक्रामकता तथा सामाजिक सोद्देश्यता व्यंग्य के अनिवार्य तत्त्व है। पहली के बिना वह भड़ैती तथा दूसरी के बिना विद्वेषपूर्ण आक्षेप बन कर रह जाता है। व्यंग्य परिहास हो यह आवश्यक नहीं, किंतु उसमें आक्रोश और आक्रामकता का होना अनिवार्य है।³⁷ अनिल राकेशी की यह परिभाषा व्यंग्य को उसके आधुनिक अर्थ में पूर्ण समग्रता तथा व्यापकता के रूप में सूक्ष्मता के साथ व्याख्यायित करती है। अतः इसे सर्वाधिक उपयुक्त एवं सटीक परिभाषा माना जा सकता है, किंतु सामाजिक सोद्देश्यता तथा आक्रामकता के साथ-साथ साहित्यिकता भी व्यंग्य का एक अनिवार्य तत्त्व है क्योंकि इसके अभाव में व्यंग्य केवल अपशब्द बनकर ही रह जाते हैं।

व्यंग्य की उपर्युक्त परिभाषा में से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि आक्रोश आक्रामकता हास्य-विनोद एवं सामाजिक सोद्देश्यता व्यंग्य के मूल तत्त्व है। व्यंग्य में यथार्थता होती है यह जीवन के वास्तविक अंतर्विरोधों तथा विकृतियों का दर्पण होता है। इसी कारण व्यंग्य को आलोचक अन्य लेखन विधा से अलग मानते हैं। व्यंग्य एक सामाजिक मनोविनोदी और अनुप्रेरक विधा है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलने के साथ ही व्यंग्यकार की दृष्टि उसके लक्ष्य तथा उसकी प्रहार धर्मिता में भी परिवर्तन आते रहे हैं। सामाजिक विकृतियों और विसंगतियों के गहरे संकट के दौर में जहाँ व्यंग्य, प्रखर, कठोर, निर्मम तथा ध्वंसात्मक होता है। वहीं प्रगतिशील समाज के विकास एवं स्वस्थ जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा के रूप में व्यंग्य का रुख अधिक सकारात्मक, रचनात्मक एवं सृजनात्मक होता है। इस रूप में व्यंग्यकार व्यक्ति एवं समाज के जीवन से सम्पर्क स्थापित करके उसकी समस्याओं, विषमताओं एवं उसके अंतर्विरोधों को समझकर उन्हें उद्घाटित करता है। इससे वह समाज सुधार के उद्देश्यों का मार्ग प्रशस्त भी करता है।

1.3 हास्य का स्वरूप :

हास्य का सामान्य अर्थ है हँसना और हँसाना। पाश्चात्य साहित्य में हास्य का विवेचन 'कामदी' के संदर्भ में हुआ है। भारतीय काव्यशास्त्र में हास्य का विवेचन रसों के अंतर्गत ही किया गया है। क्रोध, घृणा, प्रेम की भांति हास्य भी मानव जीवन का अनिवार्य पहलू है। यह सहज मनोभाव है। यह मनुष्य के हृदय में आनंद की उत्पत्ति करता है। आदिम काल में मनुष्य जब यायावरी जीवन व्यतीत करता था, उसे भाषा तक का ज्ञान नहीं था, तब भी वह इस सहज प्रवृत्ति से युक्त था।

हास्य के माध्यम से मन में आनंद की उत्पत्ति होती है। इसमें भाव तत्त्व की प्रधानता होती है। यह निष्प्रयोजन होता है। यह केवल मनुष्य का मनोरंजन करता है। हास्य आनंद सूचक होता है और आनंद की प्राप्ति के कई कारण हो सकते हैं। जैसे किसी बच्चे का जन्म होने पर उसके परिवार के लोग आनंदित होकर बच्चे के रुदन पर हँस पड़ते हैं। अर्थात् हँसने के लिए किसी उद्देश्य का होना आवश्यक नहीं है। जब किसी मनुष्य के विषम या हास्यास्पद क्रियाकलापों, किसी वस्तु आदि को देखकर हम हँसते हैं वही हास्य होता है। अर्थात् कोई भी वस्तु जो हमें हँसा दे वह हास्य है।

हरिशंकर परसाई भी इसी संदर्भ में कहते हैं, “लोग किसी भी बात पर हँसते हैं। हलकी मामूली विसंगति पर भी हँस देते हैं। आदमी अगर घोड़े सरीखा हिनहिनाए, तो इस पर भी हम हँस देते हैं। दिवाली पर कुत्ते की दुम में पटाखे की लड़ी बाँधकर उसमें कुछ लोग आग लगा देते हैं। बेचारा कुत्ता तो मृत्यु भय से भागता और चीखता है, पर लोग हँसते हैं।”³⁸

सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक मनुष्य में हास्य की प्रवृत्ति रही है। हास्य का मानव जीवन में कितना महत्त्व है इसका उल्लेख करते हुए डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी ने कहा है कि वास्तविकता तो यह है

कि जीवन के आस्वादन के लिए हास्य में अत्यंत आवश्यक है। इसी के द्वारा मनुष्य के हृदय में सरलता, सहानुभूति और सरसता की धारा प्रवाहित होती है। जीवन की जटिलताओं में उलझेमानव-मस्तिष्क को हास्य ही शांति और शीतलता प्रदान करता है।”³⁹

1.4 हास्य की परिभाषा

हास्य जितना सहज भाव है उसे परिभाषित करना उतना ही कठिन है इसी कारण हिंदी साहित्य में हास्य रस शोध प्रबंध के लेखक डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी ने भी हास्य की कोई ठोस परिभाषा नहीं दी है। कुछ पाश्चात्य तथा कुछ हिंदी विद्वानों ने हास्य के बारे में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं-

पाश्चात्य विचारक स्टीफन लीलाक के शब्दों में, “हास्य को जीवन की असंगतियों पर किए गए विचारों एवं उनकी कलात्मक अभिव्यंजना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।”⁴⁰ अर्थात् मानव जीवन में असंगतियों य हास्यपद है उसे कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करना ही हास्य है।

आर्थर पोलाड हास्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, “कॉमेडी जीवन तथा मानव प्रकृति को सद्भावना एवं सहानुभूति के साथ ग्रहण करती है, उसमें कभी-कभी क्षोभ का भाव भी होता है। किंतु उसका दृष्टिकोण सदैव उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है।”⁴¹ हास्य चूँकि भाव प्रधान होता है अतः उसमें सहजता, उदारता तथा सहानुभूति का होना स्वाभाविक है।

शरीर वैज्ञानिकों ने हास्य की परिभाषा इस प्रकार दी है, “बाह्य वातावरण एवं कोई भूली भटकी स्मृति द्वारा मस्तिष्कगत विशिष्ट केंद्र की हलचल का परिणाम जो होठों एवं मन तथा मुख की भाव-भंगिमा पर लौटकर प्रतीत होता है। उसे हास्य कहते हैं।”⁴² बाह्य वातावरण अर्थात् बच्चों को खेलता या हँसता हुआ देखकर या किसी जोकर आदि को देखकर तथा किसी स्मृति के द्वारा मस्तिष्क में अचानक

एक हलचल सी होती है। जिससे मन आनंदित हो उठता है और मुख एवं होठों पर हँसी आ जाती है। इसे ही शरीर वैज्ञानिक हास्य मानते हैं।

हरिशंकर परसाई ने हास्य को इस प्रकार परिभाषित किया है, “आदमी हँसता क्यों है? परम्परा से हर समाज की कुछ संगतियाँ होती हैं, सामंजस्य होते हैं, अनुपात होते हैं। ये व्यक्ति और समाज दोनों के होते हैं। जब यह संगति गड़बड़ होती है। तब चेतना में चमक पैदा होती है। इस चमक से हँसी भी आ सकती है और चेतना में हलचल भी पैदा हो सकती है।”⁴³ अर्थात् जब व्यक्ति और समाज में जो सामंजस्य जो संगतियाँ है, इनमें जब असंगति हो जाती है तब हमें हँसी आ जाती है। यही हास्य है।

डॉ. सावित्री सिन्हा ने हास्य को परिभाषित करते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं, “किसी घटना, क्रिया, परिस्थिति, लेख या विचारों की अभिव्यक्ति में निहित तत्त्व जो उनकी असम्बद्धता बेढंगेपन आदि के कारण मनुष्य के मन में एक विशेष प्रकार का आनंद या मज़ा उत्पन्न करता है वह हास्य या ह्यूमर है।”⁴⁴ किसी भी घटना, कार्य, वातावरण लेख आदि में असंगति दिखलाई देती है। उसे देखकर मानव मन में आनंद उत्पन्न होता है और मनुष्य को हँसी आ जाती है। इसे ही हास्य कहते हैं।

हास्य के विषय में बालेंदु शेखर तिवारी अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं, “हास्य विनोदिनी मन की अभिव्यक्ति मुद्रा है। जिसमें सुखप्रद कोमल भाव अंतर्निहित रहते हैं। जिनके माध्यम से चित्त की संचित गम्भीरता में आकस्मिक विस्फोट सा उठकर चित्त को कुछ क्षणों के लिए सात्विक आनंद से भर देता है।”⁴⁵ अर्थात् मनुष्य के हृदय में जो गंभीरता होती है। उसमें जब अचानक विस्फोट होता है। तब मन में कुछ क्षणों के लिए गंभीरता समाप्त हो जाती है और उसकी जगह आनंद की उत्पत्ति होती है। जिसे हास्य का नाम दिया जा सकता है।

इस प्रकार पाश्चात्य तथा हिंदी के विद्वानों के हास्य के विषय में विचारों को देखते हुए हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि हास्य को किसी परिभाषा के सूत्र में बांधना कठिन है। वह सोद्देश्य या निरुद्देश्य, किसी भी प्रकार का हो सकता है। हँसी उड़ाकर किसी को अपमानित भी किया जा सकता है। उत्तमकोटि के हास्य में बौद्धिकता की अपेक्षा की जाती है। 'हास्य' मानव मन की सहज अभिव्यक्ति होते हुए भी अपने परिवेश में जीवन के विभिन्न रंगों में स्वयं को निदर्शित करता रहता है।

1.5 हास्य और व्यंग्य में संबंध एवं अंतर्विभेद :

हास्य और व्यंग्य का संबंध बहुत ही गहरा है। जहाँ भी व्यंग्य की चर्चा होती है। वहाँ हास्य अवश्य ही उपस्थित होता है। दोनों ही विसंगतियों की ही उपज है। इनके संबंध के विषय में हरिशंकर परसाई ने कहा है, “व्यंग्य के साथ हँसी भी आती, पर वह दूसरे प्रकार की होती है। अत्यधिक गंभीर विषय पर व्यंग्य करते समय यदि उसमें विनोद भी सही मात्रा में हो तो पाठक के हृदय तक विषय की पहुँच सरलता से हो जाती है। पाठक को आनंद भी आता है। साथ ही विकृति के दर्शन भी होते हैं। व्यंग्य की कड़वी औषधि हास्य की मधुर चाशनी में घोलकर पिलाई जाए तो व्यंग्य की मार प्रभावी और मीठी हो जाती है। हास्य के हाने से व्यंग्य में अधिक रोचकता आती है।”⁴⁶ अर्थात् व्यंग्य आक्रामक एवं प्रहारात्मक होता है किंतु उसमें हास्य का पुट डाल देने से उसे ग्रहण करना सरल हो जाता है। जिस प्रकार कड़वी औषधि में मीठा शहद या चाशनी मिलाकर देने पर रोगी उसे आसानी से पी लेता है। उसका प्रभाव भी कम नहीं होता और वह सरलता से ग्राह्य भी हो जाता है।

हास्य और व्यंग्य के संबंध में काका हाथरसी के विचार इस प्रकार हैं, “हास्य और व्यंग्य एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं। हास्य के बिना व्यंग्य में मज़ा नहीं और व्यंग्य के बिना हास्य में स्वाद नहीं आता।

दोनों एक दूसरे का साथ दें तभी जन-गण-मन की मनोरंजनी गाड़ी ठीक से चलती है।”⁴⁷ काका हाथरसी हास्य और व्यंग्य को एक ही गाड़ी के दो पहिए के रूप में देखते हैं। अर्थात् जिस प्रकार किसी गाड़ी का एक पहिया न हो तो उसके बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती है। उसी प्रकार हास्य के बिना व्यंग्य और व्यंग्य के बगैर हास्य अधूरा है।

अमृतराय की हास्य और व्यंग्य की अभिन्नता को मानते हैं। “हास्य और व्यंग्य के रग-रेशे को एक दूसरे से परस्पर अलग करके देख पाना कठिन है, क्योंकि ऐसा व्यंग्य मुश्किल से ही मिलेगा जिसमें हास्य का भी कुछ रंग न हो, व्यंग्य का कुछ काँटा या नोंक न हो।”⁴⁸ अमृतराय कहते हैं कि हास्य में व्यंग्य और व्यंग्य में हास्य चाहे प्रत्यक्ष रूप में, परन्तु होते जरूर है। जहाँ भी व्यंग्य की बात होती है हास्य भी वहाँ अनायास आ ही जाता है।

इस बदलते परिवेश में परम्पराएं तथा सीढ़ियां परिस्थितियों के साथ नहीं बदल पाती हैं इसलिए उनकी विशेष उपयोगिता भी नहीं रह जाती है। इन्हीं कारणों से विसंगतियां ही व्यंग्य को जन्म देती हैं और विसंगतियों से उपजा व्यंग्य हास्य के बिना संभव नहीं है। इस संबंध में डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल कहते हैं कि- “विसंगतियों और विडंबनाओं के रहते कोई भी व्यंग्य हास्य शून्य नहीं हो सकता। कोई भी हास्य व्यंग्य के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता। हास्य से हमारा अभिप्राय मसखरेपन, मजाक या जोकरी से नहीं है। हास्य से हमारा तात्पर्य है हास्यात्मक व्यंग्य।”⁴⁹ अर्थात् हास्य के बिना व्यंग्य और व्यंग्य के बिना हास्य होना असंभव है किंतु व्यंग्य में जो हास्य होता है वह केवल हँसी या मजाक नहीं है वह ऐसा हास्यात्मक व्यंग्य है जिसे सुनकर हँसी के बाद एक प्रकार की तिलमिलाहट पैदा होती है।

व्यंग्य में हास्य अनिवार्य तो नहीं है, किंतु बिना हास्य के व्यंग्य अत्यधिक चुभता है। उसमें अत्यधिक कटुता आ जाती है। इसी कारण काका हाथरसी ने बिना हास्य के व्यंग्य को कोतवाल का हंटर कहा है “वस्तुतः व्यंग्य में यदि हास्य नहीं होगा तो वह कोतवाल का हंटर हो जाएगा। उसकी पीड़ा से

तिलमिलाकर अभियुक्त कैसा अनुभव करेगा उससे आप अच्छी तरह से ही वाकिफ है फिर व्यंग्य की क्या जरूरत है।”⁵⁰ अर्थात् हास्य के बिना व्यंग्य सजा देने का कार्य न्यायालय करता है। इसीलिए व्यंग्य में हास्य का होना आवश्यक है, हास्य व्यंग्य के द्वारा हाने वाली चुभन तथा तिलमिलाहट को कम कर देता है।

अंततः इतना कहना उचित होगा कि व्यंग्य में हँसी की मात्रा कम हो या अधिक किंतु होती अवश्य है। कड़े कठोर व्यंग्य को हास्य थोड़ा लचीला बना देता है। प्रहारात्मक और आक्रात्मक व्यंग्य में हास्य का पुट दे देने से उसे सहन करने की शक्ति आ जाती है। अतः हास्य और व्यंग्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो एक दूसरे के पूरक के रूप में हमारे सामने आते हैं। एक दूसरे के बगैर इन दोनों का असित्तव कुछ भी नहीं है।

प्रारंभ से ही व्यंग्य के साथ हास्य शब्द जुड़ता चला आ रहा है। जहाँ भी व्यंग्य की चर्चा होती है वहाँ हास्य अवश्य ही उपस्थित होता है। इस क्रम में जब हास्य और व्यंग्य के अंतर की बात आती है तो सर्वप्रथम यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि हास्य और व्यंग्य क्या दो अलग विधाएं हैं। कुछ समय पहले अधिकांश समीक्षा व्यंग्य को हास्य का ही एक भेद मानते थे। लेकिन आज यह बात प्रायः मान ली गई है कि हास्य व्यंग्य में मूलभूत अंतर है। जैसे-जैसे व्यंग्य अपने तेवर में प्रखर होता गया, हास्य में जहाँ भाव की प्रधानता रहती है वहीं व्यंग्य में बुद्धि की। इस रूप में हास्य एक और जहाँ मनुष्य को हँसाने व गुदगुदाने का कार्य करता है वहीं दूसरी ओर व्यंग्य समाज की विषमताओं पर तीक्ष्ण प्रहार करके समाज सुधार का प्रयास करता है।

हास्य और व्यंग्य का अंतर स्पष्ट करते हुए एल. जी. पोट्स कहते हैं, “कॉमेडी जीवन तथा मानव प्रकृति को सद्भावना एवं सहानुभूति के साथ ग्रहण करती है। उसमें कभी-कभी क्षोभ का भाव भी होता है। किंतु उसका दृष्टिकोण सदैव उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है। इसके विपरीत व्यंग्य विकृति को नकारता ही नहीं वरन् उसको नष्ट करके ही छोड़ता है।”⁵¹ अर्थात् हास्य का कॉमेडी में सहजता एवं सरलता का

भाव होता है। हास्य किसी भी बात को सरलता से ग्राह्य बना देता है। उसमें यदाकदा उदासीनता का भाव आता है। किंतु हास्य का दृष्टिकोण सदा ही उदारवादी होता है वहीं व्यंग्य सामाजिक असंगति एवं विकृति को पूरी तरह से नकारते हुए उसे पूर्ण रूप से समाप्त करता है।

हास्य और व्यंग्य के अंतर के विषय में डॉ. शेरजंग गर्ग अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं, “व्यंग्य में जहाँ सिर से पाँव तक हिलाने वाला भाव है, वहाँ हास्य उछालने, गुदगुदाने, प्रसन्न करने एवं हर प्रकार के तनाव से मुक्ति पा जाने का परिचायक है। व्यंग्य मुक्त नहीं करता अपितु व्यक्ति को बंधनों और प्रतिबद्धताओं में आबद्ध करता है।”⁵² अर्थात् व्यंग्य प्रहार करने वाला होता है। वह मन को उद्वेलित करता है। प्रयत्न करता है परिवर्तन करने के लिए। हास्य मानव मन को तनाव से मुक्त करके आनंदित करने का कार्य करता है। जबकि व्यंग्य मनुष्य को अपने कर्तव्यों से मुक्त नहीं होने देता है। बल्कि उसे उनके प्रति बांधने का कार्य करता है।

उपर्युक्त दोनों मंतव्यों में यह बात उभरकर सामने आती है कि हास्य जहाँ जीवन को सद्भावना, सहानुभूति, गुदगुदाने, प्रसन्न करने आदि के रूप में सामने आता है। वहीं व्यंग्य विकृति को नष्ट करने के लिए आबद्ध होता है। वह एक आक्रामक योद्धा के रूप में हमारे सामने आता है।

डॉ. शंकर पुणतांबेकर ने हास्य और व्यंग्य के अंतर को बड़ी ही सहजता से स्पष्ट करते हुए कहा है, “हास्य और व्यंग्य के फर्क को एक स्थूल उदाहरण से भी समझा जा सकता है। हास्य गिलास के आधेपन का माखौल उड़ाता है। तो व्यंग्य गिलास के आधेपन पर चोट करता है। हास्य बहिर्मुखी है तो व्यंग्य अंतर्मुखी। हास्य दर्द भुलाने का नशा जगाता है, तो व्यंग्य नशा भुलाने का दर्द जगाता है।”⁵³ हास्य किसी भी वस्तु का बाहरी परीक्षण कर प्रतिक्रिया देता है। जबकि व्यंग्य वस्तु का आंतरिक परीक्षण करके उसके होने के पीछे के रहस्य को जानने का प्रयास करता है। हास्य किसी के आधेपन का मज़ाक उड़ाता है लेकिन व्यंग्य उस आधेपन पर चोट करके उसे भरने का प्रयास करता है।

अमृतराय ने हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "हास्य और व्यंग्य की प्रेरक स्थितियां लगभग समान है लेकिन इस परिस्थितियों के प्रति हास्यकार और व्यंग्यकार की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। व्यंग्य अधिक प्रत्यक्ष रूप से समाजधर्मी होता है, हास्य अधिक मूल्यधर्मी होता है उसकी समाजधर्मिता इसी मूल्यधर्मिता का अंग होती है।"⁵⁴ हास्य और व्यंग्य में कोई सुस्पष्ट विभाजन रेखा खींच पाना एक कठिन कार्य है क्योंकि मेरीडिथ के शब्दों में "व्यंग्यकार जैसे ही भाव प्रधान हुआ हास्य के क्षेत्र पहुँच जाता है और यदि हास्यकार में आलोचना प्रकृति प्रबल होगी तो वह व्यंग्य के क्षेत्र में पहुँच जाएगा।"⁵⁵

हास्यकार समाज, धर्म व राजनीति में व्याप्त विसंगतियों, बुराईयों, विकृतियों का वर्णन भर करना हो अपने उद्देश्य की पूर्ति समझता है जबकि व्यंग्यकार इन बुराईयों को अप्रत्यक्ष रूप से दूर करना अपना उद्देश्य मानता है। "व्यंग्य और हास्य में बारीकी से देखने पर हमेशा काफी व्यापक अंतर पाया गया, मगर प्रयोग में उसे खास महत्त्व नहीं दिया गया है। यही कारण है कि गुदगुदाने, हँसाने, आनंदित करने वाने हास्य को कचोटने, प्रहार करने और तिलमिलाने वाले व्यंग्य के साथ हमेशा रखा जाता है"⁵⁶ अर्थात् हास्य और व्यंग्य में व्यापक अंतर है किंतु व्यंग्य में हास्य का पुट सदैव विद्यमान रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यंग्य तीक्ष्ण एवं प्रहारात्मक होता है वह सामने वाले को तिलमिला उठने पर मजबूर कर देता है किंतु उसमें हास्य की मात्रा होने पर सामने वाला उसे सहजता एवं सरलता से ग्रहण कर पाता है।

कन्हैयालाल नंदन हास्य और व्यंग्य के अंतर को इस प्रकार हमारे समक्ष रखते हुए कहते हैं, "हास्य विकृति का रस लेकर वर्णन करता है, विकृति के विरोध में पैदा होने वाली तीव्र बौद्धिक प्रक्रिया व्यंग्य के अंतर्गत आती है। हास्य शब्द कौतुक से भी पैदा हो जाता है, मसखरेपन से भी उत्पन्न किया जाता है, लेकिन व्यंग्य के पीछे विचार की एक गहरी सराठी होती है। जो हँसी भी पैदा कर लेती है। लेकिन उस हँसी के बाद उभरती है कचोट, तिलमिलाहट जो सोचने को मजबूर करती है।"⁵⁷ हास्य विकृति,

असंगति का वर्णन कर लोगों को हँसाने का कार्य करता है। जबकि व्यंग्य हँसाता तो है किंतु उस विकृति का विरोध करते हुए उसे समाप्त करने का प्रयास करता है। व्यंग्य में हँसी क्षणिक होती है, जो पीछे छोड़ जाती है एक प्रकार की कचोट, तिलमिलाहट। यही कचोट मजबूर करती है परिवर्तन के लिए।

गोपाल प्रसाद व्यास ने हास्य और व्यंग्य की प्रकृति को इस प्रकार शब्दांकित किया है, “विनोद कालिंदी की आनंद लहर है और व्यंग्य बरसाती गंगा की उफनती धारा का कालग्रासी भंवर, विनोद साहित्य का कान्ता सम्मित रस है और व्यंग्य गुलाब का काँटा।”⁵⁸ गोपाल जी ने नदी के माध्यम से हास्य और व्यंग्य में अंतर बताने का प्रयास किया है। हास्य नदी की साधारण लहर के समान है। जिसे देखकर मन आनंदित हो उठता है और व्यंग्य नदी की उस उफनती हुई लहर के समान है जिसमें भंवर बनते रहते हैं अर्थात् जिसे देखकर मन में डर उत्पन्न होता है और यही डर परिवर्तन के लिए बाध्य भी करता है।

हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए शशि शुक्ला ने कहा है कि, “हास्य में मनोरंजन होता है, व्यंग्य में दंश, हास्य में स्नेह, करुणा, उन्फलता होती है, व्यंग्य में आक्रोश, आक्रामकता और चुभन, हास्य असंगतियों में आनंद खोजता है और व्यंग्य विसंगतियों में विद्रुपता-उद्धाटन, गम्भीर वैचारिक चिंतन और अन्याय के प्रतिकार के उपाय खोजता है। हास्य आनंदानुभूति देता है, व्यंग्य संयमित आघात करता है। हास्य गुदगुदाने वाला सुखद भाव है और व्यंग्य परिवर्तन प्रक्रिया की कष्टानुभूति। हास्य सहज सम्भाव्य और कल्पना प्रसूत है, व्यंग्य अनुभवपरक कटु सत्यों पर आधारित यथार्थ चिंतनयुक्त खुरदरी धरती है।”⁵⁹

शशि शुक्ला ने हास्य और व्यंग्य के अंतर की एक परिपक्व परिभाषा दी है। इस परिभाषा में उन्होंने मूलभूत संवेदना, स्वरूप और उद्देश्य के आधार पर हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट किया है। इन्होंने हास्य और व्यंग्य, किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न है इसका पूरा निचोड़ हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

डॉ. कृष्णदेव झारी ने हास्य और व्यंग्य के अंतर को इस प्रकार से समझाया है,

“हास्य में जब आलम्बन के प्रति सहानुभूति या अनुराग की भावना रहती है तो वह शुद्ध हास्य माना जाता है। जब हास्य में कटुता आ जाती है तो व्यंग्य कहलाता है।”⁶⁰ डॉ. झारी की परिभाषा से स्पष्ट है कि आलम्बन के प्रति भाव ही वह मूल तत्त्व है जो हास्य और व्यंग्य के पार्थक्य को समझने में सहायक होता है।

इस प्रकार हास्य और व्यंग्य स्वरूप, स्वभाव और संस्कार की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न है। हास्य का संबंध हृदय से होता है जबकि व्यंग्य का मस्तिष्क या बुद्धि से। हास्य में जहाँ शीतलता होती है वहीं व्यंग्य का मस्तिष्क में गरमाहट। व्यंग्य गंभीर होता है, वह हँसी उड़ाता है किंतु उस उपहास के द्वारा वह सुधार की अपेक्षा रखता है। हास्य कभी सोद्देश्य तो कभी निरुद्देश्य हो सकता है। किंतु व्यंग्य सदैव किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए किया जाता है। हास्य नासमझ, बुद्धिमान, प्रतिभाशाली तथा सामान्य सभी व्यक्ति का मनोरंजन करता है। व्यंग्य को समझने के लिए प्रतिभा एवं बुद्धितत्त्व का होना अति आवश्यक है।

अंत में हम कह सकते हैं कि हास्य केवल मनोविनोद के लिए होता है। लेकिन व्यंग्य सामाजिक विसंगतियों, बुराईयों आदि को उधेड़कर समाज को जागृत करते हुए उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

1.6 हिंदी साहित्य में व्यंग्य की परम्परा :

हिंदी साहित्य की परम्परा में व्यक्ति की सामाजिक चेतना को नवीन आयाम प्रदान करने में व्यंग्य लेखन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। वस्तुतः व्यंग्य विधा स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित हुई है, किंतु व्यंग्य का अस्तित्व हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के विविध कालखण्डों में उपलब्ध रहा है। हिंदी साहित्य के आरम्भिक काल में राज्याश्रित कवियों की बहुलता रही है। सिद्धों, नाथों, के

धर्माश्रित काव्यों में तत्कालीन पाखण्ड को उभारने के प्रसंग में व्यंग्य के स्पष्ट संकेत उपलब्ध होने लगे हैं। सरहपा जैसे सिद्धों ने वैदिक विधानों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। इनके साहित्य में भी तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है।

उपवास, व्रत, पूजा-पाठ करने वाले पोंगा पंडित, पाप करके गंगा में स्नानादि को पुण्य कर्म मानने वाले लोगों तथा पौराणिक धर्मावलम्बियों पर व्यंग्य के अनेक तथ्य तत्कालीन समाज में उपलब्ध होते हैं। सरहपा ने कर्मकाण्ड के खण्डन की प्रक्रिया में वैदिक मान्यताओं पर व्यंग्य प्रहार किए हैं जैसे 'मंतण तंतण धेअण धारण। सत्त्व बिरे बढ विब्भय कारण।

इस रूप में यहाँ मंत्र तंत्र को व्यर्थ समझा गया है। शबरपा ने भी तंत्र-मंत्र देवता आदि की व्यर्थता पर कटाक्ष किए हैं। कवि हरिषेण द्वारा 'धर्म पिरक्खा' में ब्राह्मण धर्म के अनेक पौराणिक आख्यानों तथा प्रसंगों को विसंगतिपूर्ण बताकर उन पर व्यंग्य किया है। यद्यपि इसके व्यंग्य में भौतिकवादी चार्वाकों जैसी प्रखरता नहीं मिलती, फिर भी इनकी रचनाओं में एवं साहित्यकार अधिकांशतः आयुधों की झनझनाहट एवं घुंघरूओं के झंकार में ही डूबे रहे। आयुधों की टंकार एवं पायल की झंकार के बाहुल्य के बीच इस वीर गाथा काल में भी व्यंग्य के दृष्टान्त यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में चन्द्र कवि के द्वारा जयचन्द पर व्यंग्य करते हुए उसे 'बैल' कहना तथा धीर-पुण्डरी की सहायता से पृथ्वीराज की गौरी विजय पर प्राप्त करना। इस विजय के उपरांत पृथ्वीराज उसे सम्मानित करता है, तब सामंत जैत्र तथा चामुण्ड द्वारा यह व्यंग्य किया गया कि धीर-पुण्डरी को गर्व आ गया कि उन्हीं के कारण सम्राट को विजय प्राप्त हुई है। पृथ्वीराज व्यंग्य की इस कटु उक्ति को सह नहीं जाता और धीर-पुण्डरी के पुत्र को दिल्ली से निर्वासित कर दिया। आदिकाल के अंत में हिंदी साहित्य में हास्य व्यंग्य की एक परंपरा सी चल पड़ी जिसका महत्त्वपूर्ण आगाज अमीर खुसरो की रचनाओं में होता है।

अमीर खुसरो हिंदी के चर्चित हास्य कवि कहे जाते हैं। इन्होंने खड़ी बोली में आम जनता की रूचि के अनुकूल पहेलियों, मुकरियों और सुखनों की रचना की जिसमें उनकी हास्य व्यंग्य संबंधी अभिरूचि का प्रस्फुटन परिलक्षित होता है। इन रचनाओं में निहित हास्य-व्यंग्य उनके सामाजिक अनुभव को अभिव्यक्त करते हैं।

खुसरो फारसी के अच्छे विद्वान थे, अतः उनकी रचनाओं में फारसी का चुटीलापन परिलक्षित होता है। उनकी पहेलियों की रसिकता एवं विनोद क्षमता निम्न रूप में द्रष्टव्य है।

“एक नार ने अचरज किया। साँप मारि पिंजड़े में दिया।

जे जो साँप ताल को खाए, सूखे ताल साँप मर जाये।”⁶¹ (दियाबाती)

XXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXX

“श्याम वर्ण और दाँत अनेक, लचकत जैसी नारी,

दोनों हाथ से खुसरो खींचे और कहे तू आ री।”⁶² (आरी)

वहाँ यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि अमीर खुसरो के साहित्य में हास्य की प्रधानता है, तथा व्यंग्य की तीक्ष्णता का अभाव सा है। इनके साहित्य में व्यंग्य के प्रत्यय को ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है इसलिए सरोज खन्ना “इन्हें हास्य को स्वतंत्र सत्ता प्रदान करने वाले हिंदी के प्रथम कवि के रूप में स्थापित करती हैं।”⁶³ व्यंग्य विधा स्वातंत्र्योत्तर काल की देन है। पश्चिम के प्रभाव से विकसित साहित्य की विधा है, लेकिन व्यंग्य का अस्तित्व हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के विविध कालखण्डों में भी मिलता है। व्यंग्य तो वेदों में भी मिलता है। नाट्य में व्यंग्य के सुस्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं। सिद्ध और नाथ साहित्य में उपवास, व्रत, कैवल्य, पूजा-पाठ करने वाले पोंगा पंडित पाप कर गंगा में

स्नानादि को पुण्य कर्म मानने वालों पर, पौराणिक धर्मावलंबियों पर कटाक्ष किया गया है। ऐसे कटाक्ष के कारण ही सिद्ध तथा नाथ साहित्य अधिक मर्मस्पर्शी, सहज, सरल एवं लोकप्रिय बन सका था।⁶⁴ बापूराव की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि व्यंग्य का अस्तित्व हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के विविध काल खण्डों में उपलब्ध है। सरहपा जैसे सिद्धों ने वैदिक विधाओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। इनके साहित्य में तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है किंतु हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा का वास्तविक प्रस्फुटन कबीर साहित्य से प्रारम्भ होता है।

1.6.1 भक्तिकाल में व्यंग्य परंपरा

यद्यपि मध्यकाल के हिंदी साहित्यकार की अभिरूचि भक्ति की ओर अधिक रही है। वे या तो भक्ति रस में डूबकर राम कृष्ण की सौंदर्य उपासना में लीन रहते थे अथवा नायिका भेद लिखकर अपने आश्रयदाता राजाओं की दरबारी विलासिता के गीत गाते थे। उस प्रतिकूल परिस्थिति में व्यंग्य परंपरा के विकास का कोई अनुकूल वातावरण नहीं था परंतु कबीर जैसे संत कवियों का ध्यान तत्कालीन समाज की बढ़ती हुई विसंगतियों की ओर आकृष्ट हुआ और उसे समाज में फैलने से रोकने के लिए उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से समाज को झकझोरने का कार्य किया। हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर ने न केवल व्यंग्य के काव्यात्मक स्वरूप का वातावरण तैयार किया अपितु उन्होंने व्यंग्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। जिससे जनमानस को व्यंग्य के अनुकूल बनाया जा सके। कबीर की साखियाँ, उलटबासियाँ लोगों के बीच पढ़ी और सुनी जाने लगी। कबीर का व्यंग्य हास्य की परिधि से बाहर आकर समाज में परिवर्तन का नवीन मार्ग प्रशस्त करने लगा। कबीर ने तत्कालीन समाज में समभाव दृष्टि रखते हुए प्रत्येक जाति धर्म में व्याप्त अपना मत व्यक्त किया। उन्होंने पंडित मुल्लाओं आदि की कपटपूर्ण नीतियों से लोगों को सावधान करने का प्रयास किया तथा अपने व्यंग्य बाणों से उसका यथार्थ विश्लेषण किया-

“न जाने तेरा साहब कैसा है

मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है?

चिउँटी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है।

पंडित होय के आसन मारै, लंबी माला जपता है॥

अंतर तेरे कपट-कतरनी, सो भी साहब लखता है।

ऊँचा नीचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है॥

चलने का मनसूबा नाही रहने को मन करता है।

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, गाड़ी जमीं में धरता है॥

जोहि लहना है सो नै जइहै, पापी बहि बहि भरता है।

सतवंती को गजी मिलै नहिं, वेश्य पहिरै खासा है।

जेहि धर साधू भीख न पावै, मडुंआ खात बतासा है।

कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है॥”⁶⁵

कबीर की बानी में वैयक्तिक, सामाजिक तथा धार्मिक असंगति पर तीव्र प्रहार है। अंधविश्वासों के निर्मूलन हेतु तथा जीवन में स्वस्थ मूल्यों की स्थापना के लिए उनके द्वारा व्यंग्य किया जाता था। हिंदू-मुस्लिम के धार्मिक आडम्बरों पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं-

“मुंड मुंडाये हरि मिले सब कोई लेत मुंडाया।

बार-बार के मुंडते भेड़ न बैकुण्ड जाय।।”⁶⁶

XXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXX

“दिन भर रोजा रखत है, राति हनत है गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।”⁶⁷

कबीर के लिखित बाह्याडम्बर तथा व्यंग्य के संदर्भ में डॉ. नगेंद्र ने लिखा है, “कबीर में घृणा के साथ दया की मात्रा कम नहीं। एक अंग्रेजी समालोचक ने व्यंग्य की विवेचना करते हुए लिखा है कि बढ़ते-बढ़ते पाप का रूप धारण कर लेती है और व्यंग्य का उद्देश्य धार्मिकता समन्वित हो जाता है। कबीर में ऐसा ही व्यंग्य मिलता है।”⁶⁸

कबीर के व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य था कि अपनी फटकार से धर्म के ठेकेदारों के चुंगल में फंसे निरीह समाज को मुक्त कराना तथा सरल एवं सहज मानवीय धर्म की वास्तविकता बताना। उनके व्यंग्य ने समाज में क्रांति का कार्य किया।

कबीर के बाद सूरदास ने भ्रमरगीत में सगुणभक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करने हेतु निर्गुण भक्ति पर अप्रत्यक्ष रूप में व्यंग्य किया है। सूरदास की गोपियों ने जहाँ उद्धव की ज्ञान गरिमा का मजाक उड़ाया है, उस प्रसंग में व्यंग्य का प्रत्यय परिलक्षित होता है। उद्धव की योजना समझकर गोपियाँ खीझ कर व्यंग्य करती हैं और उद्धव को ब्रज के बाहर जाने के लिए कहती हैं। भ्रमरगीत के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है-

“निर्गुण कौन देश को वासी?

मधुकर! हँयि समुझाय, सौँह दे बूझति साँच, न हाँसी

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?

कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस में अभिलाषी?

पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।

सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यों सो सूर सबै मति नासी।’’⁶⁹

इसके अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भी व्यंग्य प्राप्त होता है। रामचरितमानस में शिव विवाह, नारद मोह, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, रावण अंगद संवाद आदि की घटनाओं में व्यंग्य विविध उद्देश्यों को लेकर आया है। उनकी कृष्ण गीतावली में हास्य-व्यंग्य का पुट यत्र तत्र उपलब्ध होता है।

“विधि के बासी दासी तपी व्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे।

गौतम तीय तरी ’तुलसी’ से कथा सुनि में मुनिवृंद सुखारे।

हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।

कीन्हीं भी रघुनायक जु! करूना करि कानन को पगु धारे।’’⁷⁰

इस प्रकार से भक्तिकालीन कवियों के काव्य में व्यंग्य का प्रयोग हुआ है किंतु कबीर के काव्य में जो व्यंग्य है वह तीखे तथा तिलमिला देनेवाले व्यंग्य हैं। जिसमें हास्य का मिश्रण नहीं है। कबीर के बाद भक्तिकाल में जो व्यंग्य ही हैं और यह भी यत्र तत्र ही उपलब्ध होते हैं।

1.6.2 रीतिकाल में व्यंग्य परंपरा

भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल में अधिक व्यंग्य नहीं मिलता। रीतिकालीन कवि अधिकतर अपने आश्रयदाताओं के स्तुतिगान में या फिर नारी का सौंदर्य वर्णन करने में ही प्रसन्न हुआ करते थे। इसलिए इस काल में व्यंग्य कम ही देखने को मिलता है। इस काल में व्यंग्योक्तियाँ कवि केशवदास, घनानंद, बिहारी, रहीम, वृन्द, रसखान, बेनी आदि की रचनाओं में यत्र-तत्र उपलब्ध है। 'बिहारी सतसई' प्रधान काव्य होते हुए भी इसमें व्यंग्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं

“जपमाला, छापा, तिलक सै न एकौ काम।

मन-काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम॥”⁷¹

यहाँ बिहारी ने धर्म के प्रति आडम्बर करने वाले लोगों पर व्यंग्य किया है। इसी प्रकार केशवदास की 'रामचंद्रिका' के चौथे प्रकाश में राजा जनक की सभा में सीता-स्वयंवर, बाणासुर-रावण के संदर्भ में व्यंग्य के उदाहरण मिलते हैं। कवि वृन्द ने भी नीति के दोहों के माध्यम से समाज के अनैतिक व्यवहार का पर्दाफाश किया है। कवि रहीम ने समाज के उच्चवर्ग के लोगों की स्थिति के संबंध में अपने दोहों के माध्यम से व्यंग्य किया। रहीम कहते हैं कि सच्चे व्यक्ति इस जग में नहीं रह पाते हैं-

“अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।

साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम॥”⁷²

इस प्रकार छुट पुट रूप में हमें रीतिकाल में व्यंग्य के दर्शन होते हैं किंतु व्यंग्य का प्रवाह प्रभावी रूप से इस काल में उपलब्ध नहीं है।

1.6.3 भारतेन्दु युगीन व्यंग्य परंपरा :

कबीर के बाद भक्तिकाल एवं रीतिकाल में व्यंग्य का वह तीक्ष्ण प्रहार दब-सा गया था किंतु इतना तो उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य में भारतेन्दु युग से पूर्व भी व्यंग्य की परंपरा मिलती है। भक्तिकाल में सूरदास, तुलसीदास तथा रीतिकाल में वक्रोक्ति, अन्योक्ति तथा समासोक्ति के रूपों से किया गया व्यंग्य भारतेन्दु युग की व्यंग्य परंपरा से जोड़ने में सहायक सिद्ध हुआ है। वास्तव में कबीर के बाद भारतेन्दु युग में ही व्यंग्य की उस तीव्रता को पुनर्स्थापित करने का कार्य किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वयं व्यंग्य का परिष्कार करके उसका नवीनीकरण कर गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं को संवारने का कार्य किया। इनके समय में व्यंग्य की प्रखरता विशेष रूप से प्रहसनों के माध्यम से निखरी और इन प्रहसनों में सामाजिक विसंगतियों को प्रभावी ढंग से उभारा गया। इस काल के व्यंग्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी श्रेष्ठ व्यंग्यकार थे।

भारतेन्दु युग में अंग्रजी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से समाज में आधुनिकता का संचार हो चुका था। अंग्रजों द्वारा भारत को लूटने की प्रक्रिया को अवरूद्ध करने में तत्कालीन साहित्यकारों ने नवजागरण लाने का प्रयास किया। उन लोगों ने अपने साहित्य में करारे व्यंग्यों से ब्रिटिश राजनीति को कटघरे में खड़ा करने का कार्य किया। इस युग में नाटक, एकांकी एवं प्रहसन आदि सभी में व्यंग्य का प्रयोग किया गया किंतु सबसे अधिक निबंधों का ही प्रधान्य बना रहा। भारतेन्दु एवं उनके समकालीन व्यंग्यकारों ने काव्य के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। भारतेन्दु ने हिंदी में पैरोडी साहित्य की परम्परा को स्थापित किया जिसका प्रारम्भ ‘बंदर सभा’(1879) से माना जाता है। उन्होंने ब्रिटिश शासकों के लूटेरे और लालची चरित्र को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है-

“भीतर भीतर सब रस चूसै

हँसि हँसि के तनम न धन मूसै

जाहिर बातन में अति तेज

क्यों सखि साजन, नहिं अंगरेज’’⁷³

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने देश की पराधीनता और कुप्रथाओं पर भी व्यंग्य प्रहार किया है। ‘लेवी प्राण लेवी’ में व्यंग्य के माध्यम अंग्रेजों की स्तुति करने वाले भारतीयों पर तीखा व्यंग्य किया-“श्रीयुत लाई म्यौ साहिब बहादुर गवर्नर जनरल हिंद ने काशी में। नवंबर को लेवी का दरबार किया था.....वाह वाह दरबार क्या था। कठपुतली का तमाशा था या बल्लमट्टेरी की ‘कवायद’ थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतान था या ‘फौजदारी’ की सजा थी।.....जब सब लोगों की हाजिरी हो चुकी श्रीयुत लार्ड साहिब कोठी पधारे और सब लोग इस बंदीगृह से छूट-छूटकर अपने-अपने घर आए। रईसों के नंबर की यह दशा थी कि आगे के पीछे, पीछे के आगे अंधेर नगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये बेचारे तो मोम की नाक हैं चाहे किधर फेर दो। हाय, पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ेंगे और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वर वह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंड के वासियों ने पाई है।’’⁷⁴

धार्मिक कर्मकाण्ड, कुप्रथाओं, छुआछूत आदि पर भी उन्होंने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। उनके द्वारा लिखित ‘एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न’, ‘अंधेर नगरी’ आदि साहित्य भारतीय नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना जागृत कर रहा था जो आज भी इस समाज में प्रासंगिक है। ‘अंधेर नगरी’ का चूरन प्रसंग व्यंग्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है-

“चूरन जब से हिंद में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।

चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रिश्त तुरत पचावैं।।

चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।

चूरन खावै एडिटर जाता। जिनके पेट पचै नहिं बाता॥

चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता॥

चूरन पुलिस वाले खातें सब कानून हजम कर जाते ॥”⁷⁵

चूरन प्रसंग में भारतेन्दु ने एक साथ संपादक महाजन, पुलिस, साहब आदि सबकी खबर ली है। ‘भारत दुर्दशा’ में भारतीयों की अकर्मण्यता पर व्यंग्य है तो ‘वैदिक हिंसा हिंसा न भवति’ में मांशापजीवी तथा मदिरा सेवन करने वालों पर गंभीर व्यंग्य किया गया है। अंग्रेज स्तोत्र में अंग्रेज शासकों की लालची एवं लुटेरी प्रवृत्ति से प्रभावित उनके शासन को इस प्रकार से प्रदर्शित किया गया है, “तुम नृसिंह हो क्योंकि मनुष्य एवं सिंह दोनोंपन तुममें है। टैक्स तुम्हारा क्रोध है और परम विचित्र हो, क्योंकि तुम बामन कर्म में चतुर हो, तुम परशुराम हो क्योंकि पृथ्वी निक्षत्री कर दी है, अतएव हे लीलाकारिन्! हम तुमको नमस्कार करते हैं। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराटरूप अंगरेज! हम तुमको प्रणाम करते हैं।”⁷⁶

भारतेन्दु ने समकालीन समाज उच्चवर्ग और निम्न वर्ग की विसंगतियों पर भी व्यंग्य किया ‘विषम्य विषमौषधम्’ में भारतेन्दु ने चाटुकारिता पर व्यंग्य करते हुए कहा है, “वाह रे सिफारिशियों? अरे खुशामद की भी कुछ हद होती है। एक बादशाह ने हुक्म दिया बड़े-बड़े खुशामदी लाओ। तीन आदमी हाजिर किए गए। बादशाह ने पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? पहला बोला हुजूर क्यों नहीं? बादशाह ने उसे निकाल दिया। दूसरी से पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? उसने कहा, जहाँपनाह जहाँ तक हो सकेगी। बादशाह ने उसे भी निकाल दिया। तीसरे से पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? बोला, गरीब परवर क्या मजाल। भला मेरी ताकत है कि हुजूर की खुशामद कर सकूँ। बादशाह ने कहा, हाँ यह पक्का खुशामदी है।”⁷⁷

इस तरह यह स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु अपने समय के व्यंग्य ज्वालामुखी थे। उन्होंने अपने व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति का साक्षात्कार कराने का कार्य किया। उनकी व्यंग्य शैली अत्यंत प्रहारात्मक रही है। उनके जीवन की समझ एवं व्यंग्यात्मक तेवर समकालीन समाज का झकझोरने वाले थे। जिसका जीवन्त उदाहरण 'अंधेर नगरी' है। वह केवल एक नाटक ही नहीं है वरन् हजारों साल से चली आ रही राजशाही और सामंतशाही पर एक तीखी अभेद चोट के साथ-साथ कहीं न कहीं अंग्रेजों की पूरी शासन व्यवस्था को अपनी चपेट में ले लेता है। इस रूप में भारतेन्दु ने व्यंग्य विधा में जो मील का पत्थर गाड़ा था उसकी ताकत और चमक आज भी एक कौंध पैदा करती रहती है।

भारतेन्दु युग के समर्थ रचनाकारों में बालकृष्ण भट्ट ने भी अपने व्यंग्यों के लिए जाने जाते हैं। बालकृष्ण भट्ट ने सामाजिक समस्याओं पर जमकर लिखा है। 'बाल विवाह', स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा, राजा और प्रजा, कृषकों की दुरव्यवस्था, अंग्रेजी शिक्षा और प्रकाश, हमारे नये सुशिक्षितों में परिवर्तन, देश सेवा का महत्त्व, महिला स्वातंत्र्य आदि निबंध इसी प्रकार के निबंध हैं। भारतीय मानस की दुर्दशा के पीछे कहीं न कहीं रूढ़िवादिता का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है अतः जर्जर रूढ़ियों पर वे कुठाराघात करते हैं। अपने खरे स्वभाव और साहसिक तेज के बल से जो भी व्यंग्य बाण उनकी लेखनी से निकलता था वह अपने लक्ष्य को भेदे बिना नहीं रहता था। डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्हें भारतेन्दु से भी बढ़कर युग का श्रेष्ठ क्रांतिकारी विचारक कहा है। भट्ट जी का जीवन अभावों से जुड़ा रहा किंतु उन्होंने परिस्थितियों से भी हार नहीं मानी। इन परिस्थितियों के कारण ही सामाजिक विषमता तथा राजनीतिक अन्याय के प्रति संचित क्षोभ ही व्यंग्य का रूप लेकर उनके साहित्य में आया।

बालकृष्ण भट्ट ने तत्कालीन भारतवासियों की दुर्दशा, मद्यपान, महाजनों की कंजूसी, स्त्रियों की दशा आदि सामाजिक बुराइयों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया। अपने 'दीर्घायु' शीर्षक में तथाकथित प्रतिष्ठित लोगों की जीवन्त शैली पर व्यंग्य किया है, "वकील बैरिस्टर तथा जान लोग दीर्घकालीन जीवन

इसलिए चाहते हैं कि कानूनों के काल में प्रजा को फँसाने के लिए हिंदी की बिंदी निकाल कानून की बारीकियों को सान चढ़ाते रहे। एडीटर दीर्घकालीन इसलिए चाहते थे कि अपनी कलम का मन अपनी ओर खींच ले पर सेंडिसन के भय ने उन्हें संकुचित कर दिया तो उनका हौसला पस्त हो गया। हमारे सेठ जी दीर्घकालीन जीवन की इच्छा इसलिए रखते हैं कि गांजिया पर गांजिया रूपयों से भर तहखानों में सेंट के रखते जाएं।”⁷⁸

भट्ट जी ‘भक्ति शीर्षक’ में मायाभक्ति के रूप में उन लोगों पर व्यंग्य किया है, जो विवाहोपरांत माता पिता भाई बहन आदि सभी रिश्ते नाते भूलकर केवल पत्नी की ही बात सुनते हैं, “मन वचन कर्म सर्वताभावेन अर्धांगिनी में दास्यभाव इसका सारांश है। माता पिता कुनबा-गोत सब से मुँह माड़ अनन्य भाव से पत्नी देवी की अराधना ही इस महाव्रत का साफल्य है।”⁷⁹

स्त्रियों को अशिक्षा और पर्दा प्रथा पर व्यंग्य के रूप में भट्ट जी ने ‘चलन की गुलामी’ निबंध लिखा है जिसमें स्त्रियों की दशा का दृष्टांत उल्लेखनीय है, “घूँघट तीन हाथ का लम्बा लटकता हो, नख से शिख तक सोने से लदी हों पर पाँव नंगा रहेगा और बेड़ी की तरह एक-एक पाँव में पाँच-पाँच सेर का बोझ डाले संतोष और प्रसन्नता नहीं।”⁸⁰ अतः यहाँ पर पारम्परिक रूप में गहनों से लदी स्त्रियों पर व्यंग्य किया गया है जो घूँघट में रहती हैं फिर भी उन्हें श्रृंगार के नाम पर गहनों का बोझ ढोना पड़ता है। इसी प्रकार कड़ाके की सर्दी में पुण्य-लाभ के लिए कार्तिक स्नान करने जाने की प्रथा थी। स्त्रियाँ के इस नहान में पुरुषों का साथ जाना अवश्य होता था। स्त्रियों की इस असहाय अवस्था का व्यंग्य चित्र भट्ट जी ने कार्तिक नहान निबंध में प्रस्तुत किया है “उन नहाने वालों के गिरोह में जो स्त्रियाँ थीं, वे गाजर मूली की तरह मर्दों के साथ घिसटती चली जा रही थीं।”⁸¹ इस प्रकार भारतेन्दु काल में स्त्रियों की दयनीय दशा पर व्यंग्य किया गया है।

भारतेन्दु युगीन व्यंग्य परम्परा में प्रताप नारायण मिश्र का भी अग्रणी स्थान रहा है। ब्राह्मण पत्रिका के प्रत्येक अंक में सामाजिक एवं राजनीतिक पाखण्ड के संदर्भ में व्यंग्यात्मक चुटकियां लिया करते थे। देशी वस्तुओं का अनादर एवं देश भक्ति के प्रकार का ढोल पीटने वालों के विरोधाभासी जीवन शैली पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं-“देशी कारीगरों को देश ही वाले नहीं पूछते। विशेषतः जो छाती ठोक-ठोककर ताली बजवाकर कागज के तख्ते रंग-रंग कर देश हित के गीत गाते फिरते हैं, वह और भी देशी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बर्झ समझते हैं।”⁸² अतः उस समय भी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता था जिसे मिश्र जी बताने का प्रयास करते हैं।

प्रताप नारायण मिश्र व्यंग्य बाणों के माध्यम से समाज को सचेत करके उसे उन्नत पथ पर ले जाना चाहते थे। इस रूप में व्यंग्य मिश्र जी के लेखन का अविभाज्य अंग रहा है। उनका उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज के अन्तर्संबंधों को मजबूत आधार उपलब्ध कराना था। इसलिए वे सामान्य विषय को लेकर भी उसके गर्भ में छिपे गम्भीर सनातन मानवीय सत्य को उद्घाटित कर लेते थे। ‘दिन थोड़ा है’, दूर जाना है, मुक्ति की धूप, देसी कपड़ा आय आदि शीर्षकों को देखते ही उनकी दृष्टि का परिचय मिल जाता है। नवीनता की खोज एवं गतिहीन परंपराओं पर चोट करना उनके व्यंग्य का केंद्रीय तत्त्व रहा है।

भारतेन्दु युगीन परंपरा को आगे बढ़ाने में उस दौर के समर्थ गद्यकार राधाचरण गोस्वामी भी उल्लेखनीय है। ये बूट के माध्यम से अंग्रेजों की चमचागिरी करने वालों पर तीक्ष्ण प्रहार करते रहे हैं-“ऐसे बूट धारियों को खास रुतबा और खिताब मिल जाता है। वे राय साहब एवं राय बहादुर हो जाते हैं। शायद इसीलिए राधाचरण गोस्वाली भी बूट को बूट न कहकर ‘मि. बूट’ कहते थे और बूट गोरा हो या काला, पैरों को छूने के लिए हमेशा बेताब है।”⁸³

इस प्रकार भारतेन्दु युग में व्यंग्य की संवेदना राष्ट्रीय चेतना की भावभूमि पर तैयार हुई है। इस युग में साहित्यकारों ने अंग्रेजों की नीति, तथा उन भारतीयों पर तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार किए हैं जो अंग्रेजों की चमचागिरी करके उच्च पद पर आसीन हो जाते थे।

1.6.4 द्विवेदी युग में व्यंग्य परम्परा

व्यंग्य विधा की परंपरा में भारतेन्दु युग की जिंदादिली, चुहुलता और फक्कड़पन द्विवेदी युग में आकर रुक सी गई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व के प्रभाव में इस काल में अपेक्षाकृत संयत मर्यादित रूप में व्यंग्य का विकास हुआ। बालमुकुंद गुप्त इस युग के बड़े सशक्त व्यंग्यकार थे। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के बीच की कड़ी थे। उन्होंने प्रहारात्मक, राजनीतिक व्यंग्य की रचना की। जनजागरण की तीव्र इच्छा के कारण ही उन्होंने व्यंग्य को प्रहारक तथा सुधारक के रूप में प्रयुक्त किया। ‘शिवशम्भु के चिट्ठे, चिट्ठी और खत’ उनके निबंधों के प्रमुख संग्रह हैं। इसमें उन्होंने राजनीतिक विसंगतियों को कलात्मक से उधाड़कर रख दिया है। इन्होंने विदेशी शासन पर व्यंग्य किए हैं। एक तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन भारतवासियों को ‘झूठा’ कहा था। उसी को लक्ष्य कर गुप्त जी व्यंग्य करते हैं-

“हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।

सच है सभ्य देश की चीज, तुमको उसकी कहाँ तमीज?

औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उड़ाना।

ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।

बोले और करे कुछ और, यही सभ्य सच्चे के तौर।

मन में कुछ मुँह पे कुछ और, यही सत्य है कर लो गौर।

झूठ को जो सचकर दिखलावे, सो ही सच्चा साधु कहावे।

मुँह जिसका हो सके न बंद, समझो उसे सच्चिदानंद॥⁸⁴

द्विवेदी जी उस युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार थे। नगर निगम के भ्रष्टाचार अंधाधुंध प्रशासन समाज में फैले अज्ञान, अंधश्रद्धा, छूआछूत आदि सभी पर उन्होंने व्यंग्य किए हैं। शिक्षा प्रणाली पर व्यक्ति तथा समाज के विविध दोषों, विसंगतियों पर उन्होंने व्यंग्यों की जो मार की है उनकी चोटों से दोषी बच नहीं सकता। व्यंग्य बाण के सही परिणाम के लिए उन्होंने छोटे-छोटे वाक्य, बोलचाल की भाषा तथा मुहावरों का योग्य प्रयोग किया है। इसी से उनके व्यंग्य पैसे से पर रोचक बनते थे।

द्विवेदी युग की व्यंग्य परंपरा में नाथूराम शर्मा 'शंकर' का भी विशिष्ट स्थान है। 'गर्भरण्डा रहस्य' इनकी सुप्रसिद्ध व्यंग्य कविता है, जिसमें गर्भ में ही विधवा हो जाने वाली बालिका के माध्यम से सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर कुठाराघात किया गया है।

बालमुकुंद गुप्त तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् सरदार पूर्ण सिंह, पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी तथा बाबू गुलाबराय के निबंधों में प्रचूर मात्रा में व्यंग्य देखने को मिलता है। पूर्ण सिंह ने निकम्मों, पाखंडियों, कुरीतियों, धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, निकम्मे पादरियों पर, पाखण्डी मौलवियों तथा पण्डितों पर, 'सच्ची वीरता, पवित्रता, मजदूरी और प्रेम, आचरण की सभ्यता आदि निबंधों में जमकर आघात किया है। पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने खोखले रीति, रिवाज, ऊँच-नीच की भावना तथा लोगों की स्वार्थ बुद्धि पर जोरदार व्यंग्य किया है। ऐसे व्यंग्यों के उदाहरण 'मारोसि मोहि कुठाऊँ', 'सोहम', कछुआ धर्म' आदि निबंधों में पाये जाते हैं।

इसी प्रकार बाबू गुलाबराय ने भी अपने निबंधों द्वारा व्यंग्य की चोटे की हैं। नेताओं की विसंगतियाँ, समाज के अग्रणी भाग्य विधाता के नकलीपन पर, सरकारी अधिकारियों पर उन्होंने बहुतेरे

व्यंग्य किए हैं। सीमावर्ती चोर, ठलुआ क्लब, लेखक की आत्मकथा, बेकार वकील, आफत का मारा आदि उनके निबंधों में व्यंग्य के अच्छे उदाहरण देखने को मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त ईश्वरीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि का नाम उल्लेखनीय है। किंतु द्विवेदी युग के व्यंग्य में वह प्रहार नहीं आ सका जिसकी नींव भारतेन्दु युग में रखी गई थी।

1.6.5 स्वतंत्रता पूर्व व्यंग्य परंपरा

वस्तुतः भारतेन्दु के परवर्ती युग में हिंद व्यंग्य साहित्य का नेतृत्व छायावाद के स्तम्भ कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के द्वारा किया गया। उनमें व्यंग्य की आत्मा को पहचानने वाली भारतेन्दु जैसी दृष्टि थी। छायावादी युग ने भारतेन्दु युग की अच्छी परंपराओं को विकसित करने में सहयोग प्रदान किया। राजनीतिक दशा में परिवर्तन न होने के कारण इस समय भी सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति पहले जैसी ही बनी थी। अशिक्षित भारतीय जनता रूढ़ियों, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर आदि से त्रस्त थी। कर का भार, अकाल, विषमता, जात-पात छूआछूत आदि समस्याएं देश भर में उभर आयी थी। ऐसी विपन्न अवस्था में अंग्रेज शासकों के अत्याचार पर इस युग के व्यंग्यकारों ने अपने व्यंग्य प्रहार से लोगों के दुःख दर्द की पोल खोलने का कार्य किया।

व्यंग्य की इस असाधारण शक्ति को अपनी रचनाओं में आजमाने और उसके माध्यम से अपने समय का संवेदनात्मक इतिहास लिखने वालों में प्रेमचन्द एवं जयशंकर प्रसाद का भी विशिष्ट स्थान है। प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानियाँ बड़े भाई साहब, कफ़न, पूस की रात, दो बैलों की कथा आदि व्यंग्य से भरी पड़ी हैं। इनके उपन्यासों में भी व्यंग्य सर्वत्र लक्षित होता है। जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण इनके सम्पूर्ण साहित्य में कहीं न कहीं दिखाई पड़ ही जाते हैं। 'गोदान' उपन्यास में किसान ठाकुर से इस रुपये

कर्ज माँगता है और ठाकुर उसे दस रुपये का दस्तावेज लिखवाकर पाँच रुपये नजराने और तहरीर, दस्तूरी एवं ब्याज के काट लेता है। इस पर किसान इस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है-

“हाँ सरकार? अब पाँचो यह भी मेरी तरफ से रख लीजिए।

कैसा पागल है।

“नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन को। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने का, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक वह आपके क्रियाक्रम के लिए।”⁸⁵ इस प्रकार प्रेमचन्द भोले-भाले किसानों को कर्ज देने के नाम पर ठाकुर, जमींदार किस प्रकार उनका शोषण करते हैं इसे अपने उपन्यास में उजागर करते नज़र आते हैं।

जयशंकर प्रसाद की ‘ध्रुवस्वामिनी’ में भी नारी दमन, जर्जर शासन व्यवस्था तथा भ्रष्ट और विलासी शासक पर चुभता हुआ व्यंग्य है। प्रसाद ने इसी प्रकार चंद्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त जैसे ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए जा रहे अत्याचारों, शिक्षा, धर्म, सामंती वर्ग सभी पर सटीक व्यंग्य किया है।

छायावादी चिंतकों की परंपरा में व्यंग्य की ताकत एवं मर्म को सबसे अधिक समझने वालों में निराला जी का विशिष्ट स्थान रहा है। इन्होंने जिन पर अन्याय होते देखा उनकी ओर से विरोध में आवाज़ उठाई। इसके लिए इन्होंने व्यंग्य को अपनाया। अपनी कहानियों तथा कविताओं के माध्यम से भेदभाव के विविध रूपों पर इन्होंने कड़े प्रहार किए हैं। ‘कुल्लू भाट’ इनका महत्वपूर्ण उपन्यास है, तो ‘कुकुरमुत्ता’ काव्य के रूप में व्यंग्य की विशिष्टता का प्रतिनिधित्व करता है। ‘सरोज स्मृति’ में तत्कालीन समाजिक असंगतियों को उजागर किया गया है। निराला अपने व्यंग्य के माध्यम से एक ओर दोषी को झकझोर देना

चाहते हैं तो दूसरी ओर नव जागरण भी लाना चाहते थे। कुकुरमुत्ता कविता में उन्होंने 'एलीट' वर्ग जो आम आदमी को उपेक्षा करते हैं, पर जमकर प्रहार किए हैं-

“पहाड़ी से उठा सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता-

अबे सुन बे, गुलाब

भूल मत गर पाई खुशबू रंगो आब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट

कितनों को तूने बनाया है गुलाम”,⁸⁶

इस प्रकार इस कविता के माध्यम से निराला ने कुकुरमुत्ता (आम आदमी) द्वारा गुलाब (एलीट वर्ग) पर तीव्र व्यंग्य प्रहार किए हैं। 'कुकुरमुत्ता' कविता की जो ताकत है, वह दूसरे का खून चूसने वाले 'एलीट' वर्ग के गुलाब के मुकाबले ज़मीन पर पर रहे कुकुरमुत्ते की अस्खडता और व्यंग्यात्मकता की मार से पैदा हुई है। कुकुरमुत्ता दरिद्रों की, विपन्न और तिरस्कृत उपेक्षितों की आवाज है। इस कविता में पूँजीवादियों और साम्यवादियों पर करारा व्यंग्य किया गया है।

इसी प्रकार 'गर्म पकौड़ी', 'नी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग', 'तोड़ती पत्थर', 'दान' आदि अनेक रचनाओं में निराला द्वारा तीखा व्यंग्य किया गया है। सियारामशरण गुप्त की रचनाओं में भी शोषण सामाजिक कुरीतियों, विदेशी भाषा का मोह रखने वालों आदि पर खूब व्यंग्य मिलते हैं।

हिंदी व्यंग्य परंपरा में स्वतंत्रता पूर्व के इस समय में भारत में अंग्रेजों का शासन होने के कारण समाज में जर्जरता की स्थिति हो गई थी। अतः इस युग में व्यंग्य का उपयोग ढाल के रूप में किया गया।

व्यंग्य की ऐतिहासिक परंपरा से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि भारतेंदु युग का किशोरावस्था का व्यंग्य स्वतंत्रापूर्व काल तक उत्तर किशोरावस्था में पहुँच चुका था। इस काल के कवियों ने भारतेंदु के पश्चात् व्यंग्य को नवीन दिशा दी और इसे आगे बढ़ाया। यथार्थवादी धरातल पर सामाजिक विषमता को उभारा और मौलिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। जिसके कारण व्यंग्य को प्रयोग का एक नवीन धरातल मिला। प्राप्त ज्ञान तथा स्वानुभाव के बल पर संयत होकर व्यंग्य का प्रहार इस युग का वैशिष्ट्य बन गया। अब व्यंग्य ने विश्लेषणात्मक आलोचना पद्धति का आलम्बन प्राप्त कर लिया, जिससे नवीन चिंतन का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसका प्रतिफल स्वतंत्रोत्तर व्यंग्य साहित्य में परिलक्षित होने लगा।

1.6.6 स्वातन्त्र्योत्तर व्यंग्य परम्परा :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक परिस्थिति बदलने के कारण समाज के सभी अंगों में परिवर्तन होने की अपेक्षा की गयी। संविधान निर्माण प्रक्रिया में धर्म निरपेक्ष राष्ट्र की संकल्पना अपनाई गई जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपने-अपने धर्म संप्रदाय के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई, किंतु इसी युग में नेताओं की कथनी-करनी में बड़ा अंतर आने लगा। चुनाव, दलबदल की प्रवृत्ति, नैतिक भ्रष्टता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, खुशामद आदि के कारण राजनीतिक पृष्ठभूमि पर वैविध्यपूर्ण विसंगतियाँ परिलक्षित होने लगीं। परिणामस्वरूप समाज की अधोगति की ओर बढ़ने लगा। स्वतंत्रता पूर्व के संजोये हुए सभी सपने टूटने लगे। कुरीतियों पारम्परिक आडम्बर, धार्मिक अभिनय, शिक्षा की विसंगतियाँ नये रूप में बढ़ने लगीं। अफसर मनमानी करने लगे तो चपरासी में अपने को अफसर से कम नहीं समझते थे। देश में विकास कार्य के नाटक होने लगे तथा प्रशासन लूट की प्रक्रिया में संलग्न हो गया। विसंगतियों की व्यापकता की वास्तविक अभिव्यक्ति के लिये इस काल में व्यंग्य को फलने फूलने का मौका मिला।

स्वातन्त्र्योत्तर समाज की तत्कालीन परिस्थिति ने व्यंग्य विधा के लिए आलम्बन प्रदान किया। कबीर की व्यंग्य शैली से प्रभावित 'कबीर' के लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचनात्मक शैली में व्यंग्य को विकसित किया। 'कल्पलता' और 'अशोक के फूल' में संग्रहीत निबंध व्यंग्य तीव्रता को प्रमाणित करते हैं। उनके निबंध 'जब दिमाग खाली है' का एक उदाहरण उल्लेखनीय है, "हिंदू कहलाने वाले जीवों की बात कम विचित्र नहीं है। कभी-कभी तो ऐसी विचित्र बातें दुनिया के किसी भी कोने में मिल सकती हैं। यहाँ लोगों को कुत्ते-बिल्ली से भी बदतर माना जाता है। यहाँ विधवाओं को फुसलाया जाता है और गर्भपात करवाया जाता है। पर सती अन्यज रमणियों को प्रवेश नहीं करने दिया जाता क्योंकि वह हिन्दू हैं। यहाँ अन्याय को न्याय कहकर चला दिया जाता है।"⁸⁷ इस रूप में आचार्य द्विवेदी की व्यंग्यात्मक निबंधों की महत्ता इस तथ्य में निहित दिखाई देती है कि वह पाठक को सोचने पर ही विवश नहीं करते अपितु अनाचार के विरुद्ध स्वर ऊँचा करने का साहस भी करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में द्विवेदी जी के निबंधों में व्याप्त व्यंग्य में भारतीय संस्कृति को पुनः प्रकाश में लाने के बाद, समाज में जागरण एवं नवचेतना लाने का प्रयत्न किया। इसी समय व्यंग्य में मजबूती के साथ साहित्य में उतारने के कार्य नागार्जुन द्वारा किया गया। उनके स्वभाव में जो विद्रोह था वह परिवेश से उन्हें प्राप्त हुआ था। उन्होंने सदा सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व किया। निराला से प्रभावित होने के कारण निम्न वर्ग में जागृति लाने के लिए वह सीधे उनसे प्रश्न करते हैं। उनकी इस बातचीत में पीड़ित के प्रति संवेदना और उच्च वर्ग के प्रति व्यंग्य की फटकार दिखाई देती है-

“रहोगे तुम क्या सदा गुलाम?

हमेशा खाओगे उच्छिष्ट?

बेचते रहेंगे पशु की भांति

अरे, कब तक तुमको ये लोग?

हाय, पाकर भी मानव देह

तुम्हारा यो बदतर है हाल

तनिक भी ची-चू किया भी कि नहीं

खींच लेते हैं जिंदा खाल’,⁸⁸

नागार्जुन ने युग वैषम्य तथा अभावग्रस्त जीवन का डटकर सामना किया तथा अन्य को भी इसके लिए प्रेरित किया। उनकी रचनाओं में सरलता के साथ ही अंगारों का ताप भी भरा हुआ मिलता है। अपने उपन्यासों में इन्होंने अत्याचारी, पाखण्डी, स्वार्थी तथा भ्रष्ट लोगों के कुकृत्यों को अपने व्यंग्यों से उघाड़ा। व्यंग्य का यह अत्यंत सरल तेज स्पष्ट एवं प्रखर रहा है। इसी परम्परा को और अधिक सशक्त बनाने में प्रभाकर माचवे ने कीर्ति स्थापित की है। व्यंग्यात्मक और विचारात्मकता माचवे जी के साहित्य की विशेषता रही हैं। अपने व्यंग्यों के आलंबनों के विषय में उनका निम्न दृष्टांत उल्लेखनीय है-

“मेरे व्यंग्यों में मैं अपने को भी नहीं छोड़ता बल्कि ‘आत्मगत सर्वभूतेषु’ मैं देखता हूँ-जैसा भूत(प्राणी) मैं खुद हूँ औरों में भी उसी भूत को नाचते देखता हूँ”,⁸⁹

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर व्यंग्य की इस परंपरा में हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा ने आगे बढ़ाया। किंतु व्यंग्य को शिखर पर पहुँचाने का श्रेय व्यंग्यकार त्रयी हरिशंकर परसाई, शरद जोशी एवं रवींद्रनाथ त्यागी को जाता है। जिन्होंने न केवल अब तक की अज्ञात रही सम्भावना खोजी अपितु व्यंग्य को महज हास्य का जोड़ीदार समझे जाने वाली के रूप में स्थापित किया।

1970 के दशक में परसाईं जी ने 'व्यंग्य' को स्वतंत्र रूप में लिखना आरम्भ किया। परसाईं जी के व्यंग्यों ने समकालीन राजनीति की एक-एक परत को खोल कर जनता के सामने रख दिया। उन्होंने अपने व्यंग्यों में भ्रष्टाचार में लिप्त नेता, मंत्री, अफसर किसी को नहीं बख्शा। इनके व्यंग्यों में खास बात यह थी कि जिस व्यक्ति के विषय में व्यंग्य करते थे, उसके नाम का उल्लेख अपने व्यंग्यों में करते थे। जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, मोरार जी देसाई, चंद्रशेखर जैसे बड़े नेताओं पर व्यापक व्यंग्य इनकी रचनाओं में देखने को मिलते हैं। भ्रष्टाचार के विषय में परसाईं कहते हैं “सन् 1947 के बाद 4-6 साल तक भ्रष्टाचार की बात पिछड़ी नहीं लगती थी। वह चैंकाती थी, उस पर क्रोध आता था। मगर आज मैं भ्रष्टाचार की बात करूँ तो लोग कटेंगे। यह परसाईं समय से पिछड़ गया है। इसे कोई नई बात नहीं सूझती क्या?”⁹⁰

परसाईं जी की ही भांति शरद जोशी जी ने भी व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने में बहुमूल्य योगदान दिया है। परसाईं जी की तरह ही जोशी जी ने भी समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रुपताओं को अपना व्यंग्य का विषय बनाया और समाज में इस विसंगतियों को फैलाने वालों पर अपने व्यंग्यों से प्रहार किया। गरीबों पर हो रहे शोषण के विषय में वे कहते हैं, “हमारे देश में बड़े आदमी की हत्या होती है। गरीब को आत्महत्या करनी पड़ती है। उसे मारने को कोई खाली नहीं है। उनका शोषण किया जाता है मारा नहीं जाता। यदि किसी गरीब की हत्या हुई तो यह साबित करना पड़ता है कि यह आत्महत्या नहीं है।”⁹¹ जोशी जी यह कहना चाहते हैं कि गरीबों का इतना शोषण किया जाता है कि उन्हें मारने की आवश्यकता नहीं है वह तो स्वयं ही आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है।

इसी क्रम में रवीन्द्रनाथ त्यागी का भी व्यंग्य को शिखर की ओर ले जाने में विशेष योगदान रहा है। त्यागी जी सरकारी अधिकारी के पद पर रह चुके हैं अतः प्रशासनिक कमियों, अफसर के भ्रष्टाचारों को बड़े ही सटीक शब्दों में उन्होंने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इसी संदर्भ में व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं- “वे सरकारी कर्मचारी हैं। सरकारी तो वे हैं ही, क्योंकि सरकार से वेतन पाते हैं। पर कर्मचारी है या नहीं इस

पर एक से ज्यादा मत हो सकते हैं। कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि वे सिवाय दफ्तर जाने और आने के और कोई काम नहीं करते।⁹² अतः उस के समय कोई अधिकारी कर्मचारी काम नहीं करना चाहता किंतु वेतन उन्हें समय पर चाहिए।

इस प्रकार हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी इन व्यंग्यकार त्रयी ने व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्थापित कर उसे हिंदी साहित्य में न केवल शिखर तक पहुँचाने का कार्य किया बल्कि व्यंग्य को उचित सम्मान भी दिलाया। व्यंग्य की इस परम्परा को आगे बढ़ाने में बरसाने लाल चतुर्वेदी, बालेन्दु शेखर तिवारी, लतीफ घोंघी, नरेंद्र कोहली आदि का भी विशेष योगदान रहा है। बरसाने लाल चतुर्वेदी 'बुरे फँसे', 'मुसीबत है', 'चैबे की डायरी', नरेंद्र कोहली की 'एक और लाल तिकोन', 'आश्रितों का विद्रोह', 'त्रासदियाँ', श्रीलाल शुक्ल की 'यहाँ से वहाँ', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं', 'राग दरबारी', शंकर पुणतांबेकर की 'कैक्टस के कांटे', 'अंगूर खट्टे नहीं है', 'प्रेम विवाह', लतीफ घोंघी की, 'जूते का दर्द', 'टूटी टाँग पर चिंतन', 'मुर्दानामा, डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी की 'रिसर्च गाथा', 'किराएदार साक्षात्कार' आदि व्यंग्यकारों के व्यंग्य संकलनों ने 90 के दशक तक व्यंग्य को एक नए मुकाम पर पहुँचाने का कार्य किया। 70 से 90 के दशक के बीच के. पी. सक्सेना, 'नया गिरगिट', 'मूँछ-मूँछ की बात, डॉ. संसार चंद्र 'विजिट इंडिया, डॉ. इन्द्रनाथ मदान 'रानी और कानी', बहाने बाजी, डॉ. सुदर्शन मजिठिया, मुख्य मंत्री का डंडा', 'डिस्को कल्चर', 'इक्कीसवीं सदी', केशवचंद्र वर्मा 'लोमड़ी का माँस', मुर्गछाप हीरो, आदि व्यंग्यकारों के नाम भी व्यंग्य परंपरा को साहित्य में गति प्रदान करने के लिए उल्लेखनीय रहे हैं।

इसके अतिरिक्त गोपाल चतुर्वेदी जी भी आज के व्यंग्यकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं। जिनका आगे के अध्यायों विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। आज के व्यंग्यकारों में अशोक चक्रधर, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेमजनमजेय आदि व्यंग्यकार भी वर्तमान समय में व्यंग्य को एक सही दिशा देने तथा व्यंग्य के

माध्यम से समाज में फैली विसंगतियों कुरीतियों आदि को मिटाने तथा भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करने एवं आम जनता को जागृत करने के लिए प्रयत्नशील एवं प्रतिबद्ध हैं।

संदर्भ-सूची :

1. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं.1986, पृ.-32
2. सत्यव्रत सिंह, साहित्य दर्पण पर विमर्श, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, सं.1995, पृ.-39
3. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, सं. सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, सं.1949, पृ. 59
4. हिंदी साहित्य कोश (भाग-1), चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, सं.1995,पृ. 804
5. छविनाथ मिश्र, आधुनिक व्यंग्य के स्रोत और स्वरूप, क्लासिकल पब्लिशिंग हाउस, सं.1979, पृ.-7
6. सं. के कृष्णमूर्ति, आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, एम्.एल.बि.डी. दिल्ली,सं.1982, पृष्ठ-12
7. सं. के कृष्णमूर्ति, आनंदवर्धन, कारिका, एम्.एल.बि.डी. दिल्ली,सं.1979, पृ-10
8. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं.1986, पृ-33
9. वही, पृ.-33
10. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातन्त्रयोत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, सं.1978

11. कामिल बुल्के, अंग्रेजी हिंदी कोश, मुंशीलाल मनोहर लाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, सं.1987, पृ.-592
12. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, खण्ड-1, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं.1996, पृ.-123
13. डॉ. रामकुमार वर्मा, रिमझिम एकांकी, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, सं.2002, पृ.-10
14. बरसाने लाल चतुर्वेदी, आधुनिक हिंदी काव्य में व्यंग्य, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं.1993, पृ.-19
15. सं. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, सं.1975 पृ.-33
16. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं.1986, पृ.-35
17. गिलबर्ट हिगेट, द अनाटमी ऑफ सेटायर, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस कोलम्बिया, सं.1973, पृ.-235
18. रणजीता, हिंदी की प्रगतिशील कविता, सं.1971, पृ.-344
19. सं. बद्रीनाथ कपूर, वृहत् पर्यायवाची कोश, लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, सं.2012, पृ.-215
20. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, साहित्य भारती दिल्ली, सं.1973, पृ.-23
21. सी.टी. आनियन, द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, ओ.यू.पी. ऑक्सफोर्ड, सं.1966, पृ.-1792
22. बैब्सटर्स, थर्ड न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी, मैरियम बैब्सटर्स यू.एस., सं.2008, पृष्ठ-73
23. हैरी शा, डिक्शनरी ऑफ लिटरेरी टर्म्स, मैकग्रा हिल हायर एजुकेशन, न्यूयार्क, सं.1972, पृ.-322

24. अनु. जॉन हेली डे, ए निकोल, थ्योरी ऑफ ड्रामा, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, सं.1988, पृ. 212
25. मेरीडिथ, आइडिया ऑफ कॉमेडी, गिलेन बीयर यूनिवर्सिटी ऑफ़, सं.1943, पृ.-62
26. जोनाथन स्विफ्ट, वैटिल ऑफ बुक्स, बेंजामिन मोटे, सं.1926, पृ.-6
27. मैथ्यू हागर्थ, सटायर, हिल्डशिम, ज्यूरिच, न्यूयार्क, सं.1930, पृ.-348
28. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं.2006, पृ.-24
29. डॉ. रामकुमार वर्मा, रिमझिम एकांकी संग्रह, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, सं.2002, पृ.-73
30. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज़, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.2010, पृ.-89
31. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, सामायिक प्रकाशन दिल्ली, सं.1972, पृ. 27-28
32. वीरेंद्र मेंहदीरता, आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य, सामायिक प्रकाशन दिल्ली, सं.1996, पृ.-15
33. नरेंद्र कोहली, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, भूमिका, ज्ञानभारती प्रकाशन, सं.2002, पृ.-8
34. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातन्त्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपूर, सं.1978, पृ.-53
35. श्री मधुकर गंगाधर, 'निराला' जीवन और साहित्य, पृ.-76
36. बेढब बनारसी, 'नागरी' पत्रिका का बेढब स्मृति अंक, जून 1967, पृ.-56
37. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.1986, पृ-40
38. हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखाएं, व्यंग्य क्यों? कैसे? किसलिए, संभावना प्रकाशन, सं.1999, पृ.-28

39. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातन्त्रयोत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर, सं.1978, पृ.-56
40. स्टीफन लीलाक, हाउ टू राइट लंदन, कैम्ब्रिज कलेक्शन, सं.1969, पृ.-186
41. आर्थर पोलाई, सेटायर, मैथ्यू एंड कम्पनी, सं.1973, पृष्ठ-आमुख
42. सं. नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नाथ दीक्षित, हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक हिंदी साहित्य, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, सं.1973, पृ.-96
43. हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखाएं, व्यंग्य क्यों? कैसे? किसलिए, संभावना प्रकाशन दिल्ली, सं.1981 पृ.-30
44. डॉ. सावित्री सिन्हा, व्यास जी के हास्य निबंध, व्यास अभिनंदन ग्रंथ, पृ.-120
45. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर, सं.1978, पृ.-25
46. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज़, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.2010, पृ.-12
47. सं. काका हाथरसी तथा गिरिराज शरण, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य कविताएं, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं.1992, पृ.-5
48. अमृतराय, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, ज्ञानभारती प्रकाशन, सं.1977, भूमिका
49. सं. काका हाथरसी तथा गिरिराज शरण, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य कविताएं, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं.1992 पृ.-10

50. वही, पृ.-7.
51. एल. जी. पोटस, कॉमेडी, केलिफोर्निया पब्लिशर्स, सं.1974, पृ.-155
52. डॉ. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, साहित्य भारती प्रकाशन दिल्ली, सं.1989, पृ.-28
53. सं. रा. वा. पाटील, एक व्यंग्य यात्रा, आलोक सांस्कृतिक आकादमी, सं.1989, पृ.-10
54. सं. अमृतराय, नई कहानियाँ, नवम्बर 1969, पृ.-6
55. मेरीडिथ, आइडिया ऑफ कॉमेडी, गिलेन बीयर यूनिवर्सिटी ऑफ़ केलिफोर्निया प्रेस, सं.1965, पृ.-79
56. डॉ. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, साहित्य भारती प्रकाशन दिल्ली, सं.1989, पृ.-29
57. सं. कन्हैयालाल नंदन, श्रेष्ठ व्यंग्य कथाएं, राजपाल एंड सन्ज दिल्ली, सं.2013, पृ.-7
58. गोपाल प्रसाद व्यास, साप्ताहिक हिंदुस्तान, 24 मार्च 1968, पृ.-8
59. शशि शुक्ला, हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य, मेधा बुक्स प्रकाशन दिल्ली, सं.2007, पृ.-22
60. डॉ. कृष्णदेव झारी, रस शास्त्र साहित्य और समीक्षा, भारतेन्दु भवन, चौखम्बा वाराणसी, सं.1985 पृ.-101
61. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन दिल्ली, सं.2004, पृ.-32
62. सरोज खन्ना, हिंदी कविता में हास्य रस, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, सं.1969, पृ.-51
63. वही, पृ.-50

64. डॉ. बापूराव घोंडू देसाई, हिंदी व्यंग्य विधा: शास्त्र और इतिहास, चिंतन प्रकाशन कानपुर, सं.1990
पृ.-87
65. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं.2006, पृ.-63
66. डॉ. श्याम सुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, सं.संवत्2011, पृ.-104
67. वही, पृ.-107
68. सं. डॉ. नगेन्द्र, वीणा, नवम्बर 1937, पृ.-33
69. डॉ. गंगा सहाय प्रेमी, भ्रमरगीत सार, हरीश प्रकाशन मंदिर आगरा, सं.1966, पृ.-65
70. तुलसीदास, कवितावली, अशोक प्रकाशन दिल्ली, सं.2008, पृ.-26
71. श्री जगन्नाथ रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.1999, पृ.-63
72. सं. विद्यानिवास गोविंद रजनीश, रहीम ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.2004, पृ.-69
73. सं. शिवप्रसाद काशिकेय, भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-दो, नागरी प्रचारणी सभा वनारासी, सं.संवत्-2065
पृ.-811
74. सं. रामजी यादव, भारतेन्दु संचयन, सामयिक प्रकाशन दिल्ली, सं.1966, पृ.-396-398
75. वही, पृ.-323
76. वही, पृ. 388-389
- 77 वही, पृ.-311

78. सं. अब्दुल बिस्मिल्लाह, भारतेन्दु युगीन व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं. 1988, पृ.-16
79. सं. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भंडार लखनऊ, सं.1975, पृ.-323
80. सं. धनंजय भट्ट, भट्ट निबंधमाला, भाग-1, पृ.-70
81. वही, पृ.-127
82. सं. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भंडार लखनऊ, सं.1975,पृ.-328
83. सं. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, साहित्य अमृत, अगस्त 2009, पृ.-67
84. सं. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स नोएडा, सं.2012, पृ.-481
85. प्रेमचन्द, गोदान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं.2006, पृ.-182
86. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, कुकुरमुत्ता, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं.2009, पृ.-39
87. सं. मुकुंद द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 9, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.-461
88. नागार्जुन, रत्नगर्भ, वाणी प्रकाशन, सं.2006, पृ.-17
89. प्रभाकर माचवे, तेल की पकौडियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.1992, पृ.-8
90. सं. कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे, हरिशंकर परसाई की चुनी हुई रचनाएं, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.2013, पृ.-23

91. शरद जोशी, यथासंभव, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.2002, पृ.-102
92. रवींद्रनाथ त्यागी, अतिथि कक्ष, राजपाल एंड सन्ज, सं.1997, पृ.-13

द्वितीय अध्याय

गोपाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व और कृतित्व

2.1 जीवन वृत्त

साहित्यकार समाज का एक विशिष्ट अंग होता है, वह समाज में रहकर सभ्यता संस्कृति धर्म-कर्म, रीति-रिवाज, इतिहास आदि से संस्कार ग्रहण करता है। रचनाकार सामान्य व्यक्तियों से अधिक संवेदनशील एवं कल्पनाशील होता है। सामान्य आदमी की अपेक्षा उसकी अनुभूति अधिक गहन एवं व्यापक होती है। जन सामान्य के जीवन में अनेक घटनाएँ घटित होती हैं उनमें से कुछ उसे प्रभावित भी करती है, क्षणभर के लिए वह आन्दोलित भी होता है किंतु बाद में उसे भुला देता है लेकिन एक रचनाकार उन अनुभूतियों को, अपनी संवेदनाओं को शब्दों का परिधान पहनाकर अपनी कृतियों में संजोता है। अपने भावों विचारों को विभिन्न माध्यमों से साहित्यिक विधाओं द्वारा अभिव्यक्त करता है।

जो साहित्यकार अपनी रचनाओं में समाज के सुख-दुख की बात करता है, वह समाज में सम्मानित होता है। रचनाकार की वह कृति ही, जो समाज सापेक्ष है, जिसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में युगीन चित्रण विद्यमान है, सार्थक मानी जाती है। अपने युग से कटकर साहित्य-सृजन करने वाले साहित्यकार और उसकी रचना को शीघ्र ही विस्मृत कर दिया जाता है।

साहित्यकार जहाँ सामाजिक विकृतियों-विषमताओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करता है, वहीं एक आदर्श एवं सुखी समाज की स्थापना के लिए उसे अपनी रचनाओं द्वारा प्रेरित भी करता है। प्रेरक साहित्य का निर्माण करने वाले रचनाकार का समाज के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है। साहित्य का मूल दायित्व मानवीय मूल्यों तथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक चेतना

का विस्तार करना है। मानव और समाज की उपेक्षा करने वाला कोई भी जीवन-दर्शन या साहित्यिक चिंतन समाज द्वारा मान्य नहीं होता। साहित्य का मूल उद्देश्य मानव को मानासिक और भौतिक ग्रंथियों से मुक्त करना है। व्यंग्यकार श्री गोपाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व समन्वित रूप से इस कसौटी पर खरा उतरता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य की लम्बी सृजनधारा के तट पर अनेक विशिष्ट व्यक्तित्व अंकुरित, पल्लवित और विकसित हुए हैं और उन्होंने अपने वैभव और समृद्धि से हिंदी साहित्य को पूर्ण बनाने में योगदान दिया है। ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्वों में एक नाम गोपाल चतुर्वेदी जी का भी है। जीवन के व्यापक अनुभवों को स्वयं भोगते और जीते हुए उसे ज्यों का त्यों शब्दचित्रों में उतार देना गोपाल जी की उल्लेखनीय विशेषता है।

“सचमुच युगीन सत्यों को व्यक्त करने वाला व्यंग्य, व्यक्ति की पेचीदगियों, आपाधापियों, दुर्घटनाओं को रेखांकित करने वाला व्यंग्य मात्र मनोरंजन साहित्य नाम का मैखाना नहीं होगा, वह विपरीत परिस्थितियों के प्रति असंतोष जगाने के साथ-साथ बदलाव की वांछा और आकांक्षा को भी आंदोलित करता है। चाहे भारतेन्दु हो अथवा बालमुकुंद गुप्त निराला हो अथवा बालमुकुंद गुप्त निराला हो अथवा नागार्जुन, सर्वेश्वर हों अथवा भारतभूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र हों अथवा प्रभाकर माचवे, सभी ने अपने व्यंग्यों को मात्र मनोरंजन का उपकरण नहीं बनाया है। व्यंग्य की यह सार्थक परिभाषा हर बड़े और सार्थक व्यंग्यकार पर लागू होती है। गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं।”¹

समकालीन व्यंग्यकारों के मध्य गोपाल चतुर्वेदी उन गिने-चुने लोगों में से हैं जिनके लिए रचना कर्म ही एक मात्र प्रधान कर्म है। व्यंग्यकारों के बीच अपनी भाषिक सजगता के कारण गोपाल चतुर्वेदी

अलग ही खड़े दिखाई देते हैं। उनका व्यंग्य साहित्य बहुत समृद्ध है। इन्हें कीर्ति के सोपानों पर चढ़ाने वाले इनके व्यंग्य साहित्य को वर्षोपरांत भी अपने स्थान से कोई हटा नहीं पाएगा।

2.1 जीवन वृत्त :

गोपाल चतुर्वेदी का जन्म 15 अगस्त 1942 को लखनऊ में हुआ। इनके पिता का नाम डॉक्टर शालिग्राम चतुर्वेदी तथा माता का नाम श्रीमती नर्वदा चतुर्वेदी था। इनका बचपन मध्य प्रदेश के देवास में बीता और वहीं से इनकी प्रारम्भिक शिक्षा सिन्धिया स्कूल ग्वालियर से आरम्भ हुई।

“हर प्रसिद्ध साहित्यकार की तरह गोपाल चतुर्वेदी का परिचय भी इतना प्रकाशवान है कि उसके लिए सूर्य को दीपक दिखाने जैसी स्थिति पैदा हो जाए। उनका जन्मदिन भारत छोड़ो आन्दोलन और स्वतंत्रता दिवस को याद दिलाने वाला है यानि-15 अगस्त 1942 इसवी। हिंदी साहित्य में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी और श्रीलाल शुक्ल के आंतकी व्यक्तित्व के बावजूद गोपाल चतुर्वेदी ने अपनी लेखकीय अस्मिता बचाए रखी एवं उनकी रचनाएँ उनके अलग लेखकीय व्यक्तित्व का अहसास साहित्य-जगत् को कराती रहीं और सावधान करती रहीं कि धृतराष्ट्री आलोचक उन्हें आदि-आदि की श्रेणी में रखने का साहस न करें। गोपाल चतुर्वेदी में आम आदमी के लेखक का सौम्य लगातार अपने अफसरशाही के मुखौटे को पीछे धकेलता रहता है।”²

हिंदी के इस व्यंग्यकार का जन्म एक ऐसे ब्राह्मण परिवार में हुआ जो संस्कार से निष्ठावान था। अति सम्पन्न वातावरण में ऊपरी तौर पर बालक गोपाल को कोई कष्ट नहीं था। घर में भौतिक सुख सुविधाओं की पूर्ण व्यवस्था थी। ब्राह्मण परिवार से होने के कारण इनके घर में पूजा-पाठ का विशेष महत्त्व था। वे स्वयं भी नियमित रूप से संध्या वंदन, गायत्री मंत्र आदि संस्कारों से पूर्ण हैं। माता पिता की अध्ययनशीलता तथा पारिवारिक जीवन का पूरा-पूरा प्रभाव गोपाल जी के साहित्य पर पड़ा है। गोपाल

जी स्वयं द्विज हैं और उनके प्रायः सभी व्यंग्य लेखों में द्विज वातावरण देखने को मिलता है। सृजन को जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाने के मूल में उनके संस्कार प्रमुख हैं।

गोपाल जी का बाल्यकाल ग्वालियर में ही व्यतीत हुआ यहीं पर इन्होंने अपनी शिक्षा आरम्भ की। ग्वालियर से ही इन्होंने हमीदिया कॉलेजसे स्नातक की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1968 में निशा मिश्रा से इनका विवाह हुआ, जो स्वयं भारतीय कस्टम-एक्साइज सेवा में कार्यरत थीं। गोपाल चतुर्वेदी सन् 1956-66 में भारतीय पुलिस सेवा में तत्पश्चात् वर्ष 1966 में रेलवे लेखा परीक्षा सेवा में चयनित हुए। 1966-93 तक रेल, गृह व नागरिक उड्डयन मंत्रालयों में अनेक प्रतिष्ठित व उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहें। राजभाषा विभाग में उसके प्रथम सचिव श्री रमा प्रसन्न नायक, आई.सी.एस के साथ उपसचिव के पद पर कार्य किया। 1993-98 में राज्य व्यापार निगम (एस.टी.सी) में निदेशक/वित्त, कार्मिक, अध्यक्ष जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर नियुक्त हुए। इन पदों पर रहते हुए भी इन्होंने निरंतर हिंदी साहित्य की सेवा की है। अनेक पत्र पत्रिकाओं में इनके लेख, लघुकथाएँ व समाज की दुष्प्रवृत्तियों पर व्यंग्य निरंतर प्रकाशित होते रहे हैं। चूंकि वे स्वयं सरकारी अफसर थे, इसलिए इन्होंने कार्यालय से संबंधित छोटी से छोटी, भ्रष्टाचार से संबंधित बातों को अपने व्यंग्य लेखों से समाज तक पहुँचाने का कार्य किया है।

2.2 व्यक्तित्व :

व्यक्ति के व्यक्तित्व में बहिर्मुखी एवं अंतर्मुखी दोनों ही रूप आ जाते हैं। बाह्य रूप कृत्रिम होता है जिसे बदला भी जा सकता है। फिर भी बाह्य रूप का अपना अलग महत्त्व होता है। व्यक्ति की सभ्यता एवं संस्कृति का पहला प्रभाव उसके बाह्य रूप से ही पड़ता है। किंतु बाह्य रूप को व्यक्तित्व का वास्तविक रूप नहीं कहा जा सकता है। व्यक्ति के वास्तविक रूप का आधार उसका आंतरिक रूप ही होता है यह रूप चिंतन, अनुभूति, संवेदना एवं भावनाओं से संबंधित होता है।

एक साहित्यकार और सामान्य व्यक्ति में बस इतना ही फर्क होता है कि सामान्य व्यक्ति अपने विभिन्न अनुभवों को शब्दों के माध्यम से लोगों तक पहुँचा नहीं पाता है जबकि एक साहित्यकार अपने अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर देता है। वास्तव में अभिव्यक्ति की यह कुशलता ही एक साहित्यकार को सामान्य मनुष्य से अलग करती है।

साहित्यकार के व्यक्तित्व और कृतित्व में गहरा संबंध होता है। उसके जीवन और लेखन को एक-दूसरे का पर्याय कहा जा सकता है। साहित्यकार अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं को जो अभिव्यक्ति प्रदान करता है वह उसके कृतित्व में साफ झलकती है।

गोपाल चतुर्वेदी का भी व्यक्तित्व और कृतित्व एक दूसरे से गहरे संबंधित एवं संपृक्त है। आत्म जागरूकता उनके व्यक्तित्व एवं साहित्य में दृष्टिगोचर होती है।

गोपाल चतुर्वेदी मूलतः व्यंग्यकार हैं। इन्होंने जीवन को अनुभूति और चिंतन के विभिन्न धरातलों पर ग्रहण किया है। इनकी रचनाओं में भी यत्र-तत्र इनके व्यक्तित्व की झलक बिखरी पड़ी है।

जीवन के 72 वसंत देख चुके गोपाल जी के चेहरे पर वही युवकों-सी मुस्कान, काम करने का उत्साह तथा फुर्ती और सभी के काम आने की तत्परता मौजूद है। इतनी आयु होने के बाद भी वे थककर बैठने के लिए तैयार नहीं हैं। कन्हैयालाल नंदन के शब्दों में- “गोपाल जिंदगी को; जिन्दगी के हर लम्हे को मजा लेकर जीने में विश्वास करते हैं। विश्वास न हो तो फोन मिला लीजिए, जवाब में सबसे पहले गोपाल का ठहाका सुनाई देगा।”³ गोपाल चतुर्वेदी लगातार साहित्य सृजन में लीन हैं। वे जहाँ अत्यंत सहज एवं सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं वहीं एक सहृदय एवं संवेदनशील साहित्यकार भी हैं। इतने बड़े साहित्यकार एवं सरकारी अफसर होते हुए भी उनके अंदर अंह की भावना लेशमात्र भी नहीं है। उनका व्यवहार अत्यधिक विनम्रतापूर्ण है। उनसे मिलकर ऐसा लगता ही नहीं है कि वे इतने बड़े साहित्यकार हैं।

जब मैं उनसे मिलने उनके घर 'उत्सव' गई तो उन्होंने बड़े स्नेह पूर्ण भाव से मुझे बैठाया। पहली बार मिलने के बावजूद ऐसा नहीं लग रहा था कि मैं उनसे पहली बार मिल रही हूँ। उनके चेहरे पर एक सादगी और हल्की मुस्कान सदैव दिखाई देती है। वे बातों को ध्यान से सुनते हैं तथा किसी भी समस्या के पूर्ण समाधान का प्रयास करते हैं। सरलता एवं सादगी की स्पष्ट छाप लिए हुए, दिखावे से दूर गाम्भीर्य एवं हास्य दोनों का संतुलित आवरण, संवेदनशीलता और उदार व्यक्तित्व गोपाल जी का विशेष गुण है। उनमें इतना खुलापन है कि परिचित होने में कठिनाई नहीं आती। एक बार मिलने पर बार-बार मिलने को मन करता है, ऐसा ही स्वभाव है उनका। उनमें स्वाभिमान तो है लेकिन अभिमान नहीं गर्व तो है परंतु दम्भ नहीं, वे किसी के सामने झुकते नहीं तो किसी को झुकाना भी नहीं चाहते हैं।

वे अपने से छोटों को स्नेह और आत्मीयता ही नहीं, सम्मान भी देते हैं। यह उनका ऐसा बड़प्पन है, जो आज दुर्लभ है। उनके स्वभाव में सरलता है, वे जैसे बाहर से दिखाई देते हैं वैसे ही अंदर से भी हैं। उनमें गजब का संतुलन है। जीवन के शुरूआती दौर में इन्हें असफलताएँ भी मिली, लेकिन इन्होंने कठोर परिस्थितियों में भी धैर्य एवं विवेक को नहीं छोड़ा। चतुर्वेदी जी अनेक विपत्तियों में भी उस पेड़ की भांति अडिग खड़े रहे हैं, जो झुक-झुककर पृथ्वी तक लग जाता है, लेकिन टूटता नहीं। यही संघर्ष इनमें पूर्ण रूप से दिखता है।

2.1.1 धार्मिक प्रवृत्ति :

गोपाल चतुर्वेदी को घर से ही वैष्णव संस्कार प्राप्त थे। अतः वह छुआछूत को नहीं मानते, जीव हिंसा भी वे नहीं करते। जात-पात को भी उन्होंने अपने जीवन में कोई स्थान नहीं दिया है। व्यंग्यकार होने के नाते औरों की अपेक्षा वे अधिक संवेदनशील हैं। दीन-दुखियों पर दया करने वाले तथा विद्वानों का आदर करने वाले व्यक्ति हैं। नैतिक मूल्यों को उन्होंने अपने व्यक्तित्व में संजो कर रखा है। दूसरों के दुःख में दुखी रहने की उनकी प्रवृत्ति उनके सच्चे इन्सान होने का प्रमाण है। उनका जन्म एक हिंदू परिवार में हुआ

है फिर भी वे सभी धर्म को समानता से देखते हैं। उनका धर्म मानवधर्म है जो किसी जाति-विशेष या धर्म में बंधा नहीं है।

2.2.2 चारित्रिक गुण :

गोपाल चतुर्वेदी जी का अधिकांश जीवन लेखकीय अस्मिता की पहचान का जीवन है। उनमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं है। वे विनम्रता गंभीरता, सहानुभूति सच्चाई जैसे चारित्रिक गुणों का भण्डार है।

उनसे मिलने पर एक अपनेपन का अहसास होता है एक प्रकार की आत्मीयता का बोध होता है। प्रेमजमेजय जी इनकी इन्हीं खूबियों के बारे में बताते हुए कहते हैं- “गोपाल चतुर्वेदी के साथ मेरी पहली मुलाकात उनकी ओर से बहुत आत्मीय थी पर मैं नहीं हो पाया। आत्मीयता ने बहुत धीरे हमारे संबंधों में पैर पसारे हैं जैसे धीरे से अनेक बार सरकारी दफ्तर में किसी फाइल को एक मेज से दूसरी मेज तक पहुँचने में लग जाते हैं। गोपाल चतुर्वेदी में आत्मीयता की कमी नहीं है और सुपात्र देखकर वे लुटा भी देते हैं।”⁴ इनके चरित्र पर वातावरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इनके माता पिता के दिये हुए संस्कार इनके चरित्र को और भी आभावन बनाते हैं। इनके घर का वातावरण भी शांत है। भोर में चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर और खिले हुए फूलों को देखकर एक स्फूर्ति एवं सकारात्मकता आती है। जो विचलित मन को भी शांत कर देती है। चतुर्वेदी जी के संपर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति उनके घर के इस वातावरण एवं उनकी सरलता, उदारता, शालीनता, सौम्यता तथा व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। इनके जीवन का दृष्टिकोण साफ-सुथरा और स्वस्थ है। कई बार अच्छे लेख या पुस्तक पढ़कर उन्हें उस लेखक से इष्टि होती है कि यह इतना अच्छा लिख रहा है, पर यह द्वेषात्मक कम और प्रशंसात्मक अधिक है। इनके चरित्र में उनके मन की शक्ति की खोज की जा सकती है। इनके किसी न किसी पात्र को यह बोध अवश्य होता है कि दुःख और सुख तो मानने की वस्तु है। दुःख मानो तो दुःख अन्यथा मृत्यु भी सुखदायी है।

2.2.3 चतुर्वेदी जी की स्मरण-शक्ति :

गोपाल चतुर्वेदी की स्मरण शक्ति बहुत तीव्र है। अपने माता-पिता द्वारा दी गई शिक्षाएँ उन्हें सदैव याद रहती हैं। उन्हें अपनी दादी-नानी द्वारा सुनी हुई कहानियाँ इस प्रकार याद है जैसे ये कल की ही बात हो अपने बचपन की महत्वपूर्ण घटनाएँ भी उन्हें अच्छी तरह याद है। उनके सामने घटी कोई भी मार्मिक घटना उनके स्मृति पटल पर अंकित ठोस अनुभवों से और उनके हृदय की भाषा से साहित्य का ताना-बाना बुना हुआ है।

गोपाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व के निर्माण में सर्वप्रथम उनके माता-पिता एवं दादा-दादी के परम्परागत संस्कारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी माता ने इन्हें कर्मशीलता की प्रेरणा दी तो पिता से अध्ययनप्रियता प्राप्त हुई। जीवन की दूसरी पारी में पत्नी का भी इन्हें विशेष सहयोग प्राप्त हुआ और शायद यही कारण है कि आज वे एक सफल एवं महान् व्यंग्यकार हैं।

चतुर्वेदी जी का विलक्षण तथ्य यह है कि किसके यहाँ क्या खाना खाया उन्हें याद रहता है। जिससे भी एक बार मिल लिए उसे भूलने की प्रवृत्ति उनकी नहीं है। संयुक्त परिवार के दायित्वों ने भी उनके व्यक्तित्व को प्रखरता प्रदान की। नये-नये विद्वानों तथा उनकी रचनाओं को और अपने मित्रों को वे सदा याद रखते हैं। वास्तव में चतुर्वेदी जी संबंधों का निर्वाह करने वाले व्यक्ति हैं।

2.2.4 जीवन मूल्य :

गोपाल जी का मानना है कि आज हम मूल्यों को मरते हुए देख रहे हैं। वह उन मूल्यों को जीवित होते हुए, पुनर्सृजित होते हुए देखना चाहते हैं। मूल्य चेतना उनके भीतर बसी हुई है जो उन्हें आक्रोश और विद्रोह के लिए उकसाती है, लिखने के लिए प्रेरित करती हैं। उन्हें लगता है कि वर्तमान राजनीति, पुलिस

तंत्र मानवीय मूल्यों के खिलाफ हैं। मूल्यों को ये सारी शक्तियाँ विफल कर रही हैं। प्रेम, करुणा, सहानुभूति, निडरता, मासूमियत, आदि जो मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ने वाले मूल्य हैं उन्हें ये तोड़ रही हैं। इसके साथ ही साथ लोगों में सांस्कृतिक मूल्यहीनता भी समाज में लगातार बढ़ रही है। चतुर्वेदी जी कहते हैं कि इन मूल्यों को स्थापित करना ही उनका ध्येय है।

2.2.5 बौद्धिक ज्ञान एवं तर्कशीलता :

गोपाल चतुर्वेदी की बौद्धिक प्रखरता उनके व्यंग्य-साहित्य में देखने को मिलती है। चतुर्वेदी जी की बुद्धि शुरू से ही प्रखर थी। उनकी प्रथम रचना को ही प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सरकारी नौकरी के साथ-साथ वे लेखन के लिए समय निकालते रहे हैं। रचनात्मक लेखन में रुचि लेते हुए भी वे राजनीतिक हलचलों के प्रति जागरूक रहते हैं और जलसों, संगोष्ठियों व अन्य सामाजिक कार्यक्रमों में भी सम्मिलित होते हैं। बौद्धिकता के साथ-साथ तर्कशीलता भी इनका प्रमुख गुण रहा है। बचपन में उन्हें जिस बात के लिए मना किया जाता था, उसे वे अपनी तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयास करते थे। यही तर्कशीलता चतुर्वेदी जी के सम्पूर्ण व्यंग्य साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अपनी रचना में किसी भी तथ्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जब तक उसको अपने मन और मस्तिष्क की अदालत में सही नहीं पा लिया।

2.2.6 कल्पना शक्ति :

गोपाल चतुर्वेदी एक साहित्यकार हैं, और एक साहित्यकार, चित्रकार के अंदर कल्पना शक्ति का होना अपना एक अलग ही स्थान रखता है। यह वह शक्ति है जो किसी रचनाकार की रचना को कालजयी बनाती है। गोपाल जी की कल्पना की अभिव्यक्ति उनके व्यंग्य-साहित्य में देखने को मिलती है। उन्होंने अपनी कल्पना के सभी रूपों को व्यंग्य-साहित्य में उकेर दिया है। प्रत्येक रचना में उन्होंने कल्पना के

आधार पर सूक्ष्म को स्थूल और निर्विकार को साकार रूप में रूपांतरित किया, तभी उनकी हर एक रचना वास्तविक रचना बन सकी है।

इस प्रकार गोपाल चतुर्वेदी इस समय के अग्रणी व्यंग्यकार होते हुए भी एक सहृदय व्यक्ति हैं। इनके व्यंग्य लेखों में छोटे से लेकर बड़े, गरीब से लेकर अमीर सभी को समरूप देखा जा सकता है। इनका व्यंग्य एक ओर जहाँ सहृदयता से भरा हुआ है वहीं दूसरी ओर तीखा और पैना भी है। गोपाल जी कटु सत्य कहने में भी हिचकिचाते नहीं हैं और इनके इसी स्वभाव का प्रभाव इनके व्यंग्य-साहित्य पर भी पड़ा है। यही मूल कारण है कि इनका व्यंग्य-साहित्य अति यथार्थवादी हो गया है। ये अपने में मौलिकता का विशेष ध्यान रखते हैं।

गोपाल जी स्पष्टवादी हैं और ये अवसरवादिता से कोसों दूर रहते हैं। प्रकृति से इनका अगाध प्रेम है। इन्हें पहाड़ी स्थान अत्यधिक प्रिय हैं। इनके व्यंग्य साहित्य में प्रकृति चित्रण की भरमार है। पशु पक्षियों से भी इन्हें अत्यधिक प्रेम है तभी तो उन्होंने हाल में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'सत्तापुर के नकटे' में विलुप्त हो रही एक छोटी सी चिड़िया 'गौरैया' को अपने व्यंग्य लेख के माध्यम से बचाने का प्रयास किया है।

गोपाल जी सहृदय व्यक्तित्व के स्वामी हैं जो संबंधों का निर्वाह भली प्रकार करना जानते हैं। संबंध चाहे प्रकृति से हो, पारिवारिक हो राजनीतिक हो या कार्यालयी हो या धार्मिक उसे निभाने में वे कभी पीछे नहीं हटते।

गोपाल जी उदारवादी व्यक्ति हैं। ये प्रायः गरीबों को दान देते रहते हैं। और कभी-कभी इनकी इस उदारता का अनुचित लाभ लोग उठाते हैं। कृतियों में इनकी सहानुभूति गरीबों, दलितों एवं शोषित व्यक्तियों के साथ अधिक दिखाई देती है। अपने व्यंग्य-साहित्य में भी इन्होंने पूँजीवादियों के भ्रष्टाचार की

खुलकर निंदा की है। सारांशतः गोपाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व सहानुभूति, सहृदयता उदारता से भरा हुआ है इनके हृदय में सभी जाति, धर्म गरीब-अमीर आदि व्यक्तियों के लिए एक समान भाव है।

2.3 कृतित्व :

गोपाल जी वर्तमान समय के ऐसे गिने चुने व्यंग्यकारों में से हैं जिन्होंने सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक मिथ्याचार और राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाज के समाने लाने का पूरा प्रयास किया है। इन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं को बड़ी बेबाकी के साथ अपने व्यंग्य लेखों के माध्यम से आम आदमी तक पहुँचाने का कार्य किया है। इन्होंने हर स्थिति में मनुष्य की स्वार्थपरताओं, मर्मिकताओं, कमजोरियों को अपनी कलम का शिकार बनाया है। हिन्दी साहित्य के विद्वान, गोपाल जी का सरस्वती के मंदिर के आस्थावान पुजारी, निरंतर संघर्ष का विनम्र स्वर, सदाबहार लेखक दो पीढ़ियों के साथ संक्रमण के साहित्यकार तथा निश्छल साधक साहित्यकार आदि आदि वाक्यांशों से मूल्यांकन करते हैं।

“हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल केशवचन्द्र वर्मा और रवीन्द्रनाथ त्यागी की पीढ़ी के बाद जो व्यंग्यकार बहुत तेजी से उभरकर आए हैं उनमें गोपाल चतुर्वेदी का नाम काफी ऊपर आता है पत्र पत्रिकाओं के कॉलमों में जीवन-जगत से जुड़ी आम आदमी से संबद्ध नित्यप्रति की स्थितियों को उन्होंने अपने शालीन और आभिजात्य से परिपूर्ण व्यंग्य का निशाना बनाया है, जिसमें भाषा का संयम और सुरुचि का ध्यान बनाए रखने का प्रयत्न निरंतर दृष्टिगोचर होता है। आला अफसर होने के बावजूद वह सरकार, पूंजीपतियों और तथा कथित बड़े लोगों की नहीं बल्कि आम आदमी की वकालत करते हुए मिलते हैं, और अफसरों, तस्करों, नेताओं, व वगैरह-वगैरह को बख्शने के मूड में कतई नजर नहीं आते।”⁵

गोपाल जी ने जो भी लिखा है, जीवन से निकालकर लिखा है। उन्होंने जीवन को बहुत गहराई से और बहुत करीब से देखा है। उनकी यही विशेषता उनकी लेखकीय ताकत है। उनके व्यंग्य साहित्य के विविध आयामों को देखना-परखना एक प्रीतिकर अनुभव की अनुभूति जगाता है।

गोपाल चतुर्वेदी छात्र जीवन से ही लेखन से जुड़े हुए हैं। इन्हें हम एक व्यंग्यकार के रूप में ही जानते हैं किंतु लेखन के शुरुआती दिनों में इन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखी, जो प्रकाशित भी हुई। बाद में ये व्यंग्य लेख लिखने लगे और पिछले ढाई दशक से ये केवल व्यंग्य लेखन से ही जुड़े हुए हैं। व्यंग्य के मध्यम से ही इन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, बुराईयों, विद्रूपताओं आदि को दूर करने का प्रयास किया है। गोपाल चतुर्वेदी वर्तमान समय के अग्रणी व्यंग्यकार हैं और इनका प्रकाशित साहित्य इनकी प्रतिभा का स्वमेव साक्षी है, जो निम्नलिखित है-

(क) काव्य संग्रह

1. कुछ तो हो
2. धूप की तलाश

(ख) व्यंग्य संग्रह

1. अफसर की मौत
2. दुम की वापसी
3. खंबो का खेल
4. आजाद भारत में कालू

5. फाइल पढ़ि-पढ़ि
6. गंगा से गटर तक
7. दाँत में फँसी कुरसी
8. राम झरोखे बैठ के
9. फार्म हाउस के लोग
10. नैतिकता की लँगड़ी दौड़
11. भारत और भैंस
12. जुगाड़पुर के जुगाड़ू
13. आदमी और गिद्ध
14. धाँधलेश्वर
15. इक्यावन श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ
16. खरी-खोटी
17. कुरसीपुर का कबीर
18. प्रतिनिधि व्यंग्य संग्रह
19. निर्लज्ज समय के आस-पास
20. सत्तापुर के नकटे

21. संकलित व्यंग्य

(ग) पत्र पत्रिकाओं में लेखन-

1. 'सारिका व 'इंडिया टुडे' (हिंदी) में कोई वर्षों तक व्यंग्य कॉलम लिखे।
2. 'नवभारत टाइम्स', 'हिंदुस्तान,' दैनिक भास्कर में अनेक वर्षों तक नियमित रूप से व्यंग्य कॉलम लेखन
3. प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिक 'साहित्य अमृत' में प्रथम अंक से नियमित कॉलम लेखन

(घ) सम्मान एवं पुरस्कार :

1. 1985-86 में हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा 'अफसर की मौत' के लिए श्रेष्ठ कृति पुरस्कार।
2. 1986 में कविता 'जय देश भारत भारती' भारत सरकार के राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रम 'अपना उत्सव' में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी द्वारा आशय गीत के रूप में चुनी गई। गीत का संगीत पंडित रविशंकर ने तैयार किया तथा सुश्री आशा भोंसले ने इसे स्वर दिया।
3. 1986 में रेलवे बोर्ड द्वारा 'अफसर की मौत को प्रेमचंद पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
4. 1988-89 में 'दुम की वापसी' को हिंदी आकादमी, दिल्ली द्वारा श्रेष्ठ कृति पुरस्कार
5. 1991-92 में हिंदी साहित्य में अनुपम योगदान के लिए आखिल भारतीय भाषा सम्मेलन पुरस्कार
6. 1995-96 में हिंदी व्यंग्य विधा में अद्वितीय योगदान के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा

साहित्यकार सम्मान।

7. 1998 में साहित्य में योगदान के लिए कुलदीप गोसाईं स्मृति पुरस्कार।
8. 1999 में हास्य एवं व्यंग्य में महत्वपूर्ण योगदान के लिए सेठ गिरधारी लाल सराफ ठिठोली पुरस्कार
9. 2000 में हिंदी भाषा संवर्धन में योगदान के लिए सहस्रारब्दि विश्व हिंदी भवन द्वारा व्यंग्य श्री लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार।
10. 2001 में हास्य एवं व्यंग्य में अद्वितीय योगदान के लिए हिंदी भवन द्वारा व्यंग्य श्री लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार।
11. 2001 में उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा साहित्य भूषण सम्मान।
12. 2003 में 'राम झरोखे बैठ के' को हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा साहित्यिक कृति सम्मान।
13. 2006 अट्टहास, शिखर सम्मान, माध्यम जयपुर द्वारा।
14. 2007 उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'हिंदी गौरव' सम्मान
15. 2008 अखिल भारतीय 'अंतर्राष्ट्रीय मंचीय कवि पीठ द्वारा शारदा सम्मान।
16. 2009 अखिल भारतीय अंतर्राष्ट्रीय मंचीय कवि पीठ द्वारा शारदा सम्मान।
17. भारतीय बुद्धिजीवी संघ द्वारा प्रदत्त साहित्य की सेवा के लिए यू.पी. रत्न सम्मान।
18. सुब्रमण्य भारती सम्मान, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

19. स्नेहलता गोइन्का व्यंग्यभूषण पुरस्कार, कमला गोइन्का फाउण्डेशन मुम्बई।

20. उत्तर प्रदेश का यश भारती सम्मान (2015-2016)

(ड.) विविध

1. छात्र जीवन से ही रेडियो तथा टेलीविजन कार्यक्रमों में कविताओं व व्यंग्य पाठ में निरंतर

भागीदारी तथा साहित्यिक सम्मेलनों में भाग लेना।

2. प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित केंद्रीय हिंदी समिति के भारत सरकार द्वारा नामित सदस्य।

2.3.6 भाषा शैली :

गोपाल चतुर्वेदी की भाषा में वह मारक एवं भेदक क्षमता है जो चोट ही नहीं पहुँचाती अपितु अंदर से तिलमिलाहट भी पैदा करती है। कन्हैयालाल नन्दन के अनुसार- “गोपाल की भाषा सरपट दौड़ते हुए हंटर मारती है और पलटकर नहीं देखती कि चोट कितनी लगी किसी भी शानदार और आनदार लेखक के लिए सबसे बड़ा दर्द होता है मूल्यों और आदर्शों के आहत होने का दर्द। इसी को बयान करने में ही तो किसी लेखक की निजता झाँकती है।”⁶

गोपाल चतुर्वेदी अपनी बात को कहानी के माध्यम से कहते हैं। वे मात्र टिप्पणियाँ ही नहीं करते वरन् पात्र तथा घटनाओं के माध्यम से विसंगतियों की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करते हैं। प्रेम जनमेजय के अनुसार- “गोपाल चतुर्वेदी अपनी चिर परिचित शैली में पहले तो भूमिका स्वरूप वर्तमान में व्याप्त विसंगतियों का चित्रण करते हैं उन पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए अपने विषय को स्थापित करते हैं। इनकी रचनाएँ अक्सर किसी घटना से आरंभ न होकर लेखनीय वक्तव्य से आरंभ होती हैं, परन्तु एक दो अनुच्छेद के बाद घटनाओं तथा पत्रों का सृजन करने लगती है।”⁷

अपनी भाषा के मारक प्रयोगों से विसंगति का स्मारक बनाने वाले गोपाल चतुर्वेदी की शैली के विषय में कन्हैयालाल नंदन कहते हैं-“गोपाल की शैली में यह बहुत बड़ा दोष है कि वे अपने पहले वाक्य से आखिरी वाक्य तक पाठक को ऐसा उलझाकर रखते हैं कि व्यंग्य के आनंद में वह सिर्फ गोपाल के साथ होकर रह जाता है।”⁸

गोपाल चतुर्वेदी की साहित्य के प्रति बचपन से ही विशेष रुचि रही है। इनका साहित्य संवेदनशीलता व मानवीय परिस्थितियों का बड़ा ही भावुक स्पर्श है आरम्भ में गोपाल जी के दो काव्य संग्रह कुछ तो हो तथा ‘धूप की तलाश’ प्रकाशित हुए। कविता करने में इनके मन को संतुष्टि न मिली क्योंकि कविता में कल्पना सरसता और सहृदयता को बचाए रखना अत्यंत आवश्यक है किंतु समाज की रूढ़ियों सच्चाइयों के व्यंग्य के माध्यम से ही दर्शाया जा सकता है जैसा कि इन्होंने स्वयं कहा है- “मैंने कविता को नहीं छोड़ा और न ही कविता से झगड़ा हुआ। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं, कुछ जीवन की ऐसी सच्चाईयाँ देखने में आईं कि लगा कविता इस सबको बयान करने का इतना अच्छा माध्यम नहीं है।”⁹ अतः इन्होंने विशुद्ध रूप से व्यंग्य लेखन आरम्भ कर दिया। इनकी लेखनी में दर्द है, जो उनके व्यंग्यों में देखा जा सकता है। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में जीवन और जगत की चेतना मुखरित हुई है इनकी रचनाओं में, अव्यवस्था और आम आदमी की पीड़ा एक साथ व्यक्त हुई है।

‘फाइल पढ़ि-पढ़ि’ गोपाल चतुर्वेदी का 28 व्यंग्य लेखों का संग्रह है। इसमें लेखक ने सरकारी तंत्र से संबंधित दफ्तर की राजनीति, उसमें फैले हुए भ्रष्टाचार, उसकी व्यवस्था-अव्यवस्था पर पैनी दृष्टि दौड़ाई है और उसके एक-एक कोने को पाठक के सामने खोल कर रख दिया है। इसमें सचिवालय और हिमालय, वेतन आयोग और उल्लू, बरसात में बाबू, सरकार रफ्तार और साइकिल, कूड़े का समाजवाद, सावधान ऑडिट चालू है, पेंशन पंचायत और प्रमोशन आदि व्यंग्य लेख सम्मिलित हैं। इनके ये व्यंग्य लेख इतने यथार्थ और सजीव हैं कि इन्हें पढ़ते समय ऐसा लगता है कि वाकई हम किसी दफ्तर में खड़े हैं और

उसकी अव्यवस्था का शिकार है। इन व्यंग्य लेखों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह आप बीती ही है।

“हम दफ्तर की तैयारी करने लगे। आप क्या तैरकर जाएंगे? पत्नी ने टिप्पणी की पत्नी को कैसे बताते कि जाना जरूरी है। सीट पर भविष्यनिधि से निकासी की आर्जियां निपटानी है। यदि कहीं जल्दी मची और बड़े बाबू ने दूसरे को दे दी तो महीने भर का चाय-समोसे का खर्चा डूब जाएगा”¹⁰। इसी प्रकार ऑफिस में होने वाली छोटी-छोटी बातों का उल्लेख इन्होंने अपने इस व्यंग्य संग्रह में किया है।

‘फार्म हाउस के लोग’ 21 व्यंग्य लेखों का संग्रह है। इसमें एक दिन दिवाले का, दास्तां दाखिले की, जन्मदिन के क्लेश रिश्तों के रेगिस्तान आदि लेख हैं। इस व्यंग्य संग्रह के लेखों में गिरती हुई मानवता की ओर संकेत किया गया। शादी-ब्याह में खाने के लिए मची लूट, पान खाकर कहीं भी थूक देना आदि आम आदमी की गतिविधि के बारे में बताया है। स्कूलों में होने वाले दाखिले के डोनेशन के खेल को बताते हुए गोपाल जी कहते हैं-“साहब को हेड-क्लर्क के पास ले जाओ। उनसे कहो कि विज्ञापन वाली रेट लिस्ट इनको दे दो। मेरी छपी हुई अपील भी। जब वह आठ ऐड ले आएँ तो इनके लड़के के लिए एडमिशन टेस्ट का कॉल लेटर इश्यू करें। प्रिंसिपल साहब ने ओदश दिया।

“अच्छा एडमिशन टेस्ट पंद्रह दिन बाद है। उसके बाद चाहें तो आप कॉल लेटर पर्सनली ले जाए। प्रिंसिपल साहब ने इंटरव्यू समाप्त किया हम लोग बाहर आए। प्यास से गला सूख रहा था पेट में चूहे उछल कूद कर रहे थे।

पत्नी बोली, “बड़ी भूख लगी है।” मैंने अनायास पूछा, “क्या इस प्रिंसिपल को भूख नहीं लगती?”⁶

“इसे खाना खाने की जरूरत नहीं है। यह तो डोनेशन खाता है या विज्ञापन।” उन्होंने बड़ी सहजता से उत्तर दिया।¹¹

यह सामाजिक अव्यवस्था ही है कि आज कोई भी कार्य बिना डोनेशन और बिना सोर्स के नहीं होता है। इस दौड़ में बेचारे वे ईमानदार व्यक्ति पीछे रह जाते हैं जो प्रत्येक कार्य ईमानदारी से करते हैं और वैसे ही करवाना चाहते हैं। आजकल इस समाज में ईमानदारी एक अपराध हो गई है। अगर बोल बाला है तो केवल झूठ और बेइमानों का।

आदमी और गिद्ध गोपाल चतुर्वेदी का 26 व्यंग्य निबन्धों का संग्रह है। इसमें साहित्य का ब्राह्मणवाद, गांधारी की पट्टी, आदमी और गिद्ध, पर्यटन के छोटे-बड़े ठग, देश के आधुनिक निर्माता आदि व्यंग्य लेख हैं। लेखक ने इस संग्रह में मानव में समाप्त हो रही संवेदनाओं का जिक्र किया। आज के युग में माता पिता अपने बच्चों का लालन पोषण लाड प्यार से करते हैं किंतु बड़े होने पर वे ही बच्चे अपने बुजुर्ग माता-पिता की सेवा नहीं कर पाते हैं और उन्हें या तो आश्रम भेज देते हैं या फिर वे वृद्ध घर के एक कोने में पड़े रहते हैं जहाँ उनका दुख-दर्द सुनने वाला कोई नहीं होता है। उनके अपने बच्चे ही इस बात का इंजार करते हैं कि कितनी जल्दी इनके प्राण निकले और बुजुर्ग नामक इस बला से उनका पीछा छूटे- “छोटे साहब पूजा-पाठ के बावजूद पिता के प्राण न जाने से परेशान थे गार्ड की बदतमीजी से उनका पारा और चढ़ा। वह पैर पटकते आए और गुर्राए, “क्या हो गया?””⁸

“हुआ तो कुछ नहीं, सरकार! बस सामने के पेड़ पर गिद्ध आकर बैठे हैं। वह अच्छा शकुन नहीं है। हमने सोचा कि उन्हें गोली से उड़ाने के पहले आपकी इजाजत ले लें।

इक्कीसवीं सदी में अच्छे-बुरे शकुन की बात करते तुम्हें शरम नहीं आती है।....

इतने में उसे भाई-भाई का वार्तालाप सुनाई दिया। छोटा भाई बड़े से कह रहा था, “क्या हो गया, भैया! आप गार्ड पर बिगड़ रहे थे?””⁹

“कुछ नहीं यार, सामने पेड़ पर गिद्ध आ बैठे हैं। वह कम अक्ल हमें बता रहा था कि यह बुरा शकुन है, हमारे लिए तो अच्छा है पर फले तो! डाक्टर-पंडित सब फेल हो गए हैं, बूढ़ा है कि टिका हुआ है।”¹²

इस प्रकार आज की दुनिया में व्यक्ति केवल अपना ही भला चाहता है। वह अपने आगे अपनों तक को भूल गया है। इसी प्रकार की विडम्बनाओं को उन्होंने इस लेख संग्रह दिखाया है।

धाँधलेश्वर गोपाल चतुर्वेदी के चुने हुए 101 व्यंग्य लेखों का संग्रह है। जिसमें नौकरशाही, लालफीताशाही, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक भ्रष्टाचार आदि से संबंधित लेख मिलते हैं। इसमें नेता और नाक, कविता में अंतर्राष्ट्रीयता तरह-तरह के ओलम्पिक, बजट और बसंत आदि विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित लेख देखने को मिलते हैं। इस तरह संग्रह में इनके अधिकतर लेख राजनैतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार को दिखाते हैं। प्रशासनिक सेवा में रहते हुए इन्होंने प्रशासन और राजनीति में हो रहे भ्रष्टाचार को भली-भांति देखा है। जहाँ एक ओर नेताओं के कथनी-करनी के अंतर को देखा वहीं प्रशासनिक अधिकारियों को उनकी चमचागिरी करते हुए भी देखा है। इन्होंने उच्च पदों पर रहने के बावजूद बाबुओं के दर्द को भी बखूबी समझा है। इसी कारण गोपाल चतुर्वेदी प्रमाणिक व्यंग्य के लेखक के रूप में सामने आए हैं।

इस आधुनिक भारत में हर जगह जुगाड़ की जुगत है आजकल शिक्षा जगत में भी भाई-भतीजावाद तेजी से पनप रहा है इसी पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं- “शिक्षा के दायरे में पठन-पाठन से लेकर प्राध्यापन तक चरण छू-गुरु-शिष्य परम्परा है। वरीयता क्रम में पहले रिश्तेदार, फिर जानकार आते हैं। जाहिर है कि आलोचना में भी यही हो। प्राध्यापक जिस लगन से साल में आठ-दस हजार कापियाँ जाँचते हैं, उसी हुनर से साहित्य को आंकते हैं। एक ज्ञानी दूसरे को सूचित करता है, “यार, मेरा भतीजा इस साल इम्तिहान में बैठा है। ज़रा ध्यान रखना।”¹¹

“क्यों नहीं, आखिर आपने भी तो मेरे भाई का कल्याण किया था।” दूसरा आश्चस्त करता है।¹³

इसी प्रकार गोपाल जी के अन्य संग्रह अफसर की मौत, दुम की वापसी खम्भों के खेल, भारत और भैंस सभी में ही राजनैतिक प्रशासनिक भ्रष्टाचार का उद्घाटन बड़ी ही तीक्ष्णता के साथ किया है। इन्होंने साहित्य, स्कूल में दाखिले, सामाजिक विसंगतियों पर भी व्यंग्य किया है। ये छोटे से वाक्ये को भी अपने व्यंग्य का विषय बनाने में पूर्णतया सक्षम है। हाल ही में प्रकाशित व्यंग्य संग्रह, ‘निर्लज्ज समय के आस-पास’ में वे विदेशों से आए पर्यटकों को कैसे ‘अतिथि देवोः भव’ के नाम पर ठगा जाता है इसका उद्घाटन किया है- “कहने को सब कहते हैं कि ज्यादातर धर्म का ढोंग है। दिखावा है। धोखा है। ज्यादातर दुकानदार होटल, गाइड, टैक्सी वाले, यह मानकर चलते हैं कि टूरिस्ट अगर हिंदूस्तान आता है तो ठगे जाने के अरमान लेकर ही पधारता है। यदि उसके मन में ऐसी हसरत न होती तो वह आता ही क्यों; उसकी इच्छा पूरी करो। उसे ठगो वरना वह निराश होगा।”¹⁴ इस प्रकार गोपाल जी वर्तमान समय में विदेशी पर्यटकों के साथ हो रहे अभद्र व्यवहारों और ठगी को भी अपने व्यंग्य का विषय बनाकर समाज के लोगों को अतिथि का सम्मान करने का पाठ पढ़ाते नज़र आते हैं।

गोपाल जी लुप्त होती गौरैया को भी अपनी लेखनी का विषय बनाते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि मानवीय भावनाओं के कम होने के कारण ही गौरैया विलुप्त हो रही हैं। और इसी मानवीय संवेदनहीनता के कारण शायद गरीब आदमी भी लुप्त होने की कागार पर है- “हमें खुशी है कि गौरैया के अस्तित्व का संकट मिटाने को संसार प्रयास कर रहा है। इस मजबूर आदमी को बचाने की शपथ हम कब लेंगे? नहीं तो गौरैया कैसे बचेगी, अपने अभाव पीड़ा के बावजूद इसके दिल में दूसरों का दर्द है। सिर्फ अपने हित-साधना की प्रतियोगिता में लगे सफल लोग कभी दूसरों का सोचते भी हैं क्या?”¹⁵

इस प्रकार गोपाल चतुर्वेदी अपने साहित्य में समाज और राजनीति से संबंधित समस्त छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े भ्रष्टाचार को उजागर करने में सक्षम नज़र आते हैं। उनके साहित्य में सामाजिक

भ्रष्टाचार पर तीव्र प्रहार किया गया। इनके व्यंग्य समाज को एक नई दिशा एवं गति प्रदान करने का कार्य करते हैं।

“गोपाल चतुर्वेदी के छोटे-छोटे हास्य व्यंग्य निबंधों का संकलन ‘दुम की वापसी’ में उनके कुल बत्तीस व्यंग्य निबंध शामिल किए गए हैं। इन बत्तीस निबंधों को पढ़ते-पढ़ते पाठकों की बत्तीसी भी दिखाई दे सकती है। मगर अधिकांशतः मुस्कान और वह भी लगभग इंच भर मुस्कान की गुंजाइश की अधिक निकलती है मगर कहना होगा कि लेखक ने समाज, परिवार, राजनीति नौकरशाही के कई पक्षों को लेकर उनकी विसंगतियों पर अपनी सटीक और अर्थपूर्ण हास्य व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ की है।”¹⁶

दुम की वापसी के बाद ‘खंभों के खेल’ उनका अगला व्यंग्य संकलन है जिसमें उनके लगभग 40 व्यंग्य समाहित हैं। “समाज राजनीति, पत्रकारिता और पुलिसिया क्षेत्रों में व्यक्ति अगर जनमंत्र के स्तंभ है जो व्यंग्यात्मक भाषा में उन्हें खंभा ही कहा जाएगा। समाज के विभिन्न पक्षों और रूप को विसंगत बनाने वाले इन खंभों की मानसिकता और कारगुजारियों से छेड़छाड़ करते हुए इनका पर्दाफाश करते हुए, इन पर व्यंग्य प्रहार करते हुए सभी दुर्बलताओं, कथनी, करनी के अंतरों की कलाई खोलते हुए आक्रमण विनोद और व्यंग्य की मुद्रा अपनाते हुए गोपाल चतुर्वेदी ने खंभों के खेल के साथ भी अच्छा खिलवाड़ किया है जिसमें व्यंग्य द्वारा सर्जित एवं अर्जित लक्ष्यों तक पहुँचने की कामयाब कोशिश है।”¹⁷ इस व्यंग्य संग्रह में रोजमर्रा के जीवन में उभरने एवं घटित होने वाली स्थितियों को मध्यमवर्गीय संदर्भों में उभारा गया है। मध्यमवर्ग ही भारतीय समाज में ऐसा वर्ग है जो विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों, विसंगतियों और विरूपताओं से सर्वाधिक प्रभावित होता है। उसे अपनी सफेदपोशी को बनाये रखने के लिए नित नये-नये खट्टे मीठे अनुभवों से गुजरना पड़ता है। गोपाल चतुर्वेदी ने इन्हीं अनुभवों को व्यंग्य विनोद का रचनात्मक जामा पहनाया है।

‘कुरसीपुर का कबीर’ व्यंग्य संग्रह में कुरसी पर बंदर, मंदिर और मनोरंजन भौतिक-सांस्कृतिक प्रगति और परिवार दफ्तर के अफेयर आदि, कुल इक्कीस व्यंग्य संग्रहीत हैं। इसमें लेखक ने स्वार्थ लिप्सा से भरपूर और उपलब्धि के मोह में डूबे हुए एक ऐसे व्यक्तित्व का खाका खींचा है जिसका नाम तो कबीर है किंतु, हैं वह नाम के विपरित। इस प्रकार नाम बड़े और दर्शन छोटे वाली बात का अद्भुत एवं बेहतरीन उदाहरण इस व्यंग्य संग्रह में देखने को मिलता है कुरसीपुर के कबीर का जन्म एक पंचायत प्रधान के परिवार में हुआ उसने अपने पूज्य पिता को बचपन से नाली-खडंजे और नरेगा का सदुपयोग करते, याने पैसे खाते देखा। वह जब से स्कूल गया, पिता के लिए कमाई का साधन बन गया। नरेगा के रजिस्टर पर कहीं पैर का अंगूठा लगाता, कहीं हाथ का। प्रधान जी ने जब अपने घर के पास नाली बनवाई तो उसमें उसने कबीर कुमार के नाम से हस्ताक्षर कर दिहाड़ी कमाई। तब तक वह अक्षर ज्ञानी हो चुका था। उसके प्राध्यापक उसकी प्रतिभा से चकित थे।¹⁸

इस प्रकार इस व्यंग्य संकलन में व्यंग्यकार ने रचना के शीर्षक में हो उभरनेवाली अनेकानेक विसंगतियों के रूप को बखूबी उभारने का काम किया है।

‘इक्यावन श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ’ में गोपाल चतुर्वेदी ने अपने इक्यावन श्रेष्ठ व्यंग्यों को सम्मिलित किया है। सीटी बजाने की लुप्त होती कला, अपने बड़े न बनने का दर्द, दादा का अहिंसा उसूल कूड़े के समाजवाद, पुलिस की जनसेवा लाल आँख के फायदे आदि व्यंग्य लेख इसमें संकलित हैं। इस व्यंग्य संग्रह में संकलित सभी रचनाएँ राजनीति, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि से संबंधित सभी विसंगतियों विद्रूपताओं को दर्शाती हैं। इस पुस्तक में प्रस्तुत सभी रचनाएँ स्वयं में पूर्णता का अहसास कराती हैं और प्रायः एक दूसरे से अप्रभावित भी हैं। इनमें एकरसता नहीं अपितु विविधता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य साहित्य में परिवेश एक जीवित-चरित्र की तरह अपनी साँस व गंध के साथ मौजूद रहता है। और एक चरित्र की भांति ही उनको वांछित स्वर व दिशा देने में अहम् भूमिका अदा करता है एवं व्यंग्य साहित्य को एक अलग पहचान देता है। चतुर्वेदी जी ने अपने साहित्य में मानव जीवन और जनता की चेतना को मुखारित कर दिया है। आम आदमी की पीड़ा को अपने व्यंग्यों माध्यम से व्यक्त कर दिया है। इन्होंने निम्न, मध्यवर्गीय समाज की छोटी-मोटी बहुत सी घटनाओं को अपने व्यंग्य-साहित्य में उभारने का प्रयत्न किया। सामाजिक और यथार्थ की माँग दरअसल लेखक अनुभव के विकास की माँग है, जिसमें वस्तु और कला दोनों ही इसमें समाहित होती है। गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्य साहित्य में ग्रामीण जीवन से लेकर शहर को ऐशो आराम की जिन्दगी जीने वालों का स्पष्ट चित्रण किया है। आज के आधुनिक युग में एक वर्ग दूसरे वर्ग का खूब शोषण करता है और अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अनेक हथकंडे अपनाता है। राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यों के विषय में इनके साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि आज के राजनेता और अधिकारी कितने भ्रष्ट हो चुके हैं। आम जनता को बहला फुसलाकर नेता अपने वश में कर लेता हैं और सत्ता में आने के बाद वह जनता का खूब शोषण करता है। गोपाल जी के व्यंग्यों में सत्ता संघर्ष की विसंगतियों को उद्भूत रूप से उठाया गया है। इनकी लेखनी से समाज, राजनीति, कार्यलय, स्कूल, घर, अर्थनिति कोई भी अधूता नहीं रहा है। चतुर्वेदी के व्यंग्य में राजनीतिक व्यंग्य तो है ही किंतु प्रशासनिक और दफ्तर संस्कृति पर जितने जोरदार और व्यापक ढंग से व्यंग्य इन्होंने लिखे हैं कदाचित् किसी अन्य हिंदी व्यंग्यकारों में नहीं “गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों के बारे में कहा जा सकता है कि वे जनसामान्य का मनोरंजन करने के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों को कुरेदते हैं और सज्जनों को आश्चस्त करते हैं।”¹⁹ इसी कारण ये वर्तमान युग के हिंदी के श्रेष्ठ व्यंग्यकारों में एक है।

संदर्भ सूची :

1. शेरजंगगर्ग, व्यंग्य के सार्थक चितरे: गोपाल चतुर्वेदी, भाषा पत्रिका, सं. डॉ. शशि भारद्वाज, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय खण्ड - 7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली, 110066, सितंबर - अक्टूबर - 2011, अंक 241 पृ. सं. 72
2. गोपाल चतुर्वेदी परिचय, व्यंग्ययात्रा पत्रिका, सं. प्रेम जनमेजय, 73 साक्षर अपार्टमेंट्स ए-3 पश्चिम विहार नई दिल्ली-110063, जुलाई-दिसंबर-2007 अंक 12-13 पृ. सं. 43
3. कन्हैयालाल नंदन, गोपाल की शान में एक गुस्ताखी, वही पृ. सं.47
4. प्रेमजनमेजय, गोपाल चतुर्वेदी के प्रहार, वही पृष्ठ सं. 44
5. शेरजंग गर्ग, रंगबिरंगी फुलझड़िया व्यंग्य यात्रा, वही पृष्ठ सं. 53
6. कन्हैयालाल नंदन, गोपाल की शान में एक गुस्ताखी पृष्ठ 49
7. प्रेम जनमेजय, गोपाल चतुर्वेदी के प्रहार वही पृष्ठ 44
8. कन्हैयालाल नंदन का लेख गोपाल की शान एक गुस्ताखी, व्यंग्य यात्रा पत्रिका संपादक प्रेमजनमेजय 73 साक्षर अपार्टमेंट पश्चिम विहार नई दिल्ली 110063 जुलाई-दिसंबर 2007 अंक 12-13 पृष्ठ 51
9. बातचीत, व्यंग्ययात्रा पात्रिका सं. प्रेमजमेजय, 73 साक्षर अपार्टमेंट्स, ए 3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063; जुलाई दिसंबर 2007 अंक 12-13, पृष्ठ सं. 38

10. गोपाल चतुर्वेदी-फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, सं-2008, पृष्ठ 56
11. गोपाल चतुर्वेदी फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, सं-2011, पृष्ठ 48-49
12. गोपाल चतुर्वेदी आदमी और गिद्ध, ज्ञानगंगा, 205, सी-चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, सं-2010, पृष्ठ 66,67
13. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, सं-2008, पृष्ठ 418
14. गोपाल चतुर्वेदी निर्लज्ज समय के आस पास, मेघा बुक्स एक्स-11, नवीन शाहदरा नई दिल्ली, सं.2012, पृष्ठ 218
15. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सत्साहित्य प्रकाशन, 204 बी.चावड़ी बाजार नई दिल्ली, सं.2014, पृष्ठ 45
16. शेरजंग गर्ग, रंगबिरंगी फुल झड़ियाँ, व्यंग्य यात्रा पत्रिका सं. प्रेमजनमेजय, 73, सक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार नई दिल्ली-110063 जुलाई-दिसंबर-2007 अंक 72-73, पृष्ठ सं. 53
17. डॉ. शेरजंग गर्ग व्यंग्य के सार्थक चितरे गोपाल चतुर्वेदी, भाषा पत्रिका, सं. डॉ. शशी भारद्वाज केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड-7 रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली 110066, सितंबर अक्टूबर 2011 अंक 241, पृष्ठ सं 74

18. गोपाल चतुर्वेदी कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा, 205 सी चावड़ी, सं-2010 पृष्ठ 179
19. शेरजंग गर्ग रंगबिरंगी फूलझडियाँ, व्यंग्य यात्रा पत्रिका सं. प्रेमजनमेजय, 73, सक्षर अपार्टमेंट्स,
ए-3 पश्चिम विहार नई दिल्ली-110063 जुलाई-दिसंबर-2007 अंक 72-73, पृष्ठ-53

तृतीय अध्याय

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में सामाजिक चेतना

3.1 वर्ग विषमता

साहित्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा होता है अतः हम कह सकते हैं कि साहित्य और समाज सदैव ही एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ एक ओर समाज साहित्य के लिए उचित भावभूमि तैयार करने का कार्य करता है वहीं दूसरी ओर साहित्य का उद्देश्य भी समाज को बेहतर बनाने की परिकल्पना प्रस्तुत करना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में साहित्य और समाज के अंतः संबंध को इस प्रकार परिभाषित किया है- “प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि चित्तवृत्तियों में परिवर्तन होने के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य की परम्परा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।”¹ इस प्रकार जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे साहित्य में भी परिवर्तन होने लगता है।

आज के युग में साहित्य के महत्व को कम करके आंका जाता है। किन्तु साहित्य का अपना अलग ही वर्चस्व है। किसी भी समाज के तात्कालिक परिवेश को समझने के लिए वहाँ का साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई भी समाज साहित्य से प्रेरित होकर ही आगे बढ़ता है। किसी समाज को प्रतिबिम्बित करने में साहित्य एवं साहित्यकार की महती भूमिका रहती है। साहित्य और साहित्यकार के इसी महत्व को स्वीकारते हुए प्रेमचंद ने 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की सभा को संबोधित करते

हुए कहा था- “मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि जो कुछ भी लिख दिया जाए वह सबका सब साहित्य है। साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाईयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हैं।

...मेरे विचार से साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। निस्संदेह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है।

...साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं। ...अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उनका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग वियोग की कहानी नहीं सुनाता, जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है। अब वह स्फूर्ति और प्रेरणा के लिए अद्भुत आश्चर्यजनक घटनाएँ नहीं ढूँढता और न अनुप्रास का अन्वेषण करता है, किन्तु उसे उन प्रश्नों से दिलचस्पी है जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं। उनकी उत्कृष्टता की वर्तमान कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।

कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है।”²

प्रेमचन्द के इन वक्तव्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कोई भी साहित्यकार अपने परिवेश से कटकर नहीं रह सकता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है, किंतु यह दर्पण की भांति समाज का प्रतिबिम्ब मात्र ही हमारे समक्ष नहीं रखता है अपितु उसे सुधारने का भी प्रयास करता है इसके साथ-साथ समाज में बदलाव की मांग भी करता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए तत्पर रहता है। एक मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व एवं उसकी सामाजिक चेतना का परस्पर संबंध सामाजिक जीवन से है। जैसे-जैसे मनुष्य के सामाजिक संबंधों में परिवर्तन होता है वैसे-वैसे उसकी सामाजिक चेतना का भी विकास होता है। एक व्यंग्यकार समाज का एक संवेदनशील प्राणी होता है और उसकी पैनी दृष्टि सामाजिक जीवन की गहराई में उतरकर सामाजिक वास्तविकताओं एवं मान्यताओं का सूक्ष्म विश्लेषण करने का कार्य करती है।

एक व्यंग्यकार अपने समय की सामाजिक सांस्कृतिक पारिवारिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक स्थितियों का अवलोकन करता है और अपनी सर्जना द्वारा अवांछनीय तथा अशिव के विनाश एवं शिव की स्थापना का प्रयास करता है। समाज में घटित परिवर्तन और उससे उत्पन्न मान्यताएँ उसे प्रभावित करती हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए वह व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। वर्तमान समय में, जबकि पुरानी मान्यताएँ एवं परम्पराएँ टूट रही हैं और नई परम्पराएँ एवं मान्यताएँ पूरी तरह स्थापित नहीं हुई हैं, ऐसे समय में समाज में विसंगतियों एवं विरोधाभासों का आ जाना स्वाभाविक है। साथ ही जितनी तेजी से भौतिक उन्नति हो रही है उतनी गति से वैचारिक प्रगति नहीं हो पाई है। फलस्वरूप अनेक प्रकार की विसंगतियों और किसी निश्चित आदर्श का आकांक्षी व्यंग्यकार इन विसंगतियों को अनदेखा नहीं कर सकता है। अतः अपने व्यंग्यों के माध्यम से वह इन परिस्थितियों पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए समाज को जागृत करने का भरसक प्रयास करता है।

व्यंग्यकार समाज का एक ऐसा सफाईकर्मी है जो अपने व्यंग्य के द्वारा समाज का कूड़ा-कचरा बाहर करके समाज को स्वच्छ बनाता है। यदि समाज में सामाजिक विसंगतियाँ और सामाजिक कोष लगातार पनपते रहेंगे तो समाज विश्रृंखलित हो जाएगा। “समाज ही समूचे साहित्य का मूल उत्स है। समाज की जो मान्यताएँ सत्य से परे होती हैं और फिर भी संपूर्ण समाज को अपने अनुसार चलने के लिए

बाध्य करती है, वे आलोचना की पात्र होती है। जागरूक एवं संवेदनशील लेखक होने के कारण व्यंग्यकार इन मान्यताओं एवं उनके कारण उत्पन्न परिस्थितियों से सर्वाधिक प्रभावित होता है।”³ गोपाल चतुर्वेदी ने इन स्थितियों से पीड़ित आमजन की दशा को अपने व्यंग्यों के माध्यम से न केवल स्वर दिया है वरन् इसके लिए उत्तरदायी लोगों पर वह प्रहार भी करते दिखलाई पड़ते हैं। व्यंग्य रचनाओं में एक ओर जहाँ सामाजिक विसंगतियों के लिए उत्तरदायी लोगों के प्रति प्रहारात्मक आक्रोश व्यक्त हुआ है। वहीं दूसरी तरफ व्यंग्य के मूल में सामाजिक हित की कामना मुख्य है। इसलिए व्यंग्यकार की दृष्टि समग्र रूप से मानवीय कल्याण से ओत-प्रोत रहती है। जीवन के कटु सत्य एवं यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए व्यंग्य सशक्त एवं सफल माध्यम है। व्यंग्य में मारक क्षमता होती है उसमें शब्दों का मितव्ययी प्रयोग किया जाता है व्यंग्य में विचारों की उत्तेजना होती है। इसके द्वारा यथार्थ प्रकट होता है, ताकि समाज का एक-एक व्यक्ति उस पर विचार करने के लिए विवश हो सके।

समाज में विद्यमान विसंगतियों और विडम्बनाओं ने व्यंग्यकारों को समाज की स्थिति सुधारने के लिए व्यंग्य को अपना हथियार बनाने के लिए विवश होना पड़ा। सामाजिक व्यंग्य के संदर्भ में व्यंग्यकारों ने उसके प्रत्येक पक्ष को व्यंग्य का आलम्बन बनाया है। समाज में फैली विभिन्न विसंगतियाँ चाहे वह शिक्षा से संबंधित हो, धर्म से हो, न्याय और पुलिस से हो या फिर पूंजीपति और मजदूर वर्ग से हो, व्यंग्य के तीक्ष्ण प्रहार से नहीं बच सकी है। व्यंग्य ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष, पारिवारिक जीवन की प्रत्येक स्थिति का पर्दाफाश किया है। हमारे बनावटी शिष्टाचार भी व्यंग्यकार की लेखनी से बच नहीं सके हैं। आज सभ्यता और संस्कृति के नाम पर हमारे भारतीय समाज में फैशन की एक अंधी दौड़ चल रही है जिसने समाज को खोखला कर दिया है। गोपाल चतुर्वेदी ने इस स्थिति को देखा परखा और अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यंग्य बाणों के द्वारा समाज में चेतना लाने का प्रयास किया।

3.1 वर्ग विषमता

समाज के अंतर्गत मनुष्य को तीन वर्गों में बांटा गया है उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग। इन तीनों ही वर्ग में आपस में इतना अंतर और मतभेद है कि उसे किसी भी स्थिति में समाप्त करना असंभव सी बात है। इन वर्ग विशेष में फैली असमानता, असंगतियों को गोपाल चतुर्वेदी ने बखूबी अपने व्यंग्यों में उकेरा है।

3.1.1 उच्चवर्ग

उच्चवर्ग से तात्पर्य है- ‘ऊँचा श्रेष्ठ वर्ग।’⁴ हमारे समाज में उच्च वर्ग अपनी धन-संपदा, वैभव के कारण समाज में अपना श्रेष्ठ स्थान सिद्ध करता है और सामाजिक दृष्टि से ऊँचा माना जाता है। टाम, बाटमोर के अनुसार “यदि व्यक्तियों का वर्गीकरण उनके राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव अथवा सत्ता के आधार पर किया जाए तो अधिकांश समाजों में यह स्थिति सामने आएगी कि जिन व्यक्तियों का संपत्ति के वितरण संबंधी अनुक्रम में जो स्थान था वही स्थान उन्हें इस अनुक्रम में भी मिलेगा। तथाकथित उच्च वर्ग आम तौर पर सबसे अधिक मालदार भी होते हैं। ये वर्ग अभिजन अथवा कुलीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।”⁵ अतः उच्च वर्ग को हम समाज में विद्यमान शोषक वर्ग के रूप में भी जान सकते हैं। यह वर्ग उत्पादन के सभी साधनों को अपने हाथों में रखते हुए उत्पादन करने वाले वर्ग के श्रम का शोषण कर स्वयं के लिए अपार संपत्ति एकत्रित कर लेता है। उच्च वर्ग की यह मानसिकता रही है कि वह निम्न वर्ग को बड़ी हेय दृष्टि से देखता है निम्न वर्ग के प्रति उसका व्यवहार अत्यंत अपमानजनक, क्रूर एवं अमानवीय रहा है।

गोपाल चतुर्वेदी ने इस प्रकार के उच्च वर्ग पर व्यंग्य किया है। उच्च वर्ग के व्यक्तियों को अपनी सामाजिक स्थिति व अपने ऐश्वर्य को देखते हुए सदा ही इस बात का डर बना रहता है कि अपने से कम सामाजिक प्रतिष्ठा वाले तथा गरीब लोगों के साथ उठने बैठने व बातें करने से उनका सामाजिक स्तर गिर न जाए। गोपाल चतुर्वेदी ने ‘फार्म हाउस के लोग’ में उच्च वर्ग के लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहा है- “पहले उन्होंने सोचा कि एक गेस्ट हाउस बना लें। विदेशी मेहमान वहीं ठहरें। वहीं उनके खाने-पीने तथा

अन्य मनोरंजन का आयोजन हो उनके एक समृद्ध दोस्त ने उन्हें समझाया कि बिना फार्म हाउस के शहर के बड़ों में उनका नाम नहीं होना। सफल सम्पादक, नेता, उद्योगपति, व्यापारी वाकई बड़े तभी बनते हैं जब उनका फार्म हाउस बने।

उसने सलाह दी, “सत्ताधारियों के पड़ोस में उनसे सम्पर्क बनेगा। नए धंधों की गुंजाइश बढ़ेगी। यह तुम्हारी कोठी भजन-पूजन के लिए ठीक है, आधुनिक स्टाइल के जीवन के लिए नहीं।”⁶

उच्च वर्ग के पास धन की कोई कमी नहीं है अतः छोटे-से-छोटे आयोजन के लिए भी अधिक से अधिक पैसे खर्च करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं।

उच्चवर्ग में सामाजिक मान्यताओं के प्रति स्नेह भाव भी कम होता है। यह वर्ग सामाजिक मापदंडों का प्रयोग अपनी इच्छा अनुसार ही करते हैं तथा समाज में हो रही क्रांति आदि में भी कम सहयोग करते हैं। इनका एक मात्र उद्देश्य समाज में रहकर अधिक से अधिक धन प्राप्त कर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना होता है। उच्च वर्ग जिसमें पूंजीपति तथा उद्योगपति शामिल हैं, ये अधिकांशतः पुराने सामंत ही हैं अतः इनकी मानसिकता भी सामंतवादी ही दिखलाई पड़ती है जो मजदूरों तथा श्रमिकों का शोषण करने के साथ ही साथ उनसे अनुचित व्यवहार भी करते हैं। इस वर्ग में एक प्रकार की संवेदन हीनता होती है जिसमें संबंधों की कोई परवाह नहीं होती है। पिता-पुत्र, पति-पत्नि, माता-पिता, गुरु-शिष्य आदि परम्परागत संबंधों का इस वर्ग में कोई महत्व नहीं है, महत्व है तो केवल धन का।

‘फार्म हाउस के लोग’ में यह दर्शाया गया है कि शादी पार्टियों में काम करने के लिए जाने वाली लड़कियों का उच्च वर्ग के लोग किस प्रकार फायदा उठाना चाहते हैं- “‘इवेंट परफैक्ट’ की लड़कियाँ और युवा जाने की तैयारी में लगे थे कि वीर ने पीछे से एक का कंधा पकड़कर उससे वहीं रुकने को कहा। शराब के आधिक्य से वह अपना आपा खो चुके थे। अगर आँखों से लार टपकती तो उस लंबी गोरी

लड़की का वक्षस्थल वीर के कंधे पर टिके सिर से भीग गया होता। उनका एक हाथ नीचे फिसलते-फिसलते उसके नितंबों तक पहुँच चुका था।

उनकी भरती आवाज सबको सुनाई दी। अगला कॉन्टेक्ट भी हम इवेंट परफैक्ट को ही देंगे, पर हर सौदे की कुछ कीमत होती है।’⁷

मानव-समाज के इतिहास में इस वर्ग की भूमिका को देखकर यह विदित होता है कि प्रारम्भ से ही यह अपने हित और स्वार्थ के प्रति अधिक जागरूक रहा है। समाज का सर्वेसर्वा बनने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है किंतु अपनी कार्य कुशलता, चतुराई एवं दांवपेच से इसने समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रखा है। इस वर्ग के लोग यह मानते हैं कि चरित्र, नेतृत्व, जीवन-शैली आचरण, व्यवहार, संस्कृति ऐसे तत्त्व हैं जो उन्हें समाज में एक अलग दर्जा ही देते हैं किंतु इतिहास साक्षी है कि स्वयं को उच्च आदर्शों का पुंज घोषित करने वाला उच्च वर्ग हिंसा, क्रूरता, निर्दयता और छलकपट से समाज के दूसरे वर्गों का शोषण करता आया है। प्रारम्भिक काल में इसने मानवता के एक बहुत बड़े भाग को दास बनाकर अपनी अमानवीयता के परिचय से अपने वर्गीय जीवन की शुरुआत की। सामंती काल में इसने किसानों से लगान वसूल कर उन्हें उनकी ही भूमि से बेदखल किया और आज के युग में वह मील मजदूरों का शोषण कर रहा है। पहले की भंति आज भी मंत्री तथा पुलिस आदि इनकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

3.1.2 मध्यम वर्ग

भारत में मध्यवर्ग का उदय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आने के बाद हुआ। अंग्रेजों को भारत में अपनी हूकूमत चलाने के लिए प्रशासन में दूसरी व तीसरी श्रेणी के ऐसे शिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ी जो राज-काज का काम देख सकें। ब्रिटिश शासन की इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए

देश में शिक्षा का प्रसार व मध्यवर्ग का उदय हुआ। मध्यवर्ग का तीव्र विकास उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 1857 की क्रांति के बाद, ब्रिटन की महारानी द्वारा भारत का शासन अपने हाथ में ले लेने से माना जा सकता है। शिक्षा के प्रसार और औद्योगीकरण के फलस्वरूप बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में इस वर्ग के आकार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और आजादी के बाद तो यह वर्ग समुद्र की तरह फैलता गया।

समाज में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच मध्यमवर्ग की स्थिति त्रिशंकु की तरह है। उसकी इच्छाएँ व आकांक्षाएँ तो उच्च वर्ग से जुड़ी हैं लेकिन उसके पैर निम्नवर्ग की यथार्थ जमीन की ऊपरी सतह पर टिके हैं। यही कारण है कि उसमें एक गहरा अंतर्विरोध पलता है जो उसके चरित्र में अस्थिरता व दो मुँहपन के रूप में दिखलाई पड़ता है।

मध्यमवर्ग की सीमारेखा में आने वाले व्यक्तियों की संख्या उच्चवर्ग से अधिक है तथा निम्नवर्ग के रुढ़िबद्ध जीवन की अपेक्षा यह वर्ग शिक्षित व विचारशील होता है। इस वर्ग के रीति-रिवाज, व्यवहार रूचि, अरूचि तथा संस्कृति इसे अन्य वर्गों से अलग रखती है। मध्यम वर्ग तो पूर्णतः आधुनिक है और न ही पूर्णतः रूढ़िग्रस्त। यह उन दोनों बिंदुओं के मध्य चक्कर लगाता है।

समाज में मध्यवर्गीय की स्थिति का बहुत सुंदर एवं यथार्थ चित्रण करते हुए हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य लेख 'एक मध्यवर्गीय कुत्ता' में कहा है- "यह कुत्ता उन सर्वहारा कुत्तों पर भौंकता भी है और उनकी आवाज में आवाज भी मिलाता है। कहता है - मैं तुममें शामिल हूँ। उच्चवर्गीय झूठा रोब भी और संकट के आभास पर सर्वहारा के साथ भी, यह चरित्र है इस कुत्ते का। यह मध्यवर्गीय चरित्र है। यह मध्यवर्गीय कुत्ता है। उच्चवर्गीय होने का ढोंग भी करता है और सर्वहारा के साथ मिलकर भौंकता भी है।"⁸ इस प्रकार मध्यवर्ग उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच झूलता रहता है। एक ओर तो वह निम्न वर्ग के

जीवन स्तर को अपनाने में शर्म महसूस करता है। दूसरी ओर वह उच्चवर्ग के जीवन स्तर को अपनाना चाहता है। किंतु आर्थिक विवशता के कारण वह उसे अपना नहीं पाता है।

गोपाल चतुर्वेदी ने 'खिलौनों का खतरा' नामक एक लेख में मध्यवर्ग के लोगों की आर्थिक दुर्बलता को बताते हुए कहा है- “बोलते-चलने वाले विदेशी खिलौनों के मुकाबले कम कीमत होने के बावजूद अपनी जेब की हैसियत इन्हें खरीदने की नहीं थी। हमने दुकानवाले से अपनी दिक्कत बताई। उसने एक अच्छे सैल्समैन के नाते हमें पढ़ाई 'पैसे का मत सोचिए।' हम किस्तों पर भी माल बेचने को तैयार है। सिर्फ बारह प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज पड़ेगा। बैंक से लोन हम दिलवाएंगे। तीन साल की आसान किस्ते है। जरा अंदाज लगाए आपके साहबजादे कितने किस्मत वाले है। अभी से उन्हें, अफसर, सिपाही खरीदने का अभ्यास हो गया तो भविष्य में कामयाबी उनके कदम चूमेगी।

अपने बच्चे की सफलता में किसकी रुचि नहीं है? दूसरे माँ बाप की तरह हम भी चाहते हैं कि अच्छे स्कूल में पढ़े। जितना हमारे माँ-बाप ने हमारे लिए किया है, हम उससे कुछ ज्यादा करने के इच्छुक है।”⁹ अतः मध्यवर्ग का आर्थिक पक्ष सुदृढ़ नहीं होता। आर्थिक पक्ष में सुदृढ़ता न होने के कारण यह वर्ग सदैव ही जीवन में कठिनाइयों का सामना करता रहता है। इस वर्ग के पास आर्थिक साधनों की कमी रहती है। कमाने वाला एक व्यक्ति होता है और उस पर सारा परिवार निर्भर रहता है। उस ऐसी अवस्था में परिवार में मतभेद जन्म लेने लगते हैं। आर्थिक समस्याओं ने मध्यम वर्गीय व्यक्ति का जीवन तोड़ सा दिया है। इसके सामने बेरोजगारी की समस्या है। मध्यवर्गीय लोगों में सामाजिक दिखावे की भावना विद्यमान रहती है और इसे पूरा करने के लिए यह वर्ग अपनी आय से अधिक व्यय कर देता है और इसी कारण इन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार मध्यम वर्ग उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच की कड़ी है। यह वर्ग समाज के हर क्षेत्र में अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन करता है

3.1.3 निम्न वर्ग

ऐतिहासिक दौर में निम्नवर्ग कभी दास, भूदास, कृषिदास, श्रमिक, सर्वहारा तथा भारतीय समाज में शुद्र आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। निर्धनता, पिछड़ापन, अशिक्षा इस वर्ग की पहचान है। उपर्युक्त विशेषताओं में से निर्धनता को छोड़कर अन्य विशेषताएँ तो प्रायः तीनों ही वर्गों में देखने को मिलती है, तब हम निम्न वर्ग पर ही इसका भार लादने की व्यर्थ कोशिश क्यों करें और यह भी विचार करने योग्य है कि निर्धनता के लिए क्या निम्नवर्ग स्वयं उत्तरदायी है? हमारा इतिहास बताता है कि वर्ग-विभक्त समाज कभी भी किसी भी युग में मानव को समान जीवन जीने के अवसर नहीं दिए गए। समाज में व्याप्त यह शोषण ही असमानता और उत्पीड़न को जन्म देता है। निम्न वर्ग साधनहीन होते हैं और गरीब कहलाते हैं। यह वर्ग मेहनत-मजदूरी कर ईमानदारी का जीवन व्यतीत करते हैं। यह वर्ग समाज का वह भाग है जो आर्थिक आधार पर ऊपर से नीचे की ओर आते हुए अंतिम स्तर पर होता है।

यह वर्ग दूसरे वर्गों की तुलना में अधिक शारीरिक मेहनत का कार्य करता है और फिर भी आर्थिक दृष्टि से उक्त दोनों वर्गों से कम महत्वपूर्ण समझा जाता है। इस पर गोपाल चतुर्वेदी ने व्यंग्य करते हुए लिखा है - “उसके इस निरर्थक चिंतन में रामदास ने आकर व्यवधान डाला। रामदास माली था और बंगले के पीछे बने सर्वेंट क्वार्टर में रहता था। ‘मेम साहब हमारे मुन्ना को बड़े जोर का बुखार आ गया है। पूरा बदन तपता है एक घंटे से तड़प रहा है। कोई दवा हो तो दें। रामदास ने रेखा से विवश प्रार्थना की। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी और आँखों में असहाय होने की कातरता झलक रही थी।”¹⁰ निम्नवर्ग के लोगों को इस प्रकार की समस्या से दिन-प्रतिदिन गुजरना पड़ता है। और इसके समाधान के लिए आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण उसे दूसरों के आगे हाथ भी फैलाना पड़ता है। इस प्रकार निम्नवर्ग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आजीवन कड़ी मेहनत करता है, किंतु विडम्बना यह है कि अत्यधिक शारीरिक श्रम करने के बाद भी वह आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ नहीं हो पाता है क्योंकि निम्न वर्ग के लोगों का

शोषण उच्च वर्ग के लोग करते हैं। उन्हें उनके कार्य की न्यूनतम मजदूरी भी नहीं दी जाती है और उन्हें अनुचित कार्य करने के लिए बाध्य भी करते हैं।

कार्ल मार्क्स ने इसी निम्न या शोषित वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाने की बात की है। उत्पादन के साधनों पर इसका स्वामित्व नहीं होता, इसलिए कुछ खो जाने का भय भी इस वर्ग को नहीं होता है। इस पूंजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग एक ऐसे रूप में प्रकट हुआ है जो उत्पादन-प्रक्रिया में स्वयं उत्पादन का एक हिस्सा बन जाता है, साथ ही पूँजीपतियों की समृद्धि का साधन भी बन जाता है। जब इसे ज्ञान होता है कि उसके श्रम के बल पर कोई अन्य धन सम्पन्न हो रहा है, अर्थ दर्शन के सारे गूढ़ रहस्य उसके नेत्र निहारने लगते हैं तथा वह शोषण के अर्थ तंत्र को विध्वंस करने हेतु कटिबद्ध हो उठता है। “जिस अनुपात में पूँजीपति वर्ग का अर्थात् पूँजी का विकास होता है उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग का, आधुनिक मजदूर वर्ग का उन श्रमजीवियों के वर्ग का विकास होता है, जो तभी तक जिन्दा रह सहते हैं जब तक उन्हें काम मिलता जाए और उन्हें काम तभी तक मिलता है जब तक उनका श्रम पूँजी में वृद्धि करता है। ये श्रमजीवी जो अपने को अलग-अलग बेचने के लिए लाचार हैं अन्य व्यापारिक माल की तरह खुद भी माल हैं और इस लिए वे होड़ के हर उतार चढ़ाव तथा बाजार की हर तेज़ी-मंदी के शिकार होते हैं।”¹¹

श्रमिक जीविकोपार्जन के लिए अपना श्रम बेचने को विवश है वह कारखाने में अथवा खेत में काम करते हुए एक मशीन की ही तरह हो जाता है। इस वर्ग के लोगों को पूँजीपति रूपी राक्षस हर तरह से दबाकर रखना चाहते हैं। कम से कम वेतन में वे उससे अधिक से अधिक काम लेना चाहते हैं और अगर कोई मजदूर इसके विरुद्ध आवाज उठाता है तो ये पूँजीपति या तो उसे अपनी मील या कंपनी से बाहर निकाल देता है या फिर उसे मरवा दिया जाता है।

पूँजीपतियों ने निम्नवर्ग के व्यक्ति के जीवन को तहस-नहस करके रख दिया है। जो भी मजदूर थोड़ा बहुत संघर्ष करता है उसे चोरी-डकैती के इल्जाम में फंसाकर जेल जाने के लिए मजबूर कर दिया

जाता है। निम्नवर्गीय व्यक्ति के पास जब रोटी खाने के लिए भी पैसे नहीं होते हैं, तो वह जेल जाने के लिए भी तैयार हो जाता है। गोपाल चतुर्वेदी ने 'मानसिक मर्ज के मजे' नामक अपने व्यंग्य लेख में दर्शाया है कि किस प्रकार पुलिसवाले और उच्च वर्ग के लोग इन गरीबों की रोटी का इन्तजाम करते हैं - “हमारे देश की पुलिस और जाँच एजेंसियाँ इनके प्रशंसक हैं। दोनों के मानसिक रोगी मिलकर लाखों गरीबों को फ्री की रोटी का इंतजाम करते हैं। कई गरीब तो पुलिसवालों के पास बड़े अपराधियों की सिफारिशें लेकर आते हैं। मालिक, हमारे मोहल्ले में दो दिन पहले डकैती की वारदात में लाखों लुटे हैं। आपने एफ.आई.आर. दर्ज कर दी है। अपनी तो एक ही विनती है, हमारा नाम उसमें डाल दो। आप की तफ्तीश की किल्लत बचेगी, अपनी दाल-रोटी बनेगी। पुलिस के 'कर्तव्य-नष्ट' अधिकांश, अपनी 'ड्यूटी' के प्रति समर्पित है, जिम्मेदारी से चूकना उनके स्वभाव में नहीं है। किसी भी कामयाब नेता के तरह वे अपनी आत्मा की आवाज से विवश हैं। उनकी आत्मा आसानी से चुप नहीं होती है। वह चिल्लर देखकर और चिल्लाती है। आठ-दस हजार का चांदी का 'साइलेंसर' ही उसे चुप कराता है। अपनी सिफारिश करने वाले अपराधी को दुःखी जेल प्रत्याशी अधिकारी को आत्मा की आवाज के संकट का ब्यान सुनाता है। अपराधी को कई डकैतियाँ डालनी हैं। पुलिस को केस सुलझाने की वाह वाही लूटनी है। दोनों के पारस्परिक हित में है कि इस बेगुनाह को जेल की रोटी तोड़ने की सुविधा दी जाए।”¹² इस प्रकार निम्न वर्ग की स्थिति इतनी दयनीय होती है कि दो वक्त की रोटी के लिए वह जेल जाने को भी तैयार हो जाता है।

निम्न वर्ग के व्यक्ति के परिवार के किसी सदस्य को यदि कोई बड़ी बीमारी हो जाए तो उसके इलाज के लिए घर के सदस्य को अपने शरीर के अंगों तक को बेचना पड़ता है। निम्न वर्ग की इसी दयनीय स्थिति को समाज से रूबरू कराते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं- “वास्तविक जीवन का यह गरीब भी दानी प्रवृत्ति का है उसने कई बार रक्तदान किया है। एक बार पिता के इलाज के लिए वह अपनी 'किडनी'

भी एक जरूरतमंद को दान दे चुका है। दान के मर्ज में मजे ही मजे हैं। उसे किडनी दान के पूरे बीस हजार रुपये मिले थे। एक डॉक्टरने दिए, दूसरे ने पिता के इलाज में सारे के सारे ले लिए। दान की प्रवृत्ति में उसका मन संयासी और तन कृशकाय हो चुका है।”¹³

निम्न वर्ग पहले से ही शिक्षा क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। इसलिए यह वर्ग बौद्धिक क्षेत्र में भी आगे नहीं बढ़ सका। यह वर्ग बहुत ही परिश्रमी और भोला है, जिसके कारण आज भी वह गरीबी की जंजीरों में जकड़ा पड़ा है। इस वर्ग ने जीवन की सत्यता को सर्वोपरि माना है। इस वर्ग की एक और विशेषता यह भी है कि ये सदैव समाज के लोगों का आदर करना अपना कर्तव्य समझते हैं। देश में भुखमरी का कारण भी यही आदमखोर व्यवस्था है। अब तक के उपेक्षित तिरस्कृत व्यक्ति इस सत्य से परिचित होने लगे हैं कि ये जो सत्यवादी हरिश्चन्द्र के अवतार दानवीर कर्ण के पक्षधर और धर्मात्मा होने का दम्भ भरते हैं, उनके पीछे निर्धन मेहनतकशों के शोषण का एक लम्बा इतिहास है। श्री गोपाल चतुर्वेदी ने व्यंग्य किया है कि किस प्रकार नेता लोग निम्नवर्ग का शोषण करते हैं और मुस्कराते रहते हैं- “आततायी के अनुसार हमारी सदाबहार नकली मुस्कान ‘नेता ब्रांड’ है। देश रोता रहे, गरीबों और बेगुनाहों की कितनी भी धुनाई हो, अर्थव्यवस्था चरमराए तो चरमराए, हर भारतीय के सिर पर उधार का औसत भार पचास हजार रुपये हो या उससे भी ज्यादा बढ़े, नेता को कोई वास्ता नहीं है। उसके चेहरे पर मुस्कान ‘फिट’ है तो ‘फिट’ हैं। आततायी बताते हैं कि हमारे अंतर किस तरह रोता है और हमारे चेहरे के समान नेता मुस्कराता है। उनकी मान्यता है कि अपने दुःखी दिल और मन की इस मुस्कुराहट से हम देश से एकाकार हो गए हैं। हम विवश है, असहाय है कुछ भी करने में असमर्थ है। बस आततायी जैसों की बातपर इतना ही कह सकते हैं कि दिल के बहलाने को गालिब यह ख्याल अच्छा है।”¹⁴

सर्वहाराकरण की यह प्रक्रिया भले ही धीमी चल रही है लेकिन वह रूकी नहीं है। औद्योगिक क्षेत्रों में कार्यरत श्रमिकों के अतिरिक्त खेतीहर श्रमिक तथा छोटे किसानों के आन्दोलनों ने देश में

समाजवादी क्रांति की ज्योति प्रज्ज्वलित की है। बिहार, बंगाल, आंध्र प्रदेश, पंजाब, केरल आदि प्रदेशों में माक्सवादी - लेनिनवादी पार्टी अनेक गुटों के विभक्त होने के बाद भी, यहाँ की सामंती शक्तियों से लोहा ले रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, तेलंगाना, पार्वती पुरम तथा नक्सलवाड़ी के विद्रोह इस दिशा में उल्लेखनीय रहे हैं। इन्हें शासक वर्ग ने बुरी तरह कुचल दिया, किंतु भूमिगत कार्यवाहियों की अग्नि सुगबुगाती रही और वर्तमान में भी सुगबुगा रही है। इससे भयभीत हो हमारे देश की राज्य सरकारें कृषि संबंधी सुधारों की कार्यवाही या कार्यक्रमों की घोषणाएँ भी करती रहती है। यह एक अलग बात है कि ये मात्र घोषणाएँ बनकर रह गई हैं या इनका क्रियान्वयन भी हुआ हो।

निम्नवर्गीय जनता का मानसिक विकास कम होने के कारण पूँजीपति वर्ग इनके साथ घृणित चाल चलता है। इन घृणित चालों को समझने में मजदूर वर्ग असम्भव है। वह जो बात कही जाती है उसी पर विश्वास कर लेता है। कथनी और करनी के इस अत्यधिक अंतर की वजह से वह कुटिल चालों में उलझ जाता है।

गोपाल चतुर्वेदी जी ने अपने साहित्य में तीनों वर्गों में विद्यमान समस्याओं व बुराईयों को चित्रित किया है। उच्चवर्ग अपनी विशेष सामाजिक मर्यादा भाव के कारण अन्य वर्गों से अलग ही रहता है। अपने से निम्न वर्गों के लोगों के साथ बातें करने में इन्हें अपनी मर्यादा का ख्याल आ जाता है। झूठी शान व सामाजिक मर्यादा मानसिक संकीर्णता, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जन्मदिन पार्टी का भव्य आयोजन, मजदूर वर्ग के प्रति घृणाभाव, विलासिता व घृष्टता, चुनाव में विजय हेतु धन का दुरुपयोग इत्यादि विषयों पर उच्चवर्ग का नकारात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः उच्चवर्ग को उसकी परिवेशगत बुराईयों के साथ प्रस्तुत किया है।

3.2 संबंधों में बदलाव

सामाजिक विकृतियों का प्रभाव हमारे सामाजिक संबंधों पर पड़ता है। स्वार्थ परता और अहं की टकराहटों ने सामाजिक संबंधों को नवीन व्याख्या ही नहीं कि वरन् संबंधों के अस्तित्व पर ही प्रश्न लगा दिए हैं- “लाला जी के साहबजादे ने जानना चाहा, अंकल! मम्मी पूछ रही है कि आप पापा को रखने का कितना पैसा लेंगे?”

एक पल को उनकी जुबान को लकवा मार गया। नई पीढ़ी के इस नुमाइंदे में अपने लक्ष्य को हासिल करने की लगन थी। उसने अपना सवाल फिर दोहराया। किडनैपर ने उल्लास के उत्साह में फोन पटका, लालाजी को राह खर्च के लिए सौ रुपये का नोट दिया, उनके हाथ और आँख पर पट्टी बाँधी पार्श्व भाग पर प्यार से एक लात लगाई और सड़क पर छोड़ दिया। परिवार के पारस्परिक प्रेम के बारे में वह निश्चित हो गए। लाला लज्जाराम जैसे तीन-चार और खिलाड़ी परिवारों से अगर उसका साबका पड़ा तो उन्हें खेल बदलना होगा। प्रतियोगिता दिनो-दिन कड़ी होती जा रही है।”¹⁵ अब माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र आदि सभी संबंध स्वाथ की कसौटी पर कसे जाने लगे हैं।

आजादी के बाद पिता-पुत्र के संबंधों में बहुत परिवर्तन आया है। पहले जहाँ पुत्र पिता की हर आज्ञा का पालन करना अपना धर्म मानते थे और पिता के नियंत्रण में रहते थे, वहीं अब आजादी के बाद पिता पुत्र संबंधों में प्रजातांत्रिकता का प्रवेश हो गया है। आज का बालक पिता के नियंत्रण और अनुशासन से दूर रहना पसंद करता है और जीवन में अपने हिसाब से जीना चाहता है। “पप्पू ने हमें ज्ञान दिया आजकल हमारी छुट्टी है। हर शाम को खेलने जाते हैं, तब मम्मी टोकती हैं सुबह जाएं तो आप आपा प्लीज याद रखिए आप हमारे फादर हैं जेलर नहीं।”¹⁶

आज के इस युग में बेटा इतना स्वार्थी हो गया है कि पिता के बीमार होने पर वह सेवा करने की बजाय उनसे अपना पीछा छुड़ाकर भागता फिरता है। इस संबंध के विषय में गोपाल जी व्यंग्य करते हुए कहते हैं -“भजन कीर्तन का कार्यक्रम जोर-शोर से शुरू हो गया। रामदीन कुछ अस्वस्थ लग रहे थे। उनका चेहरा तमतमा रहा था और लाल हो चला था। उन्होंने मातादीन की ओर मुँह बढ़ाकर फुसफुसाया, बेटा तबीयत ठीक नहीं है। चक्कर से आ रहे हैं। बदन जल रहा है। मुझे डॉक्टरके पास ले चलो।

मातादीन ने उनकी नब्ज देखी, काफी तेज थी और हाथ अंगीठी-सा तप रहा था- सर्दी के बावजूद।

बस थोड़ी देर हिम्मत रखो बापू। सब ठीक हो जाएगा। कुछ ही घंटों की बात है। मातादीन ने अपने पिता को ढाढस बंधाया।

रात के साढ़े ग्यारह बजे थे। लाउडस्पीकों के प्रभावस्वरूप वातावरण में सिर्फ बेसुरी आवाजें गूंज रही थी। भीड़, नींद और भक्ति से ओत-प्रोत थी। कार्यक्रम के अनुसार मध्यांतर में प्रसाद वितरण होना था और जनता को इसी की प्रतीक्षा थी। ठीक बारह बजे मातादीन ने खड़े होकर हाथ उठाया और चारों तरफ सन्नाटा छा गया।

अब रामबाबा नीचे आकर भक्तों को आशीर्वाद देंगे, फिर प्रसाद बंटेगा और कार्यक्रम चालू रहेगा। मातादीन ने घोषणा की।

मातादीन ने बड़ी कठिनाई से रामबाबा को टीले से नीचे उतारा। नीचे रमेश तथा अन्य लोगों की मदद से उन्हें दस कदम चलाया गया।

हाथ उठाओ, बापू। कहकर मातादीन ने उनकी बांह छोड़ दी। दूसरे हाथ की लाठी के सहारे के बावजूद रामदीन धड़ाम से गिर पड़े दीक्षित और उसके साथी ‘राम बाबा अमर हो का उद्घोष करने लगे।

भीड़ अनियंत्रित होकर रामबाबा के गिरने का कारण जानने के लिए आगे दौड़ी। इस भगदड़ में रामदीन को टीले पर लाया गया। उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे।¹⁷ इस प्रकार आज के समय में मनुष्य केवल नाम और पैसे के पीछे भागता है इसके लिए उसे माता-पिता का उपयोग करना पड़े तो उससे भी पीछे नहीं रहता है और अपनी शोहरत के लिए वह माता-पिता को मृत्यु के मुँह में धकेल देता है जिसका उसे कोई पछतावा भी नहीं होता है।

आधुनिक भारत में आजकल विभिन्न दिवस मनाने का चलन हो गया है अब तो माता-पिता, भाई-बहन आदि के लिए भी साल में कोई एक विशेष दिन होने लगा है। इस 'डे' संस्कृति पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं- “माँ-बाप से सालभर छुटकारा पाना हुआ तो 'मदर्स' और 'फादर्स डे' पर उनको कार्ड, नहीं तो बहुत हुआ तो कोई गिफ्ट दे दी और फिर बाकि दिन की छुट्टी। वह घर में बिना किसी देखभाल, उपेक्षित कूड़ा से भी बदतर हालात में पड़े रहें किसे परवाह है? उनके चेहरे की झुर्रियाँ जैसे किसी अनकही टीस और प्रखर हो गई।”¹⁸ गोपाल जी ने घर के बुजुर्गों की स्थिति को बड़े ही मार्मिक ढंग से यहाँ प्रस्तुत किया है। जो माता-पिता अपनी संतान के पालन-पोषण में कोई कमी नहीं रखते। उनकी हर ख्वाहिश को कैसे भी करके पूरा करते हैं, वहीं संताने जब अपने पैर पर खड़ी होती है तो अपने ही माता-पिता से नौकर से भी बदतर व्यवहार करती है जो वाकई अत्यधिक निंदनीय है।

आजकल की संताने जिनके माता-पिता सरकारी नौकरी में है वे यह मनाते हैं कि रिटायरमेंट के पहले ही वे भगवान के घर पहुँच जाए, “नौकरी के दौरान कोई मौत हो जाए तो उसके परिवार के एक सदस्य को रोजगार भी बख्शती है। इसलिये देखने में आया है कि सरकारी सेवकों की योग्य संताने प्रभु से मनाती है कि उनके बुजुर्गवार को जल्दी से जल्दी सेवा की इस सजा से वक्त के पहले ही मुक्त करो। कहीं इसके रहते सेवा का उनका मौरूसी हक न मारा जाए।”¹⁹ अर्थात् शासन में किसी सरकारी कर्मचारी की 60 वर्ष से पहले मृत्यु हो जाने पर घर के किसी एक सदस्य को नौकरी देने का प्रावधान है। “ठीक है मैं

हमेशा के लिए चली जाऊँगी। रेखा ने फोन काट दिया।²⁰ आज स्त्री रिश्ते केवल स्वार्थ से जुड़े हुए होते हैं जहाँ स्वार्थ खत्म वहाँ रिश्ता भी- “रिश्ते-नाते, विवाह वगैरह-वगैरह सिर्फ पारस्परिक स्वार्थ साधन के बहाने है। हिस्सा लेकर बेटा बाप को ठुकराता है। उसी के घर में उसी के लिए जगह नहीं है। बूढ़े-बूढ़िया नौकर के क्वार्टर में गुजारा करें, तब तक कि घर में नौकर नहीं है। भाई-भाई के इतने सगे हैं कि बस चले तो एक-दूसरे का गला घोट दें। वह तो कुछ हिम्मत की कमी है, कुछ कानून का डर है कि सिर्फ बोलाचाली है। एकदूसरे को देखते हैं तो मुँहफेर लेते हैं।”²¹

इस प्रकार गोपाल जी ने समाप्त सी हो रही मानवीय संवेदनाओं, संबंधों में अलगाव आदि को अपने व्यंग्य लेखन का विषय बनाकर बखूबी उसके साथ न्याय किया है।

3.3 नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण

नारी का शोषण कर उसके प्रति वासनामय दृष्टि रखना आज पुरुषों का स्वभाव बन गया है। वे नारी संघर्ष मुक्ति और स्वतंत्रता के नाम पर असल में नारी का शोषण और उसका भोग करते हैं। आज की नारी पुरानी पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए चूल्हे चैके की दुनिया से बाहर आकर पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए तैयार है लेकिन इसके लिए उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। गोपाल जी ने नारी पूजा के नाम पर किए जाने वाले शोषण पर व्यंग्य करते हुए कहा है- “बस, रामदीन जी, हम दोनों की इज्जत का सवाल है। जैसे ही आपको नई चिड़ियाँ दिखे, हमारे पिंजरे में ले आना। कहीं युवा टोल ने उन्हें फंसा लिया तो हम सबकी भद होगी। ऐसे भी इन नए लड़कों का क्या भरोसा। कहीं आलतू-फालतू छेड़छाड़ कर दी तो सारे दफ्तर की बदनामी है।”²² अर्थात् आज स्त्री पढ़-लिखकर समाज में दफ्तर में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है तो कुछ पुरुषों से यह बात सहन नहीं हो रही। वे यही

चाहते हैं कि घर हो या दफ्तर स्त्री-पुरुष के ही अधिकार में रहे। उसका स्वतंत्र रूप से अपना कोई अस्तित्व ही न हो।

इसी प्रकार नारी कल्याण के नाम पर चलाए जा रहे आश्रमों की हकीकत का पर्दाफाश करते हुए कहा है- “अनाथालय, विधवाश्रम, नारी निकेतन इत्यादि ऐसी अनेक सामाजिक संस्थाएँ हैं जहाँ हर उम्र की नारी उचित दाम पर मिल जाती है। कुछ संस्थाएँ इस दिशा में इतनी निःस्वार्थ होती हैं कि उनके एवं सामान के नापसंद आने पर अदल-बदल करने की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।”²³ अर्थात् हम कह सकते हैं कि आज भी समाज में नारी को सामान के रूप में देखा जाता है पुरुषों की नज़र में वह एक सामान से अधिक कुछ भी नहीं है जिसे कभी भी खरीदा जा सकता है और पसंद न आने पर उसे फेंका या वापस भी किया जा सकता है।

महिलाओं को इंप्रेस करने के लिए युवा तो युवा दफ्तर के उम्रदराज लोग भी पीछे नहीं रहते हैं वह स्वयं को किसी नवयुवक से कम नहीं समझते हैं- “हम अपनी चुस्त-दुरुस्त पतलून-शर्ट, सात नकली दांत, सुरक्षित चांद व्यवस्था से लैस होकर घर से दफ्तर पहुँचते हैं। अभी तो नई-नई लड़कियाँ मरती हुई हैं। यही मौका है उन्हें इंप्रेस करने का। कहीं हमारे युवा सहयोगियों ने हमसे पहले उन्हें ‘हथिया’ लिया तो अपना भविष्य अंधकार मय हो जाएगा आधुनिक पीढ़ी ‘हैलो’ कहती है और हाथ मिलाती हैं कहीं देर हुई तो हम तो नमस्कार करते रह जाएंगे।”²⁴

हमारे समाज में बुरी तरह से वासना फैल रही है। हर कोई नारी का शोषण करना चाहता है। यदि वह इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाती है तो समाज उसे ही बदचलन कहकर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। नारी के प्रति समाज के इसी अन्याय पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं- “जाने हमारे देश को क्या हो गया है फूलनदेवी जैसी नारियों ने नाइंसाफी के खिलाफ अपनी जान हथेली पर रखकर सालों साल जंग लड़ी है। एकाएक उनका हृदय परिवर्तन हो गया। उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया।

क्या उनका स्थान जेल में है? कुछ लीडर सही फरमाते हैं कि यह पिछड़ों के खिलाफ अगड़ों की साजिश है। क्या यही सामाजिक न्याय है? जब तक ऐसी महिलाओं को शासन उनका उचित हक नहीं दिलाएगा, मुल्क कैसे तरक्की करेगा? देश की नारी शक्ति का विकास कैसे होगा? क्या हम चाहते हैं कि औरत-आदमी की असमानता और दहेज जैसी कुरीतियाँ चालू रहे? अगर ऐसा नहीं है तो साहस की प्रतीक और संघर्ष में पत्नी फूलनदेवी को संसद में क्यों नहीं लाया जा सकता? उनकी मिसाल से महिलाएँ प्रेरणा लेंगी यह जरूरी नहीं है कि सबको यह सुलभ हो। कम से कम इतना तो होगा कि पतियों के अन्याय का मुकाबला करने के लिए पत्नियाँ बेलन और झाड़ू उठा लें।²⁵

इन पंक्तियों के माध्यम से व्यंग्यकार समाज में उपेक्षित, पिछड़ी नारी को जागृत करना चाहता है। वह उसे समाज में एक स्थान दिलाने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देने का कार्य कर रहा है।

इस प्रकार गोपाल चतुर्वेदी में नारी के साथ हो रहे अन्याय एवं अत्याचारों को समाज के सामने प्रस्तुत कर वर्षों से परम्पराओं और रूढ़ियों की बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी को जागृत कर समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए प्रेरित किया है।

3.4 सामाजिक रूढ़ियाँ

आजकल रीति-रिवाजों का निर्माण समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाता है। कालान्तर में इनका उद्देश्य समाप्त हो जाता है। परिस्थितियों के बदलने के साथ उसकी प्रतियोगिता भी नगण्य हो जाती है। जो रूढ़ियाँ कभी स्वस्थ परम्परा के रूप में समाज को नया जीवन देने वाली थी, वे ही बदली हुई परिस्थिति में हमारे विकास में बाधा डालने लगती हैं। तब उनसे मुक्त होकर चलने में ही हमारा विकास संभव है।

दहेज-प्रथा आधुनिक समाज का कलंक है। समाज के लिए एक अभिशाप है लेकिन जब इसका आरम्भ हुआ था तब माता-पिता अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्वेच्छा से नवदम्पती के जीवन को सुखमय बनाने के लिए अपनी कन्या को उसके गृहस्थ जीवन के लिए उपयोगी समाज को भेंट स्वरूप देते थे। धीरे-धीरे प्रतिष्ठा और शान के लिए कन्या के विवाह में धन और अन्य सामान देने का प्रचलन बढ़ा, फिर स्वेच्छा का स्थान अनिवार्यता ने ले लिया और फिर यह रूढ़ि बन गया। आज के इस दौर में इसने दहेज रूपी राक्षस के रूप में सबको अपना शिकार बना लिया है। आज बेटे का विवाह करते समय माता-पिता यह भूल जाते हैं कि उनकी भी बेटी है या फिर उन्हें ऐसा लगता है कि हमने अपनी बेटी को खूब दहेज देकर विदा किया है तो हमारे घर बहू भी अच्छा दहेज लेकर आये। पुत्र के विवाह के लिए उसके माता-पिता दहेज में मिलने वाले सामान की लम्बी फेहरिस्त बनाकर लड़की वालों को पकड़ा देते हैं। यदि लड़के वाला उतना सामान देने में असमर्थता जाहिर करता है तो वे वहाँ से या तो रिश्ता तोड़ लेते हैं या फिर विवाह के बाद बहू को इतनी यातनाएँ तथा प्रताड़नाएँ देते हैं कि वह या तो अपने पिता के घर से दहेज लाने के लिए मजबूर हो जाती है या फिर आत्महत्या करके अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेती है। आजकल के माता-पिता अपने पुत्र के प्रेम विवाह से बहुत डरते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि यदि उनका बेटा प्रेम विवाह कर लेगा तो उन्हें दहेज में नहीं मिलेगा और उनके संजोए सपने मिट्टी में मिल जाएंगे। इस पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी लिखते हैं- “वे कच्ची उम्र के नासमझ जवान हैं। कहीं पड़ोसन से प्यार करने लगे तो दहेज का क्या होगा? हमने तीनों की शादी का हिसाब लगा लिया है। पहले के विवाह में जमीन, दूसरे से उसमें निर्माण और तीसरे से सजावट का सामान आना है। एक भी भटका तो अपना तो बुढ़ापा गड़बड़ा जाएगा।”²⁶ इसीलिए आजकल के माता-पिता पुत्री से अधिक पुत्र के प्रेम विवाह करने से डरते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि यदि पुत्र प्रेम विवाह कर लेगा तो बेटा और पैसा दोनों उनके हाथ से जाएगा।

दहेज के कारण बारात कभी-कभी दुल्हन के बिना वापस लौट जाती है। इस प्रकार की घटनाएँ हमारे आस-पास में निरंतर घटती नज़र आती है। दहेज के लोभी लोग एक-एक पैसे का हिसाब जोड़कर रखते हैं इस पर गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-“मैंने उन्हें समझाया कि एकमुश्त पूँजी का अपना महत्त्व है। चार-पाँच लाख का दहेज मिलता तो अब तक के ब्याज का जोड़ निशा की तन्ख्वाह से अधिक होता है फिर घर-खर्च में बचत होगी वह अलग।”²⁷ इस प्रकार दहेज लोभी पहले से ही दहेज में मिलने वाली रकम और सामान का किस प्रकार का उपयोग करना है उसी की प्लानिंग किया करते हैं।

दहेज की समस्या ने आज एक विकराल रूप धारण कर लिया है। आज बेटी का पिता होना एक अभिशाप सा है। आज स्त्री को कानूनी रूप से समानता का अधिकार है किंतु अभी भी वह केवल कागज तक ही सिमट कर रह गया है व्यवहार में नहीं आ पाया है। अभी भी समाज में पुरुष का स्थान स्त्री से ऊँचा है। इसी असमानता पर परसाई जी तीखा व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि -“मैं बाईस से तेइस बरस की हो गई, तो उनके (पिता) हृदय पर एक मन वजन और बढ़ गया। वे जगह-जगह विवाह की बात चलाते, पर हर बार लड़के वालों की मांग उनके सामर्थ्य की सीमा लांघ जाती। वे सब लोग हाथ में तराजू लिए थे, जिसके तलवे पर बेटों को रखे थे। मुझे मेरी समस्त विद्या, बुद्धि और सौंदर्य के साथ दूसरे पलड़े पर रखकर देखते, तो हर मेरा ही पलड़ा हल्का पाते। तब पलड़े बराबर करने के लिए, मेरे साथ रुपयों का वजन रखने को कहते।”²⁸ समाज में दोहरे मानदंडों के चलते स्त्री अपने पिता पर बोझ बन जाती है। आज बाजार में लड़के बिक रहे हैं इस पर गोपाल जी भी व्यंग्य करते हुए कहते हैं-“हिया से डॉक्टरब्लेड प्रेशर नापते हैं। पिया दहेज में बिकते हैं।”²⁹ ... इस दोहरे मानदंड वाले समाज में शादी के लिए लड़का बिकता है उसकी बोली लगाई जाती है जो लड़का जितना पढ़ा-लिखा और जितनी अच्छी नौकरी में होता है उसे दहेज के रूप में उतना अधिक पैसा और सामान मिलता है। लड़के के माता-पिता का तर्क यह रहता है कि हमने अपने लड़के की पढ़ाई में इतना पैसा खर्च किया है तो हमें दहेज भी उस पढ़ाई का सारा खर्च चाहिए।

लेकिन आज के समय में क्या लड़की के माता-पिता उसे नहीं पढ़ाते या फिर लड़की की पढ़ाई में वैसे खर्च नहीं होते। आज की लड़कियाँ भी तो उच्च शिक्षा प्राप्त अच्छे स्थान और पद पर नौकरी कर रही हैं। फिर लड़की के माता-पिता लड़के वालों को धन या दहेज देकर शादी क्यों करें, लेकिन आज के समाज जैसे-जैसे लोग शिक्षित होते जा रहे हैं वैसे-वैसे उनका लालच भी बढ़ता जाता है।

भारतीय समाज में दहेज के अलावा बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि अनेक ऐसी पारम्परिक रूढ़ियाँ हैं जो आधुनिक युग में भी समाज में अपना पूर्ण वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं। जिन्हें जड़ से मिटाना सचमुच बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य है। विज्ञान ने आज अत्यधिक प्रगति कर ली है। जिसके कई दुष्परिणाम भी समाज में देखने को मिल रहे हैं। जैसे कि गर्भ में पल रहा शिशु लड़का है या लड़की इसका पता लगाना बहुत ही आसान हो गया है। लोग गर्भ में पल रहे शिशु की जांच कराकर कन्या भ्रूण की हत्या करा देना भी समाज में आज आम बात है। समाज की इस असंवेदनशीलता पर व्यंग्य करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-“यह जो हमारा सभ्य संवेदनशील समाज है कन्या भ्रूण की असमय हत्या तक पर ऊँगली नहीं उठाता है।”³⁰ अतः पहले कन्या के जन्म लेने पर उसे जिंदा ही जमीन में गाढ़ दिया जाता था या फिर गला दबाकर उसे मार दिया जाता था, किंतु आज तो माँ के गर्भ में ही उसे समाप्त कर दिया जाता है जो अत्यंत ही अमानवीय कार्य है।

इन रूढ़ियों के अतिरिक्त समाज में आज भी धार्मिक रूढ़ियाँ अपनी गहरी पैठ बनाए हुए हैं। भारतीय समाज व्यवस्था मूलतः धर्माश्रयी रही है धर्म ही, परम्परा से, सामाजिक जीवन के कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण एवं नियंत्रण करता रहा है। भारतीय चिंतन पर आरम्भ से ही धर्म का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। भारत में जितने भी आंदोलन हुए उनमें धर्म की उपस्थिति को आसानी से देखा जा सकता है। यहां तक की उन्नीसवीं सदी के सुधार एवं नवजागरण आंदोलन में भी धर्म के नाम पर केवल और केवल आडम्बर ही हो रहे हैं। धर्म की आड़ में लोग कैसे-कैसे काम कर रहे हैं। इसको लक्ष्य करते

हुए गोपाल जी कहते हैं-“बम बाबा अखण्ड जागरण के नाम से चंदे की किताबें और अखबारों में विज्ञापन छपे-नीम के पेड़ के नीचे बने पक्के टील पर पालथी मारे बैठे राम बाबा के चित्र के साथ। देश कितना भी गरीब क्यों न हो, धर्म के नाम पर चंदा देकर पापों का प्रायश्चित्त करना हमारी पुरानी परम्परा है। किसी भी बंटाने दस-बारह हजार अटक लेना रमेश और दीक्षित के बाएं हाथ का खेल था। मातादीन समारोह के आयोजन की थकान चंदे के पैसों की शराब पीकर मिटाते रहे। शहर के महत्वपूर्ण व्यक्तियों को अखण्ड जागरण का निमंत्रण भेजा गया, ज्ञाननाथ जी तो मुख्य अतिथि थे ही। विश्वविद्यालय के परिसर में मुफ्त पूड़ी-हलवा की खूब पब्लिसिटी हुई। पूरे शहर में रामबाबा के चित्रों के साथ अखण्ड जागरण के पोस्टर लगाए गए हैंडबिल बांटो गए। ऐसा लगा मानो एक छोटे-मोटे कुंभ का आयोजन हो रहा हो। एसप्रेसों से लेकर चाय-नमकीन के ठेले तक धर्म की गंगा में हाथ धोने टैगोर टाउन में जा पहुँचे।”³¹ इस प्रकार धर्म की आड़ में कुछ लोग भोली-भाली सामान्य जनता से ठगी करते रहते हैं।

आज मंदिर में भी लोग पाखण्ड करने से नहीं चूकते हैं मंदिर के पुजारी हो या संत महात्मा सभी का एक ही सपना मंदिर में चढ़ रहे चढ़ावे से ऐशो आराम की जिंदगी व्यतीत करना आज मंदिर को भी उद्योग का रूप लेते देखा जा सकता है। इस सच्चाई से पाठक रूबरू कराते हुए ‘नित्य ही आनन्द’ लेख में शरद जोशी का एक दृष्टांत उल्लेखनीय है-“हिंदू धर्म के प्रभाव का क्षितिज चाहे दिन प्रतिदिन सिमट रहा तो, हिंदू धर्म के महन्त, मठाधीश के खामियों के प्रभाव का क्षितिज भारतीय सीमा से कहीं आगे हैं किसी भी गुरु से पूछे तो वह कहेगा कि ईमानदार चले और समर्पित चेलियाँ भारत में आजकल मिलते कहाँ हैं? धर्म न हुआ उद्योग और टेक्नोलाजी हुई जो बिना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के पपन नहीं सकती। हमारे कुछ प्रतीक जैसे राम, ओम, हरेकृष्ण, रूद्राक्ष, शिवलिंग, तुलसीमाला, योग आदि की जैसी खपत संसार के समृद्ध बाजारों में हैं, वैसे आजकल भारत के धार्मिक नगरों में भी नहीं है।”³² धर्म के नाम पर सिर्फ पैसा और स्वार्थ ही बढ़ता जा रहा है। जनता आँखें खोलकर भी मूर्ख बन रही है और उसे इसका कोई अफसोस

भी नहीं है। धर्म ढाल बनाकर स्वार्थ साधने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हुए गोपाल जी भी कहते हैं- “पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार फावड़े लिए लोग अचानक प्रकट हो गए। खुदाई प्रारम्भ हो गई। भक्तों की भीड़ सकपकाई हुई यह कारवाई देख रही थी। मातादीन सिर झुकाए बाबा के शव के पास बैठे थे। माइक पर रमेश और दीक्षित मिलकर रामबाबा अमर रहे का नारा लगा रहे थे। यकायक एक खोदने वाले ने पत्थर का शिवलिंग निकाल कर सबको दिखाया।

दीक्षित माइक पर बोले, “चमत्कारी रामबाबा दूसरों ने जोड़ा, “अमर रहे।

शिव, शंभु, शंकर महेश्वर को धांधलेश्वर में बदल दिया गया था। कल धूमधाम से राम बाबा को संगम ले चलेंगे। भक्तों की भावना को अभी और ‘कैश’ किया जा सकता है।”³³ इस प्रकार आज के युग में मृत व्यक्ति को भी लोग धर्म के नाम पर कैश करा कर जनता की भावना से खिलवाड़ करते हैं। आज के इस वैज्ञानिक युग में लोग अब भी बीमारियों में डॉक्टरसे ज्यादा भगवान पर विश्वास करते हैं इसका एक उदाहरण गोपाल चतुर्वेदी इस प्रकार देते हैं-“डॉक्टर दूसरे दिन भी आए और दूसरे दिन भी हमारा पेट अपने असहयोग पर डटा रहा। संकट के समय सबको प्रभु याद आते हैं। हमारी पत्नी ने मंदिर जाकर हनुमान जी को एक सौ एक रुपये का प्रसाद चढ़ाने की रिश्त दी। हमने उन्हें समझाया कि इस मामले में इंसान भगवान के मुकाबले काफी तरक्की कर गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें मंदिर के ताखे रेट पता न हो और प्रभु की कृपा में चढ़ावे की कमी बाधा डाल दे। खाना-पीना बंद होने से अब तक हम सन्निपात जैसे तंद्रा में रहने लगे थे।”³⁴ इस प्रकार आज भी लोग धार्मिक अंधविश्वासों से उभर नहीं पाए हैं। घर में कोई बीमार हो, कोई मानसिक रूप से अस्वस्थ हो लोग आज डाक्टर के पास जाने के बजाए ढोंगी बाबा के पास पहुंच जाते हैं उन्हें लगता है कि ये बाबा चमत्कार के द्वारा उनकी सारी समस्याएं समाप्त कर देंगे। इसके चलते इन चमत्कारी ढोंगी बाबा के चक्कर में पड़कर लोग किसी बच्चे की बलि वगैरह देकर जघन्य अपराध तक कर डालते हैं। महिलाएं इन बाबा के दुष्कर्म का शिकार भी हो जाती है।

फिर भी धर्म के नाम पर हो रहे इन पाखण्डों और अंधविश्वासों में पड़कर लोग अपना ही नुकसान करते हैं। सबसे ज्यादा आश्चर्य चकित करने वाली बात तो यह है कि पहले के लोग कम पढ़े-लिखे होते थे अतः इन रूढ़ियों और पाखण्डों पर विश्वास वे बड़ी ही सरलता से कर लेते थे। किंतु आज के इस शिक्षित समाज में भी धार्मिक रूढ़ियां, पाखण्ड अंधविश्वास अपनी गहरी पैठ बनाए हुए है और समाज के हर वर्ग के लोग चाहे वो उच्च वर्ग के हो, मध्यम वर्ग के या निम्न वर्ग, शिक्षित हो या अशिक्षित, धनाढ्य हो अथवा निर्धन सभी इसके शिकार हैं।

हमारे समाज में अनेक रीतियां-कुरीतियां परम्परा से चली आ रही है जिन्होंने रूढ़ियों का रूप ले लिया है। गौपाल चतुर्वेदी का मानना है कि समय के साथ समाज के रीति रिवाजों, नियमों आदि में परिवर्तन निश्चित होना चाहिए। हमारा समाज आज भी रूढ़ियों को उसी प्रकार अपने से चिपकाए हुए हैं जिस प्रकार बंदर अपने मरे हुए बच्चे को सीने से चिपकाकर घूमते हैं। इन्होंने धार्मिक कर्मकाण्ड, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पाखण्ड आदि को एक प्रगतिशील समाज के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा मानते हुए पूरी ईमानदारी और प्रतिबद्धता के साथ इन पर आक्रामक प्रहार किया है। एक जिम्मेदार सामाजिक प्राणी के रूप में इन्होंने समाज की विकृत मान्यताओं रूढ़ियों को समाज से हटाकर फेंकने का पूर्ण प्रयास किया है।

3.5 शिक्षा संबंधी :

शिक्षा किसी भी सभ्य समाज की अनिवार्य शर्त है। सच तो यह है कि किसी भी समाज को सभ्य एवं प्रगतिशील बनाने में शिक्षा की उल्लेखनीय भूमिका रही है। हमारे देश में सामाजिक आर्थिक चेतना का सही विकास, समाज की एक बुनियादी आवश्यकता के रूप में शिक्षा के व्यापक प्रसार के बाद ही संभव हुआ। देश में धार्मिक एवं सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, कुरीतियों, एवं कुप्रथाओं के खिलाफ जो संघर्ष हुए, उसमें शिक्षा की शक्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। किंतु सामाजिक व्यवस्था को एक अंग होने के कारण समाज के लोगों में निहित दोषों के कारण शिक्षा व्यवस्था में भी अनेक विकृतियाँ एवं खामियाँ आ

जाना स्वाभाविक है जिसके फलस्वरूप मौजूदा शिक्षा व्यवस्था की अप्रासांगिक एवं अनुपादेयता परिलक्षित होने लगती है।

आजादी के बाद शिक्षा-संस्थानों की बाढ़ ने ही शिक्षा के स्तर को गिराया है। अब ये संस्थान विद्या के केन्द्र न रहकर दुकानों में तब्दील होते जा रहे हैं। शहर के हर गली कूचे में एक प्राइवेट शिक्षा संस्थान नजर आ जाता है। इन संस्थाओं का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना नहीं बल्कि सिर्फ़ पैसे कमाना ही है। शिक्षा संस्थानों की इस दुकानदारी पर सटीक प्रहार करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं- “मेरी पत्नी ने मन ही मन घर के असंतुलित बजट का हिसाब लगाया और साहस जुटाकर बच्चे के लिए सब त्यागने की मुद्रा में बोली, यही सौ दो सौ। सॉरी मिसेज चैबे। हम हजार से कम के डोनेशन एक्सेप्ट नहीं करते प्रिंसिपल महोदय ने निर्णय सुनाया।”³⁵ आजकल स्कूल में बच्चे को दाखिल करने के लिए भी डोनेशन के नाम पर मोटी रकम की आवश्यकता पड़ती है- “प्राचार्य जी जरूर दयालु रहे ओगे। कहने लगे, मिस्टर चैबे। मैं आपकी हेल्प करना चाहता हूँ। पर आपको सोचना चाहिए कि आप स्कूल के लिए क्या कर सकते हैं। तभी तो स्कूल आपके बेटे के लिए कुछ करेगा। आप कैश नहीं दे सकते मत दीजिए पर और क्या कर सकते हैं मैं समझा नहीं। मैंने मार्शली आवाज में उत्तर दिया।

देखिए हम लोग साँवेनियर निकालने वाले हैं। उसमें आप आठ फुल पेज के एड कलैक्ट कर दिलवा दीजिए। उन्होंने एक हाथ से घंटी बजाते हुए कहा।

.....अच्छा मिस्टर चैबे। गुड डे। एक हफ्ते तक विज्ञापन दिलवा दें, हमारे यहाँ एडमीशन टेस्ट पंद्रह दिन बाद है। उसके बाद चाहें तो आप कॉल-लेटर पर्सनली ले जाएँ। प्रिंसिपल साहब ने इंटरव्यू समाप्त किया।

हमलोग बाहर आए। प्यास से गला सूख रहा था। पेट में चूहे उछल-कूद कर रहे थे।

पत्नी बोली - बड़ी भूख लगी है।

मैंने अनायास पूछा, क्या इस प्रिंसिपल को भूख नहीं लगती?

इसे खाना खाने की जरूरत नहीं है। यह तो डोनेशन खाता है या विज्ञापन।”³⁶ एडमिशन के पीछे डोनेशन के इस खेल को बड़े ही रचनात्मक ढंग से जनता के सामने पेश किया है इतना ही नहीं इतनी डोनेशन देने के बाद, बच्चे की पढ़ाई पर पैसा पानी की तरह बहाने के बाद इन संस्थानों में जो शिक्षा दी जाती है उससे बच्चे क्या सीखते हैं इसका बड़ा ही रोचक उदाहरण गोपाल जी पेश करते हैं- “पब्लिक स्कूल में कबीर ने पढ़ाई के अलावा सब कुछ किया। उसने स्कूल की परीक्षाएं पास करने को, पेपर की चोरी से लेकर नकल तक में महारत हासिल की। उसे यह भी अहसास हुआ कि जैसे परीक्षा में प्रश्न पत्र और उसका उत्तर जानना जरूरी है वैसे ही खुशहाल जिंदगी के लिए ताकत और सत्ता।”³⁷ अर्थात् वे प्राइवेट पब्लिक स्कूल अभिभावकों से केवल पैसे चूसना जानते हैं। शिक्षा और संस्कार के नाम पर वे बच्चों को पूरी तरह से नकारा बना देते हैं। बच्चे भी अपने माता-पिता को नए जमाने की टेक्नालाजी कंप्यूटर, सैल फोन आदि की पढ़ाई में उपयोगिता बताते हुए उनसे ये सब खरीदने की मांग करते हैं। माता-पिता किसी प्रकार इन महंगे उपकरणों को बच्चों के लिए खरीदते हैं। वही बच्चे इनसे पढ़ने की बजाए कमरा बंद करके अपना मनोरंजन करते हैं। नंबर कम आने पर ये माता-पिता को कैसे दोषी बनाते हैं इसका उदाहरण इस प्रकार है- “इम्तिहान के नतीजे आ चुके हैं। एक कंप्यूटर वाले लल्लू और एक बिना कंप्यूटर वाले गप्पू ने मोहल्ले का नाम रोशन किया है। हमारे पप्पू मैरिट में कहीं जाती है। जैसा स्वाभाविक है, वह अपनी असफलता के लिए हमें दोष देते हैं। बिना सैल और साथियों की सलाह के वह परीक्षा की चुनौती कैसे झेलते। हम कैश खर्च करके भी उल्लू बन चुके हैं। इस युग में उल्लू बनना तो अपने जैसों की नियति है हमने उम्मीद अभी भी नहीं छोड़ी है। कौन कहे गुडमोर्निंग तथा उपभोक्ता संस्कृति में पारंगत होकर पप्पू कोई कमाल कर ही डाले।”³⁸

हमारे देश की यह बड़ी विडम्बना है कि यहाँ प्रत्येक कार्य में छल-कपट ढोंग का समावेश होता रहा है। संविधान में चैदह वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुक्ल शिक्षा का प्रावधान है; लेकिन आज तक यह व्यवस्था व्यवहारिक रूप नहीं प्राप्त कर सकी। बच्चे या बड़े और नामी स्कूल में एडमिशन कराना आजकल सोसायटी में माँ बाप की हैसियत को दर्शाता है और इन बड़े स्कूलों में दाखिले के लिए बच्चों के माता-पिता को डोनेशन तो देना ही पड़ता है। इस व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए शरद जोशी भी कहते हैं-“मौसम आ गया कि जब भारतीय माता-पिता अपने बच्चों को एडमिशन दिलाने के लिए स्कूल के दरवाजों पर नम्र गाय की मुद्रा में आ खड़े हुए। जितना नामी स्कूल, उतनी मुद्रा अधिका। बच्चे की जिंदगी तो बन जाएगी पर बाप की इज्जत का क्या होगा? यदि उनका बच्चा साधारण स्कूल का छात्र हुआ तो जमाना क्या कहेगा।”³⁹ अर्थात् कुल मिलाकर आज पढ़ाई का उतना महत्व नहीं रह गया है स्कूलों में जितना डोनेशन का।

आज कल पब्लिक स्कूलों की बाद ने अंग्रेजी भाषा को बहुत ही ऊँचे स्थान पर स्थापित कर दिया है। अंग्रेजी भाषा इस को सभ्य समाज के पढ़े लिखे लोगों की भाषा माना जाने लगा है इसलिए अपने बच्चे को लोग अंग्रेजी के ज्ञान के लिए पब्लिक स्कूलों में भेजना चाहते हैं और सरकारी स्कूलों से कन्नी काटते हैं-“यों प्रधान अपने कबीर की कीर्ति से अंदर ही अंदर प्रभावित थे। गाँव के पोखर में उनका पुत्र पड़ा रहा तो अधिक से अधिक प्रधान बन जाएगा, एक दिन। वहीं किसी पब्लिक स्कूल में गया तो क्या पता देश के सियासी क्षितिज पर सूरज बनकर उभरे। बड़के नेता सारे अंग्रेजों में गिटिर-पिटिर करते हैं। हिंदी वोट मांगने की ही क्यों, भिखारियों की ही भाषा है। अंग्रेजी सत्ता के जलवे की जुबान है। हिंदी जो गौ-मैया बहूपयोगी है। पर डरते लोग सत्ता में छाए अंग्रेजी सांड से ही है।”⁴⁰ हिंदी की आज अत्यधिक उपेक्षा हो रही है प्राइमरी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो गया है और आज के बच्चे तथा अभिभावक दोनों ही सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा के पीछे भाग रहे हैं। अंग्रेजी की इस अंधी दौड़ पर नरेन्द्र कोहली

पर भी व्यंग्य करते हुए कहते हैं-“वह और नाराज होकर बोला कि वह अपने बच्चे को लेकर एक पब्लिक स्कूल में गया था, पर उन लोगों ने उसके बच्चे को प्रवेश नहीं दिया, क्योंकि बच्चे के बाप को अंग्रेजी नहीं आती। अंत में वह बहुत नाराज होकर बोला आप ही बताएं अंग्रेजी देश को शिक्षित बनाने का माध्यम है या देश को मनपढ़ बनाए रखने का साधन? ...मैंने उससे पूछा, पढ़ाई जरूरी है कि व्यवस्था? इसलिए समाज की व्यवस्था के लिए अंग्रेजी का होना बहुत आवश्यक है। अंग्रेजी ही हमारे समाज की व्यवस्था को चला रही है।”⁴¹

स्कूलों की तरह ही विश्वविद्यालयों का भी यही हाल है। स्कूल में एडमिशन और अच्छे अंकों से पास होने के लिए बच्चे के माता-पिता के पास मोटी रकम होनी चाहिए और विश्वविद्यालय में प्रवेश के पश्चात सफलता प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी में चाटुकारिता का गुण होना चाहिए। विश्वविद्यालयों में प्रवेश के पश्चात् शोधार्थियों को गुरु जी की किस-किस प्रकार से सेवा करनी पड़ती है गोपाल जी इसे बखूबी बयान करते हैं-“वर्मा सर ने ज्ञान दिया कि शोध और सेवा से मकड़ी और जाले, तोप और गोले अथवा सब्जी और झोले जैसा जन्म-जन्मान्तर का साथ है। जो साहसी शोध की लादी अपने कंधे पर लादता है उसे सेवा का भार भी वहन करना पड़ता है। गुरु की चरण सेवा, उनके बच्चों की टाफी या रूचि के अनुसार मिठाई सेवा, गुरुआइन की आज्ञा पर छुट-पुट बाजार-सेवा आदि शोध से पी-एच.डी. को ऊँचाई पाने की अनिवार्य सीढ़ियाँ हैं। यों इसके बड़े फायदे हैं। मन में सेवा की भावना जगती हैं मुल्क और सोसाइटी की खिदमत करने कराने की रिहर्सल होता है। छड़ों का पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारियों में गृह प्रवेश हो जाता है। उजड़ों यानी शादीशुदा लोगों की नियमित प्रैक्टिस होती है। इसीलिए पीएच.डी. की डिग्री पाए व्यक्ति सफल कामकाजी और उपयोगी पति साबित होते हैं।”⁴² अतः हम देख सकते हैं कि शिक्षा का स्तर कितना गिर चुका है स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों तक विद्यार्थी का पढ़ाई लिखाई से कुछ मतलब हो न हो चापलूसी में वो माहिर होना चाहिए। इससे गुरु-शिष्य संबंध भी अच्छे होंगे, परीक्षा

में अच्छे अंक भी मिलेंगे और गुरु की ऐसी सेवा से आपके प्रति उनका प्रेम और सहानुभूति अन्य छात्रों की अपेक्षा आपके प्रति अधिक होगी। अध्यापक छात्र संबंध पर प्रकाश डालते हुए हरिशंकर परसाई भी कहते हैं-“विभाग में काम करने का उनका अपना एक तरीका था। वे शोध करवाते थे। शोध-छात्र लेने में वे एक सिद्धांत का पालन करते थे। एक गल्ला व्यापारी का लड़का लेते, एक कपड़ा व्यापारी का, एक हौजरी के दुकानदार का फिर कोई जगह बचती तो सब्जी के व्यापारी के लड़के को ले लेते। कभी धी और किराना व्यापारी के लड़के को भी चांस मिल जाता।”⁴³ अर्थात् शिक्षक शोध के लिए उसी छात्र का चुनाव करते हैं जिनसे उसे हर प्रकार से लाभ मिल सके।

छात्र अध्यापक के संबंधों पर अश्विनी कुमार दुबे भी चर्चा करते हैं-“कुमारों, यह विश्वविद्यालय तुम्हारी कर्म-स्थली है। यहाँ तुम्हें जीवन का व्यावहारिक ज्ञान मिलेगा। हाँ सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहाँ किसी न किसी प्राध्यापक से ट्यूशन पढ़ना जरूरी है। ट्यूशन पढ़ने के लिए प्राध्यापक का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। जिस प्राध्यापक से भविष्य में विभिन्न प्रकार के लाभ लिया जा सकें, वह ट्यूशन के लिए उपयुक्त होता है। ट्यूशन पढ़ाने वाले बहुसंख्यक प्राध्यापक अपनी जिम्मेदारी भली-भांति समझते हैं। वे अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने के अलावा पुस्तकालय से किताबें अपने नाम से दिलवाते हैं। परीक्षा के समय पेपर आउट कराने से लेकर, नकल करवाने और नंबर बढ़वाने तक, उनकी अनिवार्य सेवाएँ ट्यूशन के अंतर्गत मानी जाती हैं।”⁴⁴ इस प्रकार ट्यूशन के नाम पर अध्यापक विद्यार्थियों से पैसे ऐंठते हैं और अच्छी शिक्षा एवं संस्कार देने के बजाए उन्हें हिंसा करने के मार्ग पर चलने के लिए वातावरण प्रदान करते हैं। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी शिक्षा संस्थानों का अभिभावकों पर दबाव उच्च शिक्षा संस्थानों शोधार्थियों पर उनके सुपरवाइजर द्वारा अनुचित व्यवहार और उनके जीवन में अनुचित हस्तक्षेप आदि को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं शिक्षा के क्षेत्र में पुराने मानदण्डों के आधार पर नियुक्तियाँ करने की प्रथा समाप्त हो चुकी है। भर्ती के नए नियम आ

गए हैं। योग्यता ज्ञान आदि बातें अब पुराने हो चुकी है। अब तो जाति, पद प्रतिष्ठा और पैसा ही नियुक्तियों का आधार है और ये आधार छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े पद पर नियुक्ति का मापदण्ड है।

3.6 साहित्य संबंधी

प्रेमचंद लिखते हैं साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है- उसका दरजा इतना न गिराए। वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई हैं।⁴⁵

इस आधार पर कहा जा सकता है कि साहित्यकार सीधे-सीधे समाज के प्रति उत्तरदायी होता है। सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों विद्रूपताओं को सीधे-सीधे दिखा कर समाज को सही मार्ग में ले चलने का काम साहित्यकार का होता है। परंतु वर्तमान परिदृश्य में जब हम साहित्य की तरफ देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि साहित्य की गरिमा को कुछ ठेस तो अवश्य पहुँची है, जिस गंभीरता की अपेक्षा साहित्यकारों से की जाती है, कुछ साहित्यकार उस पैमाने पर खरे उतर पाने में असमर्थ दिखते हैं। वे सैद्धांतिक बातें तो खूब करते हैं लेकिन उन्हीं सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप से जीवन में उतारने की जब बात आती है। तब यही साहित्यकार धीरे से पीछे खिसक जाते हैं।

अब साहित्य में भी धन का विशेष महत्व हो गया है और इसके लिए सम्पादक को क्या-क्या करना पड़ता है इसका चित्रण करते हुए गोपाल जी कहते हैं- “सियासत तो सियासत, इधर साहित्य में भी तीसरी ताकत के आसार है कभी सम्पादक-लेखक के बीच पाठक भूमिका निभाते हैं। दूरदर्शन युग में पाठक का स्थान दर्शक ने ले लिया और संपादक के पास सम्पादन के अलावा विज्ञापन बटोरने, पात्रिका को कंधे पर लादकर बेचने की जिम्मेदारी भी आ गयी है।”⁴⁶

आजकल साहित्य में पुरस्कार की जो नोच-खसोट चल रही है उस पर व्यंग्य करते हुए ‘सरकार संस्कृति और पुरस्कार’ लेख में गोपाल जी कहते हैं-“सबने अपने खेमे तंबू गाड़ लिए। कुछ प्रगतिशील हो गए। बाकी प्रक्रियावादी। किसको फुरसत थी कि लिखे-पढ़े। बाकी कोर-कसर पुरस्कार की मार-धाड़ ने पूरी कर दी सरकार लाइसेंस-परमिट बाँटती है और साहित्यिक मठाधीश अपनी जय-जयकार पर पुरस्कार। अपनों का लिखा साहित्य दूसरों का कूड़ा करकट।”⁴⁷

आजकल साहित्य के मुख्य उद्देश्य क्या है इस पर चर्चा करते हुए अश्विनी कुमार ‘आजकल लेख छपना एक पत्रिका का’ में लिखते हैं-“जिस प्रकार राजनीति में कई दल और दलदल है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी हर शहर में कई झंडे और पंडे हैं। साहित्य की पगडंडी से गुजरकर किसी नेता के चमचादल में शामिल हो जाना, साहित्य की ध्वजा थामकर किसी संस्थान, पीठ या विश्वविद्यालय में उच्च पद पर आसीन हो जाना, आकाशवाणी में जुगाड़ जमाना मंडी हाउस के चक्कर लगाना, विदेश जाना, भैया जी का भाषण लिखकर कृतार्थ होना, ये सब साहित्य के सार्थक उद्देश्य हैं।”⁴⁸ इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी, पहुंच, पकड़ और पैसे ने अपने पांव जमाने शुरू कर दिए हैं। आज साहित्य किस स्तर का है यह नहीं देखा जाता बल्कि साहित्यकार के स्तर से उसके साहित्य को आंका जाता है।

आज कुछ साहित्यकार किस प्रकार कवि सम्मेलनों से चंदा उगाही करते हैं और उनकी कथनी करनी में कितना अंतर है उसका चित्रण करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-“धाकड़ कवि-आयोजक क्यों यह स्वर्ण अवसर गँवाए? उन्होंने शहर के हर रईस से चंदा उगाहा है कि कवि सम्मेलन के आयोजन में उनका व्यक्तिगत योगदान फोटो के रूप में हर बैनर-पोस्टर में नजर आएगा। चरित्र-निर्माण कविता से ही मुमकिन है। श्रोता इससे शुद्ध चिंतन और नैतिक जीवन का सबक सीखेंगे। भले ही कवि के निजी चरित्र पर कविता का कुछ असर न पड़े। उन्होंने कवियों से निवेदन किया कि वह युवा कल्याण की पावन मुहिम में उनका हाथ बटाएँ। उनके आने-जाने का व्यय और रहने-खाने की व्यवस्था है, बस पारिश्रमिक बख्श दें।

उनका नुक्कड़ कवि-सम्मेलन हर मुहल्ले में सफल रहा है। आयोजक प्रसन्न है। उन्होंने भी चरित्र-निर्माण के चक्कर में लाख के ऊपर कमाया है। अब उन्हें किसी और नृशंस हादसे का इंतजार है। कमाई का मौका किसे बुरा लगता है?’’⁴⁹

साहित्य के क्षेत्र में आज पुरस्कार पाने के लिए उच्च स्तरीय रचनाओं नहीं बल्कि पहुंच की आवश्यकता होती है। इस व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं-“शहर के सारे लेखकों से वह परिचित थे। इधर अपनी तीन-चार लोकप्रिय कविताओं के बल पर उनका सारा ध्यान किसी लेक्चरर-आलोचक को पकड़ और पटाकर अपनी कविता के बारे में ‘चर्चा’ करवाने का था। एक हास्य के काव्य-संकलन में उनका चित्रमय परिचय और कविताएं प्रकाशित हो चुकी थीं। सुरेश जी की इसी प्रकार कृपा बनी रही तो कोई न कोई पुरस्कार तो वह हथिया ही लेंगे। वह जानते हैं कि पुरस्कार पुस्तक या रचना पर नहीं, पहुंच पर निर्भर है। वह अपनी पहुंच लगातार बढ़ा रहे थे।’’⁵⁰

इस प्रकार जिस तरह से राजनीति और प्रशासन में भ्रष्टाचार है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी खूब भ्रष्टाचार है। इस क्षेत्र में भी धन की महिमा निराली जिसके पास पैसा और पहुंच है वह योग्यता न होते हुए भी कवि बन जाता है और पुरस्कार प्राप्त कर लेता है जबकि जो योग्य है वह जीवनपर्यन्त भटकता रहता है। उसे कोई पहचानता तक नहीं है। पैसे के अभाव में अच्छा लेखक होते हुए भी वह अपने साहित्य को प्रकाशित नहीं करवा पाता जबकि पैसे के बल पर ओछे साहित्य से बाजार पटा पड़ा है। अतः प्रतिष्ठित राजनेताओं की तरह ख्यातिलब्ध चर्चित साहित्यकारों को भी गोपाल जी ने उनकी प्रवृत्तियों व साहित्यिक गुण एवं धर्म के कारण व्यंग्य का विषय बनाया है।

3.7 कानून व्यवस्था

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में भारत में कानून व्यवस्था की पोल खुलती नजर आती है। किस प्रकार कानून की रक्षा करने वाले कितने बड़े भक्षक इसका उदाहरण हम इस प्रकार देख सकते हैं-“सब अपने-अपने झोले ऐसी लगन और गंभीरता से भर रहे थे जैसे झोले भरना ही उनकी ड्यूटी है। उसके मन में संशय होने लगा। बड़े-बड़े चोर भी चोरी बेखौफ होकर नहीं करते हैं, किसी खटके की आवाज से भी भाग लेते हैं पर इंस्पेक्टर तो पूरी तरह से निर्भीक होकर बिना भय-शंका के अपनी झोली भर रहे थे।”⁵¹ अर्थात् आजकल चोर डकैतों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है क्योंकि लूटने का कार्य तो अब पुलिसवाले ही कर लेते हैं।

नरेन्द्र कोहली ने भी पुलिसवालों की रोबदारी पर व्यंग्य करते हुए कहा है- हर दूसरे दिन छानबीन के बहाने थाने से कोई आ जाता है, कभी सिपाही, कभी दोफातिया सिपाही, कभी तीनफातिया सिपाही, कभी ए.एस.आई कभी सब इंस्पेक्टर कोई न कोई आया ही रहता है तो इसमें क्या बुराई है? मैंने कहा, इसका अर्थ है कि पूरा का पूरा थाना तुम्हारे घर हुई चोरी में रुचि ले रहा है और वे शीघ्र ही चोर को पकड़ लेंगे। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए।

प्रसन्न ही हूँ वह रूआंसी हंसी हंसा कि थाने वालों के लिए मेरा घर सड़क के किनारे का ढाबा हो गया। जिसको चाय की तलब उठती है या कुछ खाने का मन होता है, वह मेरे घर की धंटी दबा देता है। आता है बैठता है, पानी पीता है, चाय पीता है साथ में कुछ चना चबेना भी टूंगता है। मिठाई हो तो अधिक प्रसन्न होता है और फिर यह तसल्ली देकर कि चोर शीघ्र पकड़ा जाएगा, चला जाता है।”⁵² अर्थात् कानून व्यवस्था के अंतर्गत पुलिसवालों का कार्य चोरों को चोरी के अवसर प्रदान करना है और शरीफ आदमी को हर तरह से परेशान करना है।

इस प्रकार गोपाल चतुर्वेदी ने पुलिस की जनसेवा, दादा का अहिंसा-उसूल, तरह-तरह के ओलंपिक, हम वकील क्यों न हुए, मध्यमार्ग का तंत्र, शहर और सावन, कुछ प्रतिक्रियाएँ, आदि व्यंग्य लेखों के माध्यम से लचर कानून व्यवस्था पर तीखे एवं धारदार व्यंग्य किए हैं।

गोपाल चतुर्वेदी के सामाजिक व्यंग्यों के अंतर्गत उपर्युक्त विषय के अतिरिक्त स्वास्थ्य संबंधी फैशन, संस्कृति धार्मिक आदि व्यंग्य भी आते हैं जहाँ इन्होंने समाज को दर्पण दिखाने का कार्य किया है। स्वास्थ्य संबंधी व्यंग्य के अंतर्गत वे आम जन को यह दिखाना चाहते हैं कि आज डॉक्टरभी मरीजों को लूटता है यह वाकई दुःखद है-“उसने अपने घर में ही डिस्पेंसरी खोल ली है। दोनों हाथ से लूट रहा है पैसे। अनुभव है। शफा है हाथ में। मरीजों की भीड़ लगी रहती है। उसने देखा है वह जीवन भर अस्पताल में खटा है। जबकि प्राइवेट प्रैक्टिस करने वाले डॉक्टरहर एक दो साल बाद छुट्टियाँ मनाने, कभी देश, कभी यूरोप में घूमे हैं। इस बार उसने तै किया है। वह भी लंदन, रोम, पेरिस की सैर करेगा। सिर्फ-बीजा- की प्रतीक्षा है। बस यों ही ग्रीष्म ऋतु पधारती रहे और मरीज। उसे क्या कमी है।”⁵³

आज समाज में ऐसी विसंगति फैल चुकी है। गरीब आदमी रोटी के लिए तरस रहा है और यह रोटी की भूख उसे गलत काम करने के लिए मजबूर कर रही है-“सही भी है। चार पायों में बकरा है, दो पायों में जन। वह निर्धन है, असहाय है, दूसरों के उत्सव का सघन है। बकरा खाने की मेज पर सजता है। जन उत्पादन में खटता है। एक दिन का आकस्मिक रोजगार उसका त्योहार है। नहीं तो भूख उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें सिर्फ एक डर है। कहीं वह गन के धंधे में न लग ले। भूख में बड़ी ताकत है। वह सब कुछ करा सकती है। सीधे-सादे जन को गन भी थमा सकती है।”⁵⁴ वाकई समकालीन समाज में बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या है। रोजगार पाने के लिए व्यक्ति कुछ भी करने के लिए तैयार है। चाहे उसे किसी भी स्तर तक क्यों न जाने पड़े।

समकालीन भारतीय समाज पाश्चात्य के प्रभाव से पूरी तरह प्रभावित हो चुका है। भारतीय समाज का खान-पान, पहनावा, रहन-सहन सभी पाश्चात्य संस्कृति की देन। इसके कारण हम अपनी संस्कृति अपने संस्कार भूलते जा रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति के भारतीय समाज पर बढ़ते इस प्रभाव पर व्यंग्य की चोट करते हुए गोपाल जी कहते हैं -“हम उनको बताते हैं कि यह सब वैश्विक संस्कृति का हिस्सा है। इससे हम क्यों खौफ खाएं। बाबूजी कहते हैं। कि उन्हें इस सबसे न डर है, न परहेज। पर जैसे एक पीढ़ी बाहर गई तो वापस नहीं आती है। धीरे-धीरे रहन-सहन, भाषा-पोशाक, तौर-तरीकों में पराई हो जाती है। वह वैसे ही बिना प्रयोग पहचान और कार्यक्रमों के संगीत, नृत्य और कला भी अपने खुद के घर में अजनबी हो जाएंगे।”⁵⁵ पाश्चात्य का प्रभाव हमारी संस्कृति पर इतना अधिक पड़ चुका है कि हम अपनी कला अपने लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोकगाथाओं आदि को लगभग भूल गए हैं। बाजार का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि हम एक साथ रहकर भी एक दूसरे से अनजान रहते हैं। समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोगों में संवादहीनता की स्थिति पैदा होने लगी है। गोपाल चतुर्वेदी अपने व्यंग्य की चोट के माध्यम से भारतीय समाज से मिटती जा रही हमारी संस्कृति को हमसे अवगत कराना चाहते हैं क्योंकि पाश्चात्य का प्रभाव, बाजारवाद और वैश्वीकरण इन सबकी चाह हमें और हमारी आने वाली पीढ़ी को भारतीय परंपरा, सभ्यता, संस्कृति आदि से अजनबी करती जा रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गोपाल चतुर्वेदी की पैनी दृष्टि ने समाज के कोने-काने में व्याप्त विसंगतियों को देखा और अपने व्यंग्य की गहरी चोट के माध्यम से सामाजिक चेतना लाने का प्रयास किया।

संदर्भ सूची :

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृष्ठ 1
2. (सं.) नन्द किशोर आचार्य, प्रेमचंद का चिंतन, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर पालिटेक्निक कॉलेज के पास बीकानेर, 334003, संस्करण 2015, पृष्ठ 152, 153
3. वागीश सारस्वत, व्यंग्यर्षि शरद जोशी, शिल्पायन प्रकाशन, 10295, लेन न. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली, 110032, संस्करण 2013, पृष्ठ 155
4. सं. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त शब्द सागर, नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, सं.संवत् 2065 वि., पृष्ठ 111
5. टाम बाटमोर, अभिजन और समाज, मैकमिलन प्रकाशन, 2/10, अंसारी रोड दरियागंज, दिल्ली-110002, संस्करण, 1977, पृष्ठ 4
6. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, प्रकाशक ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 151
7. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 156
8. सं. कमला प्रसाद, धनंजय वर्मा तथा अन्य, परसाई रचनावली खण्ड एक, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1985, पृष्ठ 26
9. गोपाल चतुर्वेदी, जुगाड़पुर के जुगाड़ू, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661, दखनीराय स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-110002, संस्करण 2005, पृष्ठ 43
10. गोपाल चतुर्वेदी फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, 2011,

पृष्ठ 101

11. अनु. रमेश सिन्हा, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषण पत्र, शिल्पी प्रकाशन जी-82 विजय चौक लक्ष्मी नगर दिल्ली, सं.2000, पृष्ठ सं.22
12. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ 22
13. वही, पृष्ठ 23
14. वही, पृष्ठ 77
15. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2002, पृष्ठ 9-10
16. वही, पृष्ठ 10
17. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 64
18. गोपाल चतुर्वेदी, कुर्सीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 54
19. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस-पास, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032, संस्करण 2012, पृष्ठ 19

20. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली,
110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 99
21. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के निकट, पृष्ठ संख्या-22
22. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 1997,
पृष्ठ 96
23. रवीन्द्र नाथ त्यागी, भित्तिचित्र राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 1999, पृष्ठ सं.154
24. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, ज्ञान गंगा, 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 1997,
पृष्ठ 96
25. वही, पृष्ठ 87
26. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत में कालू, प्रभात प्रकाशन, संस्करण 1993, पृष्ठ 106
27. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली,
11006, संस्करण 2002, पृष्ठ 13
28. कमला प्रसाद, धनंजय वर्मा तथा अन्य, परसाई रचनावली खण्ड दो, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि.
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1985, पृष्ठ 94
29. गोपाल चतुर्वेदी, धांधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली-
110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 68

30. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006,
संस्करण 2010, पृष्ठ 28
31. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड़, नयी दिल्ली, 110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 63
32. शरद जोशी, प्रतिदिन (एक)
33. गोपाल चतुर्वेदी धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड़, नयी दिल्ली, 110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 302-303
34. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोसे बैठ के, ज्ञान गंगा 205 सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ 113
35. गोपाल चतुर्वेदी फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011, पृष्ठ 48
36. वही, पृष्ठ 48-49
37. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण, 2010, पृष्ठ 183
38. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, ज्ञान गंगा 205-सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 132

39. शरद जोशी प्रतिदिन (दो), किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2005, पृष्ठ 376
40. गोपाल चतुर्वेदी कुरसीपुर का कबीर, ज्ञान गंगा 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, संस्करण 2010, पृष्ठ 181
41. व्यंग्य यात्रा सं. प्रेम जनेमय, लेख- नरेन्द्र कोहली, एक और लाल तिकोन अक्टूबर-दिसम्बर, 2009, अंक 21, पृष्ठ 26
42. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 89
43. सं. कमला प्रसाद, धनंजय वर्मा तथा अन्य, परसाई रचनावली खण्ड एक, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1985
44. अश्विनी कुमार दुबे, शहर बंद है, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली, 110003, संस्करण 2005, पृष्ठ 149
45. सं. नन्दकिशोर आचार्य, प्रेमचन्द का चिंतन, वाग्देवी प्रकाशन, विनायक शिखर, पालिटेक्निकल कॉलेजके पास, बीकानेर, संस्करण 2006, पृष्ठ 163
46. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, संस्करण 2008, पृष्ठ 98
47. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, डायमंड पाकेट बुक्स, प्रा.लि. एक्स-30, ओखला,

इंडस्ट्रियल एरिया फेज-11, नई दिल्ली-110020, संस्करण 2010, पृष्ठ 116-117

48. अश्विनी कुमार दुबे, शहर बंद है, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशन एरिया, लोदी रोड, नई

दिल्ली-10003, संस्करण 2005, पृष्ठ 3

49. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सत्साहित्य प्रकाशन, 204 बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-

110006, संस्करण 2014, पृष्ठ 142

50. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग ग्रंथ अकादमी 1659, पुराना दरियागंज दिल्ली, सं.2011,

पृष्ठ सं.114

51. वही. पृष्ठ सं. 12

52. नरेन्द्र कोहली, सबसे बड़ा सत्य, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं.109

53. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज के आस-पास, पृष्ठ सं.73-74

54. गोपाल चतुर्वेदी, घांघलेश्वर, पृष्ठ सं.94

55. गोपाल चतुर्वेदी, कुर्सीपुर का कबीर, पृष्ठ सं,55

चतुर्थ अध्याय

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में राजनीतिक एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार का उद्घाटन

4.1 राजनीतिक व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन

गोपाल चतुर्वेदी वर्तमान समय में व्यंग्य लेखन के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं जिन्होंने व्यंग्य विधा को आगे बढ़ाने में बहुमूल्य योगदान दिया है। इनका साहित्य सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को देख पाने की इनकी तीव्र दृष्टि का परिचायक है। इन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं को अलग-अलग ढंग से देखा, क्योंकि शिक्षा पूरी करने के बाद ये प्रशासनिक अधिकारी के रूप में अलग-अलग विभागों में कार्यरत रहे हैं। अतः इन्होंने शासन और प्रशासन में हो रहे क्रिया कलापों को सूक्ष्म दृष्टि से देखा और परखा है तथा बड़ी ही बेबाकी के साथ इन क्षेत्रों में हो रहे भ्रष्टाचार को उद्घाटित कर जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है। गोपाल जी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए वर्षों तक स्तम्भ लेखन करते रहे। आज एक व्यंग्यकार के रूप में गोपाल चतुर्वेदी अपनी प्रतिभा के साथ मजबूती से खड़े नज़र आते हैं। हिंदी जगत् में इनके व्यंग्य लेखन के विश्लेषण के पूर्व तत्कालीन व्यंग्य का परिवेश एवं उसकी प्रेरक परिस्थितियों की चर्चा उल्लेखनीय हो जाती है।

स्वतंत्रता पूर्व काल में ब्रिटिश राज होने के कारण अनेक प्रकार के बंधन, अन्याय, अत्याचार, व्याभिचार तथा आतंक हुआ करते थे, लेकिन स्वातन्त्र्योत्तर काल में राजनीतिक परिस्थिति बदलने से समाज के सभी अंगों में परिवर्तन होने की अपेक्षा की गयी थी। जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं को सम्मान देने के ख्याल से शासन व्यवस्था के लिए लोकतांत्रिक प्रणाली को चुना गया। भारत के संविधान में यह घोषित किया गया कि भारत एक लोकतंत्र होगा जिसमें जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए

शासन होगा। जनता द्वारा सरकार चुनी जाएगी। इसी भावना से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता के मूलभूत अधिकार प्रदान करने के साथ व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता और अखण्डता को सुनिश्चित करने वाली बंधुता को बढ़ाने के क्रम में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की संकल्पना को लेकर संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित एवं आत्मर्पित किया गया।

इस तरह संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप देश में लोकतंत्र की स्थापना के साथ जनता को शासन चलाने की अंतिम शक्ति दे दी गयी लेकिन जनता इसके लिए मानसिक एवं बौद्धिक रूप से तैयार न थी और न ही उसे अपनी शक्तियों से अवगत कराने के ठोस प्रयास ही किए गये। भोली एवं राजनीतिक समझ से शून्य जनता ऐसे लोगों को चुनकर संसद में भेजती रही जिन्हें जनता से कोई वास्तविक सरोकार नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता एवं जन प्रतिनिधियों के बीच की खाई निरंतर बढ़ती गयी। जनता के प्रतिनिधि जनता के हितों की रखवाली करने के स्थान पर अपने स्वार्थ की राजनीति करने में उलझ गए। संसद भवनों में निरर्थक और बेमानी मुद्दों पर बहस होने लगी और जनहित के मामलों को सप्रयोजन दबाया जाने लगा। इस रूप में अधिकांश जनता का अशिक्षित एवं राजनीतिक चेतना ने शून्य होना ही भारतीय लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं रहा। भारतीय राजनीति पैसे की गुलाम होकर रह गयी।

भारतीय संसदीय प्रणाली में अनेक कानून बनाए गए लेकिन किसी भी अभिकल्पना का निर्वाह उचित रूप से न होने के कारण व्यंग्य विधा के लिए वातावरण निर्मित हो गया। भारतीय संविधान द्वारा बनाए गए कानून खोखले साबित हो गए। दिन दहाड़े डाका डालना, अत्याचार करना, खून करना आम बात हो गयी। न्यायालय की नीति के अनुसार सौ में से निनानवे गुनाहगार मुक्त हुए, तो भी कोई बात नहीं लेकिन एक भी निरपराध व्यक्ति को सजा न हो। इस वस्तुस्थिति का अनुचित लाभ लेते हुए अनेक दोषी लोग बेदाग, बिना सजा समाज में स्वतंत्र विचरने एवं समाज के ताज बन कर रहने लगे और ऐसे दोषी

लोगों को न समाज, न पुलिस और न ही न्यायालय का डर रहा। ऐसे लोगों का पर्दाफाश एवं सुधार हेतु साहित्य में व्यंग्य विधा के लिए प्रेरक परिस्थिति प्राप्त हुई।

सामाजिक व्यवस्था को बेहतर बनाने हेतु संसद एवं विधान भवन में निर्मित कानून परिस्थिति से सुसंगत न होने के कारण जीवन के अनेक क्षेत्रों में विसंगति आ गयी। जहाँ-जहाँ विसंगति आई वहाँ-वहाँ व्यंग्य विधा के लिए प्रेरक, प्रोत्साहक परिवेश प्राप्त हुआ। इस रूप में समाज का मानदंड हो गया कि जिस व्यक्ति के पास जितना पैसा और सत्ता है, वह उतना ही सम्मानित एवं महान समझा जाता है। इस विरूपता ने भावुक मन के कारण व्यंग्य का स्वर प्रखर किया। परिणामस्वरूप व्यंग्य विधा की व्यापक धारणा तैयार हुई। समाज सुधार के नाम पर स्वार्थी तथा भ्रष्ट नेतागण, फैशनपरस्ती, घूस, चमचागिरी, जाली उद्योग आदि विभिन्न आडम्ब्रों के कारण व्यंग्य विधा को फलने-फूलने का मौका प्राप्त हुआ।

इस रूप में व्यंग्य साहित्य का संबंध अधिकांशतः समसामयिक समस्याओं में रहता है। सामाजिक समस्या जितनी अधिक व्यापक तथा वास्तविक होती है, व्यंग्य साहित्य उतना ही महत्वपूर्ण और सार्थक होता है। व्यंग्यकार समस्याओं के कारणों की तह में जाकर उन कारणों पर कई बार निर्दयता अथवा क्रूरता के साथ प्रहार भी करता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में समस्याओं की विविधता के कारण ही व्यंग्य विधा हेतु सशक्त वातावरण तैयार हुआ। उस समय स्वतंत्रता पूर्व के संजोये हुए सभी सपने टूटने लगे। जीवन के स्वस्थ तथा ध्वस्थ मूल्यों के कारण देश की राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, व्यक्तिगत आदि स्तरों पर गिरावट आई। भ्रष्टाचार से इस समय तक कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा। अशिक्षित नेता संस्थाओं के कर्णधार बनकर शिक्षित लोगों को मूर्ख बनाने लगे। प्रशासन में अफसरों की घूसखोरी, मंत्रियों की बेईमानी, व्यापारियों की काला बाजारी आदि खुलेआम होने लगी। ऐसी ही सामाजिक विद्रूपता ने गोपाल चतुर्वेदी जैसे संवेदनशील चिंतक को व्यंग्य विधा में उतरने का मार्ग प्रशस्त किया।

4.1 राजनीतिक व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भारतीय मनःस्थिति को प्रभावित करने वाला प्रमुख क्षेत्र राजनीतिक क्षेत्र ही रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही जनजीवन के साथ राजनीति का गहरा संबंध रहा है। 1947 ई० में मिली स्वतंत्रता एक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना रही है। अंग्रेजी शासन ने इस देश में नौकरशाही को पूरी तरह पल्लवित और पुष्पित किया है। किंतु गाँधीवाद एवं साम्यवाद की सम्मिलित छाया में गतिशील भारतीय राजनीति को साम्प्रदायिकता के सर्प ने डस लिया, परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ। इसी सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति में ही भारतीय लोकतंत्र की स्थापना हुई।

भारत में प्रजातंत्रात्मक शासन होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को विचार विमर्श करने की स्वतंत्रता है। वह अपने विचारों एवं भावों को भाषा, साहित्य, चित्रकला आदि के माध्यम से व्यक्त कर सकता है। विचार स्वातंत्र्य होने के कारण यहाँ व्यंग्य की जड़े मजबूत हुईं तथा व्यंग्य के क्षेत्र का भी विस्तार हुआ। वर्तमान समय में रामराज्य की कल्पना साकार न होने तथा राजनेताओं की कुर्सी की चाहत के कारण व्यंग्य का सबसे अधिक प्रभावी क्षेत्र राजनेता तथा राजनीति ही रहा है। एक व्यंग्यकार इनके क्रियाकलापों, कथनी-करनी में पाई जाने वाली असंगतियों का पर्दाफाश करता है और व्यंग्य के माध्यम से जनता में आक्रोश भी पैदा करता है। राजनीतिक परिवेश निरंतर कलुषित होता जा रहा है। शासक जनता को उपदेश देता है-सादगी और संयम बनाए रखने का और स्वयं अवसर मिलते ही धन जुटाने में लग जाता है।

कन्हैया लाल गोपाल चतुर्वेदी के विषय में कहते हैं –“गोपाल अपना विषय और अपना शिकार चुनने में कोई चांस नहीं चूकते। संसद हो या सरकार, सेवाधाम हो या शौचालय, गोपाल किसी भी मुद्दे को उठावे, उसमें कोताही की गुंजाइश नहीं रखते उनका कोई भी मुद्दा राष्ट्रीय मुद्दे से कम नहीं होता।.....गोपाल ऐसे छोटे-छोटे मुहल्ले मुद्दों से अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को निबटा देते हैं। असल में वे राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय से राष्ट्रीय के बीच छलांगें लगाते हैं।”¹ गोपाल जी चूंकि

प्रशासनिक अधिकारी थे अतः वे राजनीतिक एवं प्रशासनिक गतिविधियों से भली भांति परिचित हैं। राजनीति से संबंधित चुनाव, प्रजातंत्र, नेताओं, संसद आदि में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश गोपाल जी ने अपने व्यंग्यों में बड़ी ही बेबाकी से किया है।

4.1.1 प्रजातंत्र

भारत में प्रजातंत्रीय व्यवस्था की स्थापना से जनता में यह विश्वास तथा आस्था जागी कि देश के लिए जनता महत्वपूर्ण है। देश के नियमन की शक्ति जनता के हाथ में रहेगी। दूसरी ओर जनता ने 'रामराज' की अभिकल्पना कर रखी थी। इस प्रकार प्रथम आम चुनाव के समय भारत में एक आदर्श वातावरण बना हुआ था। जनता ने नेहरू जी के नेतृत्व वाली कांग्रेस पार्टी को विजय दिलाई थी। नेताओं के नैतिक मूल्य और आदर्शवादिता के कारण प्रथम पंचवर्षीय योजना सफल रही थी। लेकिन द्वितीय पंचवर्षीय योजना और दूसरे आम चुनाव के समय से प्रजातंत्रीय व्यवस्था और भारतीय राजनीति में विघटन प्रारम्भ हुआ।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पनपा प्रजातंत्र पुराने राजतंत्र से भिन्न नहीं है। निरंकुश राजाओं की भांति प्रजातंत्र में नेता के रूप में नया सामंत पैदा हुआ है। चुनाव, मतदान आदि केवल दिखावा मात्र है। आम आदमी के लिए प्रजातंत्र में कोई स्थान नहीं बचा है। सियासत में नेता जनता के साथ खिलवाड़ करता है, उसे बड़े-बड़े सपने दिखाता है। जनतंत्र में सरकार जनता को रोटी, कपड़ा से लेकर मकान और रोजगार मुहैया कराने की बात करता है, लेकिन सरकार के ये बड़े-बड़े वादे जनता को दिखाए हुए सपने धरे के धरे रह जाते हैं। इसी व्यवस्था पर गोपाल जी व्यंग्य करते हुए कहते हैं, “यही आलम भारतीय जनता का है। वह दाने-दाने, भूख, अभाव, भ्रष्टाचार, कुपोषण, सामाजिक कुरीतियों, सरकार की बेरुखी वगैरह से तंग है। उसे कोई दाल-रोटी के सपने दिखाए, बेरोजगारी हटाने का वादा करे तो उसका ऐसों के लुभावने चस्कों में आना लाजमी है। इतना ही नहीं, चस्कों के चाणक्य उनके सिर के ऊपर छत, तन पर कपड़े, सुशासन वगैरह-वगैरह का वादा करते हैं, ठीक उसी शैली में जैसे कैंसर के रोगी कोई जादू टोने से

स्वस्थ होने का।² शरद जोशी ने भी 'सरकार का जादू' नामक व्यंग्य में प्रजातंत्र में जनता की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। इस लेख में सरकार को काटने वाले यंत्र के रूप में चित्रित किया गया है जो गरीब जनता से बड़े-बड़े वादे करता है और उसी का पेट काटता है। "यह हमारे देश का यंत्र है साहबान और यह गरीब का पेट काटता है। पिछले तैंतीस सालों से यह प्रोग्राम आपके सामने पेश करते आ रहे हैं। हमें अपना आशीर्वाद दीजिए, अपना गुड विशेज़ दीजिए साहबान।"³ इस प्रकार के लोकतंत्र में जनता का कुछ भी नहीं होता है। जनता को जनतंत्र के नाम पर भ्रमाया जाता है। सियासत के नेता लोकतंत्र में आकर केवल अपना ही भला करते हैं। वे अपनी तथा अपनों की जेब भरते हैं। "परिवारवादी क्षेत्रीय नेताओं ने परिवार को प्रजातंत्र का पर्याय बना दिया है उनका वश चले तो दूर-पास का संबंधी विधान या लोकसभा - राज्यसभा की शोभा बढ़ाए।"⁴ सत्ता में आने के लिए ये नेता अपने से उच्च पद पर बैठे हुए लोगों की नोटों के माध्यम से जो पूजा करते हैं उन नोटों की वसूली वे सत्ता में आने के बाद आम जनता से ही करते हैं।

प्रजातंत्र की स्थापना होने पर भी व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जिसके हाथ में पैसा और पावर है उसे लिए प्रजातंत्र सब कुछ है। गोपाल चतुर्वेदी की दृष्टि में जनतंत्र खंभातंत्र है- "खंभातंत्र का सारा कारोबार, विज्ञापन, भाषण, आश्वासन, विशुद्ध व्यापार के तौर तरीके से होता है। खंभातंत्र की राजनीति मूल रूप से माल बेचने की राजनीति है। वहाँ नेता की क्लीन छवि का अर्थ नेता के निजी उसूलों और आचरण से नहीं बल्कि उसके द्वारा इस्तेमाल साबुन से है। जो नेता सिर्फ विदेशी साबुन से नहाता है, वही साफ और गोरा होता है। खंभातंत्र का 'सत्य' समय और स्थान के साथ बदलता है। बड़े खंभों का यकीन रहता है कि वे सबको समान रूप से और सर्वदा बेवकूफ बना सकते हैं।.....प्रजातंत्र का आना खंभातंत्र को कैसे कबूल हो! खंभों ने धन-यंत्र और तंत्र-मंत्र कायम रखने की कोशिश की-

इस प्रजातंत्र के पेड़ों में कोई खंभा है नहीं?

क्यों नहीं सरकार! अपने खंभे कहाँ नहीं है?’’⁵

गोपाल जी जहाँ जनतंत्र को खंभातंत्र कहते हैं वही अमृतराय का इसे भोंपूतंत्र के नाम से पुकारते हैं-“भोंपू की बड़ी महिमा है। उसके बिना कोई कुछ कर ही नहीं सकता। कम से कम लोकतंत्र में और भारत जिस अर्थ में संसार का सबसे विशाल लोकतंत्र है, एक पगला अभी उस रोज चैक में बार-बार उसे भूल से भोंपूतंत्र कह रहा था।”⁶ अर्थात् प्रजातंत्र केवल नाम के लिए प्रजातंत्र और लोकतंत्र है। प्रजातंत्र में प्रजा को लूटना ही नेताओं का कार्य है। जनहित के नाम पर बड़ी-बड़ी योजनाएं लाना और उसको पूरा करने के लिए ऊपर से नीचे कमीशन चोरी ही प्रजातंत्र है। जनता के नाम पर लायी गई योजनाओं से जनता का भला नहीं होता है बल्कि इन योजनाओं के नाम पर उसे उल्लू बनाकर सरकार और उसके अधिकारी केवल अपना उल्लू ही सीधा करते हैं। ‘‘सत्ताधारी राजनीतिज्ञ हमेशा जनहित को उधार खाए बैठे रहते हैं। वह जानते हैं कि ऐसी किसी भी स्कीम में करोड़ों का बजट है। पंद्रह-बीस परसेंट का कट के अफसर के माध्यम से मिलना ही मिलना है। इससे बेहतर क्या होगा कि वोटर का भी भला हो और अपना भी। इसीलिए तो विद्वान बताते हैं कि जनतंत्र नेता के लिए नेता के द्वारा उल्लू बनाने का तंत्र है। दल कोई भी हो। इस मंत्र को अपनाने में सब एकमत हैं।’’⁷ इस प्रकार नेता जनता के भले के नाम पर केवल अपना ही भला करते हैं। इस प्रजातंत्र में प्रजा के लिए प्रजा द्वारा कुछ भी नहीं किया जाता है बल्कि प्रजातंत्र में नेताओं द्वारा अपने आदमियों के लिए सब कुछ किया जाता है। रवींद्र त्यागी के अनुसार भी प्रजातंत्र में अब प्रजा का कोई महत्त्व नहीं रह गया है-“जहाँ तक सरकार का प्रश्न है स्थिति यह है कि होने को तो प्रजातंत्र है पर वास्तविकता यह है कि तंत्र जो है वह प्रजा से अब भी शक्तिशाली है। प्रजा की हम इज्जत करते हैं और इसी कारण प्रजा शब्द का प्रयोग तंत्र से पहले किया गया है। पर सच्चाई में स्थिति वही है जो सीता राम शब्द में सीता की और राधा कृष्ण में राधा की।’’⁸ इस प्रकार अब केवल नाम का ही प्रजातंत्र है। इसमें प्रजा को योजनाओं आदि के नाम पर विकास का केवल वादा भर ही किया जाता है। इन

योजनाओं का लाभ आम आदमी की जगह बड़े-बड़े उद्योगपति और ठेकेदार कमाते हैं विकास के नाम पर उन्हीं का विकास होता है। आम जनता के हाथ कुछ भी नहीं लगता है। अतः वाकई में प्रजातंत्र सरकार के द्वारा प्रजा को बेवकूफ बनाने का तंत्र है जिसमें लोक लुभावने वादे तो हर रोज किये जाते हैं किंतु उसे पूरा कभी नहीं किया जाता है।

4.1.2 चुनाव

चुनाव को लोकतंत्र की वास्तविक प्राणशक्ति माना जाता है। इसके बगैर लोकतांत्रिक व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संसदीय लोकतंत्र में शासन व्यवस्था चलाने के लिए आम जनता बहुमत द्वारा अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है। ये चुने हुए प्रतिनिधि आगे बहुमत द्वारा अपने नेता का चुनाव करते हैं जो अपने इच्छित सहयोगियों के साथ सरकार बनाता है और शासन की बागडोर संभालता है। अर्थात् चुनाव ही वह महत्वपूर्ण प्रणाली है जिसके द्वारा लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना होती है। लोकतांत्रिक प्रणाली की विसंगतियों की ही भांति चुनाव व्यवस्था की विदूरपता को भी गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्यास्त्र का लक्ष्य बनाया है।

जनतंत्रात्मक शासन होने के कारण प्रति पाँच वर्ष उपरांत सरकार बनाने हेतु आम चुनाव कराए जाते हैं। यह अवधि विशेष परिस्थिति में जैसे आपातकाल में सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित होने के कारण न्यूनाधिक हो सकती है। हमारे देश में चुनावी भ्रष्टाचार अत्यधिक बढ़ गया है। चतुर्वेदी जी ने वोट और नोट के संबंध पर तीखा प्रहार करते हुए कहा है, “प्रजातंत्र है तो चुनाव है। चुनाव है तो वोट है। वोट है तो नोट है। बिना नोट के प्रचार कैसे होगा? फिर प्रचार है तो कार्यक्रम क्यों न हो फरेबी खोट का तथा सबके कल्याण का। आजादी के बाद हाथी घटे हैं, गजदंतीवादों का चलन बढ़ा है। आज का हर नेता एक सफेद हाथी है। वह जनता के सामने सिर्फ अपने दिखावे के दांत दिखाता है। चुनाव के संकट के समय यह नुमाइश और बढ़ जाती है।”⁹ नगरपालिका जैसे लघुस्तर के लिए भी जब वोट खरीदे जाते हैं या

शराब आदि पिघलाकर वोटरों को अपने पक्ष में किया जाता है तो फिर अन्य बड़े चुनावों का तो कहना ही क्या। आज का मतदाता भी इतना चतुर हो गया है कि माल किसी का खाता है और वोट किसी को देता है। मतदाताओं के मत केवल शराब और नोट से ही नहीं खरीदे जाते हैं वरन् अन्य प्रलोभनों से भी खरीदे जाते हैं। जैसे चुनाव के दौरान, गरीबों को रजाई, कम्बल, साड़ी आदि बांटकर जहाँ प्रत्याशी इन गरीब वोटरों को लुभाने का प्रयास करते हैं वही पढ़े लिखे बेरोजगार नवयुवकों को नौकरी आदि का लालच देकर वोट के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया जाता है। इस युक्ति पर गोपाल जी का व्यंग्य देखिये- “जाने आपको पता है कि नहीं। हमने पिछले पाँच साल में आप लोगों के भले के लिए पाँच हजार फाइलें खुलवाई हैं। वह सब सरकार में इस दफ्तर से उस दफ्तर में चक्कर काट रही है। इन्हीं कागज़ों में पचास हजार नई नौकरियों, रेल की नई लाइन, खेल का स्टेडियम और एक दर्जन कारखानों के प्रस्ताव हैं। हमें इस बार आपका आशीर्वाद प्राप्त हुआ तो हमारे और आपके ये सब सपने साकार होंगे।”¹⁰ इस प्रकार जैसे ही चुनाव नजदीक आते हैं, नेता जनता को लुभाना आरम्भ कर देते हैं।

चुनाव वर्ष के दौरान पार्टी प्रत्याशी और कार्यकर्ताओं का चयन किस प्रकार करती है उसे गोपाल जी इस प्रकार बताते हैं-

“तो आप कार्यकर्ता बनेंगे।

जी हाँ!

इस काम का कोई अनुभव?

पिछले चुनाव के दौरान तो स्कूल में था पर अब तक तीन बसें जलायी

हैं और दस-पंद्रह के काँच तोड़े हैं। स्कूल के दिनों में ‘मिस’ की मेज

पर छिपकली और मेढ़क डाला था। प्रिंसिपल ने स्कूल से ही निकाल दिया

था।’

आपका सैद्धांतिक दृष्टिकोण क्या है?

मैं आपका सवाल नहीं समझा।’

‘मेरा मतलब है कि आपकी कोई पॉलिटिकल आडियोलॉजी है?’

मैं किसी दूसरे पर यकीन नहीं करता। मुझे सिर्फ अपने बाहुबल पर

भरोसा है।’

प्रत्याशी चुन लिया गया दूसरे की गुहार लगती है।’¹¹

इस प्रकार पार्टी द्वारा बाहुबली और गुण्डे जैसे लोगों का चयन पार्टी कार्यकर्ता या प्रत्याशी के रूप में किया जाता है। ये बाहुबली चुनाव के समय जनता को डरा धमकाकर अपने पक्ष में वोट डालने पर मजबूर करते हैं और जहाँ पर उन्हें तनिक भी यह संदेह होता है कि जनता इनके पक्ष में वोट नहीं डालेगी वहाँ पर ये चुनाव बूथ को ही अपने कब्जे में करके चुनाव अधिकारियों को डरा धमका कर सारे वोट अपने लोगों द्वारा अपने पक्ष में डलवाकर चुनाव जीत जाते हैं। ये ही बाहुबली विधायक, मंत्री आदि बनकर विकास करने की जगह देश में सांप्रदायिकता, गुण्डागर्दी, भ्रष्टाचार आदि को बढ़ावा देते हैं।

चुनाव के समय नेता सर्वत्र भ्रमण करते हैं। मतदाताओं के आगे हाथ भी जोड़ते हैं। उन्हें खिला पिला कर खुश करते हैं ताकि वोट उन्हें मिल सके वे ऐसे-ऐसे स्थानों पर जाकर भी अपनी सभाओं का प्रचार करते हैं या पैदल दौरा करते हैं जहाँ सामान्यतः दो मिनट खड़ा रहना भी उन्हें स्वीकार न होता। प्रत्याशी चुनाव जीत जाने पर संसद और विधानसभाओं में जाकर भ्रष्टाचार फैलाते हैं। चाहे कैसी और

किसी भी प्रकार की दुर्घटना हो नेता सिर्फ मुसकुराता रहता है। जीतने के बाद उसे किसी से कुछ भी लेना देना नहीं-“वैसे हमें मुस्कुराते, खिलखिलाते, ठहाका लगाते नेता पसंद आते हैं। बाढ़-सूखा, गरमी, दुर्घटना, हारी-बिमारी, दंगा-फसाद कुछ भी हो, नेता हँसता दिखता है। दिखना भी चाहिए। इतनी भीषण दुर्घटना हो गई और कुल सौ डेढ़ सौ ही मरे इतने प्रयास से दो संप्रदायों में लड़ाई कराई और बस दस-बारह की ही मौत आई। यह कोई कम संतोष का मसला है। क्या रोना परिवार वालों का काम है। दंगा हो या प्राकृतिक आपदा सबका शिकार सबसे औसत और हाशिए पर खड़ा इन्सान ही होता है।”¹²

राजनीतिक दल चुनाव जीतने के लिए किस प्रकार झूठ, फरेब का सहारा लेकर जनता को अपने झूठ से बर्गलाते हैं इसका चित्रण परसाई जी ने भी कुछ इस प्रकार किया है-“उन्होंने (जनता पार्टी वालों ने) कहा टूटी-टाँग ने राष्ट्रीय जीवन में आपको महत्वपूर्ण बना दिया है। हमें अनुमति दीजिए कि हम प्रचार कर दें कि कांग्रेसियों ने आपकी टाँग तोड़ दी है। इससे सारे देश में कांग्रेस के विरुद्ध वातावरण बनेगा। दूसरी ओर कांग्रेस वाले भी यही कहते हैं-आप हमें इतनी छूट दे दें कि हम प्रचार कर सकें कि जनता पार्टी के लोगों ने आपकी टाँग तोड़ दी है। इससे जनता पार्टी के खिलाफ हो जाएगी।”¹³ यह विडम्बना ही है कि महत्वपूर्ण चुनावों, जिनके परिणामों पर समूचे राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता हो, का फैसला किसी की टूटी टाँग द्वारा उत्पन्न सहानुभूति के आधार पर होता है।

‘बचुआ की शिक्षा’ में व्यंग्य किया गया है कि चुनाव में प्रत्याशी नारा तो देश उद्धार का लगाते हैं लेकिन भरते हैं अपना घर, उद्धार करते हैं अपने घर का। गुण्डों को पालते हैं, जो दिन रात प्रचार का कार्य करते हैं। चुनाव को हर हाल में वे जीतना चाहते हैं चाहे जितने भी पैसे उन्हें खर्च करने पड़े। क्योंकि उन्हें पता होता है कि चुनाव जीतने के पश्चात् वे चुनाव पर खर्च की गई अपनी सारी रकम वसूल कर लेंगे वो भी ब्याज सहित। वोट लेने के लिए प्रत्याशी क्या-क्या नारे लगाते हैं, इसका चित्र चतुर्वेदी जी के शब्दों में-

“बाबू जी की एक ही इच्छा

करे तरक्की बच्चा-बच्चा।

महिलाओं को लुभाने के लिए उनके कार्यकर्ताओं की पुकार थी-

बाबू का बस यह अरमान

महिलाओं का हो सम्मान।¹⁴

इस प्रकार चुनाव के दौरान ये देश के विकास, देश के बच्चों का विकास, देश की महिलाओं के सम्मान के अनेक नारे लगाते हैं किंतु चुनाव जीतने व सरकार बनने के बाद यह सब कुछ भूल जाते हैं।

चुनाव के दौरान वोट पाने के लिए नेता हर वो काम करता है जिसे उसने न कभी किया है न करना चाहेगा और ऐसे कार्यों को करते हुए अंदर से दुखी होने पर भी वो सदैव मुस्कुराते रहते हैं। चुनाव के समय नेता गंदी मलिन बस्तियों से गुजरते हुए भी मुस्कुराते रहते हैं। इस देश में कोई सुखद बात हो या दुखद नेता के मुख पर सदैव ही मुस्कान के भाव दिखते हैं। नेताओं की इसी दिखावटी मुस्कान के संदर्भ में गोपाल जी कुछ इस प्रकार व्यंग्य करते हैं। जब कोई पत्रकार नेता जी की मुस्कान का राज पूछते हैं तब नेताजी उत्तर देते हुए कहते हैं- "यही तो फर्क है जनता और नेता में। नेता रास्ता दिखाता है, प्रेरणा देता है। हमें आपकी दुर्दशा पर मुस्कराना पड़ता है। आपकी गरीबी पर हँसना पड़ता है। सच मानिए, जब जन-संपर्क के दौरान हम कीचड़ की बदबू भरी बस्तियों में जाते हैं तो हमें रोना आने लगता है कि कहाँ फँसे! पर क्या करें! मज़बूरी में मुस्कुराते हैं, जिससे आप निराश न हों, दिल छोटा न करें शुरू में अटपटा लगता था, अब तो आदत पड़ गई है। बिना प्रयास के मुँह की नसें मुस्कान की मुद्रा में अपने आप खिंची रहती हैं।"¹⁵ इस प्रकार जनता के वोट तथा अपने लाभ के लिए चुनाव के दौरान नेता किसी भी हद तक जा सकते हैं।

चुनाव के समय मतदाताओं को अनेक प्रलोभन दिए जाते हैं। अनेक प्रकार की वस्तुएँ जनता को लुभाने के लिए बाँटी जाती हैं। घूँघट, बुर्के आदि की आड़ में पैसे लेकर लोग मरी हुई स्त्रियों का भी वोट

डाल देते हैं। गोपाल चतुर्वेदी ने इसके लिए संभावना व्यक्त की, कि चुनावों में भ्रष्टाचार, नकली वोट देना आदि को रोकने के लिए मतदाताओं को फोटोयुक्त परिचय पत्र दिए जाएं, ताकि वे फोटो से चेहरा मिलने पर ही वोट के अधिकारी माने जाएं। लेकिन मतदाता भी कम चतुर नहीं है। चार परिचय पत्रों पर अलग-अलग मुखौटे लगाकर फोटो खिंचवाकर लगाई जाए तो शक करने की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। इस प्रकार सरकार भ्रष्टाचार रोकने के लिए चाहे जो भी कदम उठाए किंतु नेता अपने मतदाताओं को भ्रष्टाचार का रास्ता सुझा ही देते हैं। सरकार डाल-डाल तो उम्मीदवार पात-पात चलता है।

वर्तमान समय में तथा स्वातंत्र्योत्तर काल के मतदाताओं में भी बहुत अंतर आया है। उस समय जनता सीधी एवं सरल होती थी जो उम्मीदवारों की मीठी व चिकनी चुपड़ी बातों में फँसकर देश के विकास के नाम पर उन्हें वोट देकर उन्हें संसद या विधान सभा तक बड़ी ही आसानी से पहुँचा देती थी। किन्तु आज की जनता बहुत चतुर हो गई है वह प्रत्याशी की बातों में सरलता से नहीं आती है। वह इस तथ्य को भली भाँति जानती है कि चुनाव के दौरान किए गए वायदे बरसाती मेढ़क की भाँति है जो चुनावी मानसून में ही देखने और सुनने को मिलते हैं। इसलिए आज का मतदाता चुनाव में वोट देने से पहले सुविधा चाहता है।

लोकतंत्र में वोट देने का क्या महत्त्व है, पचास प्रतिशत से अधिक मतदाता आज भी यह नहीं जानता है उसके सामने तो केवल नोट का ही महत्त्व है। उम्मीदवार की योग्यता-अयोग्यता से ऐसे मतदाताओं का कोई सरोकार नहीं होता। नोट लेकर नकली वोट देने वाले मरे हुए व्यक्तियों का नाम बताकर वोट डाल आते हैं। चुनाव के प्रचार कार्य में विभिन्न उम्मीदवार अपनी-अपनी आम सभाओं का आयोजन करते हैं। विरोधी दल वाले ऐसे अवसर की तलाश में रहते हैं कि सभा में किसी प्रकार से भी विघ्न डाला जाए। ऐसी ही एक घटना का चित्रण गोपाल चतुर्वेदी जी ने 'चुनाव के बाद' व्यंग्य लेख में इस प्रकार किया है, "पार्टी का नेता जिस समय भाषण दे रहा था एक पत्थर उसे आकर लगा। उसके बाद

कार्यकर्ता उसको अस्पताल ले जाने की तैयारी कर रहे थे, लेकिन नेता फोटो खिंचवाने के लिए कहता है, जिससे विरोधी पार्टियों को बदनाम किया जा सके।¹⁶

चुनाव के समय प्रत्याशी का भगवान वोटर होता है। वोट के आधार पर उसके भाग्य का निर्णय होता है। चतुर्वेदी जी ने इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है-“अरे महाराज! इस बार दर्शन नहीं दोगे? हमने तो आते ही आपके दरवाजे मत्था टेका था। उन्होंने पंडित जी को निमंत्रित किया। इसके बाद बचुआ के साथ अपनी गाड़ी पंडित जी को लेने भेजी। पंडित जी पधारे तो नेता जी ने श्रद्धापूर्वक उनके चरण छुए, मिठाई मँगाई और निवेदन किया, “भगवान जाटव और यादव सम्मेलन हमारे समर्थन में हो चुके हैं, एक ब्राह्मण सम्मेलन भी करवा दीजिए। भोजन पानी की व्यवस्था हमारी और अध्यक्षता आपकी। काफी हिसाब-किताब के बाद पाँच लाख में पंडित जी से सौदा पटा।”¹⁷ इस प्रकार चुनाव के दौरान मतदाता प्रत्याशी के लिए भगवान के समान होता है। प्रत्याशी के लिए एक चोर का वोट भी उतना ही महत्व रखता है जितना एक साधु का। इसलिए चुनाव के समय नेता गरीब, अमीर, छोटे-बड़े, साधु-संत, चोर उचक्के सभी में बिना कोई भेद किए सबको एक समान दृष्टि से देखता है, और सभी को अपना भगवान मानता है। जिस प्रकार मनोकामना पूरी होने के लिए भगवान को भेंट चढ़ाई जाती है, उसी प्रकार चुनाव में सफलता पाने के लिए मतदाता रूपी भगवान् को उम्मीदवार भेंट चढ़ाकर प्रसन्न करने का प्रयास करता है।

जिस प्रकार दीपावली के समय हम माँ लक्ष्मी से अपने परिवार की सुख समृद्धि की कामना करते हुए उनकी पूजा, अर्चना एवं आरती गान करते हैं। उसी प्रकार नेता चुनाव रूपी दीपावली में किस प्रकार पूजन करते हैं इसे इस प्रकार गोपाल जी ने दर्शाया है-“उन्होंने हमें आगे समझाया कि देश के किस वर्ग को दीवाली से क्या-क्या अपेक्षा है। मसलन मुल्क के नेता आजकल साष्टांग दंडवत कर एक ही मनौती मानते हैं और काका स्टाइल में प्रार्थना करते हैं-

लक्ष्मी मैया! वर दे

धन-दौलत कुछ नहीं चाहिए

खाली झोली देवी, अपनी

बस वोटों से भर दे।’’¹⁸

नेता ऐसे भले ही भगवान की पूजा न करते हों पर चुनाव के समय उन्हें सारे देवी-देवता याद आ जाते हैं। भगवान् की तो बात ही छोड़िये ये नेता चुनाव के दौरान जनता को भी भगवान मानकर उनकी जय-जयकार करते हैं।

जनता से वोट पाने के लिए प्रत्याशी कुछ भी कर सकता है। ऐसे नेताओं की गोपाल जी ने अनेक नामों से उपमा की है जैसे, “आम आदमी के लिए चुनावों का शैक्षणिक पहलू भी है। साँप, बिच्छू, राक्षस, अजगर, बगुला आदि के गहन प्रचार और विज्ञापन से जनता को वन्य जीवन की जरूरी जानकारी मिलती है। उसका यह भी ज्ञानवर्धन होता है कि राजनीति में इस किस्म के इन्सान ही कामयाब होते हैं।’’¹⁹ अर्थात् यह नेता ऐसे होते हैं कि इनके साथ कितना ही अच्छा क्यों न कर लो लेकिन मौका मिलने पर यह आपसे धोखा करने में नहीं चूकते हैं।

गाँवों की राजनीति शहरी राजनीति से कुछ बातों में भिन्न है। वहाँ शिक्षा का अधिक प्रसार न होने के कारण वोटर को डरा धमका कर भी वोट प्राप्त किए जाते हैं। दादा बनकर मौज की जा सकती है। आम-चुनाव प्रक्रिया इतनी दोषपूर्ण हो गई है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरित्रार्थ हो रही है। मत-पेटियाँ गायब कर देना और सील तोड़ कर फर्जी वोट डालना आम बात हो गई है।

इस प्रकार राजनीतिक भ्रष्टाचार में चुनाव एक विशेष कड़ी है। चुनावों में जीत हासिल करने के लिए पार्टियाँ एवं प्रत्याशी कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं। एक ओर ये जनता को नोट, साड़ी, कम्बल आदि बाँटकर वोट लेने का प्रयास करते हैं तो वहीं दूसरी ओर इन सबसे काम न चलने पर ये आम जनता को डराने धमकाने से भी नहीं चूकते हैं। चुनाव जीतने के लिए ये जहाँ मंदिरों में पूजा-पाठ व दान करते हैं वहीं शराबियों को शराब पिलाकर वोट माँगते हैं। जिस प्रकार 'प्यार' और 'वार' में सब कुछ जायज़ होता है उसी प्रकार चुनाव में वोट पाने के लिए किसी भी कार्य को करना जायज़ है। इस सिद्धांत का पालन करते हुए ये राजनीतिक पार्टियाँ और प्रत्याशी चुनाव में उतरते हैं और उसे जीतते हैं। चुनाव में हो रहे इसी प्रकार के भ्रष्टाचार पर गोपाल चतुर्वेदी के साहित्य में पर्याप्त व्यंग्य लेख देखने को मिलते हैं जो जनता को सजग करने का भी प्रयास करते हैं।

4.1.3 नेता

गोपाल चतुर्वेदी का रचना संसार वर्तमान भारत के राजनीतिक जीवन का आलोचनात्मक दस्तावेज़ है। भारत के राजनीतिक यथार्थ का अध्ययन करते हुए उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक दलों और लोकतांत्रिक प्रणाली की विसंगतियों को उजागर किया है। लोकतंत्र जनता की लोकप्रिय सरकार की शासन व्यवस्था है जिसका चुनाव स्वयं जनता द्वारा बहुमत के आधार पर किया जाता है। जनता में लोकप्रिय बने रहना राजनेताओं की आवश्यकता भी है और उनके राजनीतिक अस्तित्व की अनिवार्य शर्त भी क्योंकि उनकी सफलता का यही एक पैमाना भी है और तरीका भी। लेकिन हमारे देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि हमारे राजनेता जनता में दिखावा तो देश को समाजवाद के पथ पर ले जाने का करते हैं लेकिन जनता में समाजवाद की वैज्ञानिक सोच को उन्होंने भी पनपने नहीं दिया। आज आधुनिक साहित्य जहाँ 'नायक' पूर्णतया तिरोहित हो गया है वहाँ राजनीतिक नेता सबसे बड़े 'खलनायक' के रूप

में उभरा है। किंतु पहले ऐसा नहीं था। पहले नेता नाम आदमी की तरह ही बड़े साधारण तरीके से रहता था।

वर्तमान संदर्भ में नेता का चरित्र ही व्यंग्य का आलम्बन बन गया है। चतुर्वेदी जी ने नेता के चरित्र की पड़ताल बड़ी ही सूक्ष्मता से की है। सत्ता विपक्ष के नेता-मंत्री सभी उनके व्यंग्य बाणों के शिकार बने हैं। नेता के शरीर के भूगोल के नाप के साथ उसका बुद्धि परीक्षण, सामान्य ज्ञान, उसके क्रियाकलाप और छल-छद्म सभी पर व्यंग्यकार की पैनी नजर रही है। जनता की समस्याएं जैसे-जैसे बढ़ी वैसे-वैसे नेता की स्थूल काया का विस्तार भी होता रहा है। किंतु स्वतंत्रता के समय ऐसी स्थिति नहीं थी-“पहले नेता और जनता में खास फर्क नहीं था। भूले-भटके लोग नेता को भी सामान्य जनता का सदस्य मान लेते थे। टोपी जनता भी लगाती थी और नेता भी। दोनों खादी पहनते थे। गरीबी में गुजारा करते।”²⁰ अतः पहले के राजनेताओं को कुर्सी की, पैसे की चाह नहीं होती थी। वे तो केवल और केवल जनता और देश का हित चाहते थे।

आज वर्तमान युग में नेता का चेहरा बदल गया है वह अंदर से कुछ और बाहर से कुछ और ही होते हैं। सियासत में आना आसान कार्य नहीं है। सभी व्यक्ति नेता नहीं बन सकते। इस भारतीय समाज में आई.एस., पायलट, शिक्षक, बैंक आदि की नौकरी लिए विभिन्न कोचिंग है किंतु नेता बनाने के लिए न ही कोई संस्थान है और न ही कोई कोचिंग। इसके लिए तो व्यक्ति में अपना हुनर होना चाहिए। एक अच्छे नेता के गुण बताते हुए गोपाल जी कहते हैं-“चुनाव वह जीतते हैं जो अन्य जातियों को आश्वासन, प्रलोभन, दारु, धन की जुगाड़ से जोड़ सकें। आदर्शों और उसूलों की पीक करें, जरदे-किवाम का मजा खुद लें।”²¹

नेता जनता के भले के नाम पर अपना भला करते हैं जनतंत्र में कोई भी सरकार आ जाए नेता घुमा फिरा के सिर्फ जनता को लूटने और उन्हें बेवकूफ बनाने का काम करते हैं। इस प्रकार के भ्रष्टाचार के लिए

सभी दल के नेता एकमत होते हैं। नेताओं के इस भ्रष्टाचार पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए गोपाल जी कहते हैं-
''जनहित के नाम पर भ्रष्टाचार का हर काम सबसे बड़े सियासी राजा के इशारे पर ही होता है। उसूल बड़ा सीधा है-

बस जनहित के नाम पर

है फंडो की छूट

सत्ता का जो सगा

लूट सके तो लूट''²²

इस प्रकार जनता के भले के लिए वह कुछ भी भाषणबाजी करे किंतु उसका कर्म केवल जनता को लूटना होता है।

सियासत में नेता के लिए कानों का विशेष महत्त्व है। इनके माध्यम से वह बड़े-बड़े कार्य सिद्ध कर सकता है- "सत्ताधारी नेता व अधिकारी के लिए कानों की खास आवश्यकता है। उन्हें अपनी खुशामद ध्यान से सुननी है। जनता की शिकायत पर एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकालनी है। चमचों की सिफारिशों पर ध्यान देना है। नेताओं के अतीत के आधार पर यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि वर्तमान और भविष्य में लगातार उनका अपने कानों के बगैर गुजारा नहीं है, न हो सकता है। दिन में बार-बार जयजयकार के नारे और अपनी प्रशस्ति सुने बिना कौन नेता जिंदा रह सकता है। नेता का एक गुण अपने विरुद्ध लग रहे आरोपों के जवाब में कानों में तेल डाल लेना भी है।"²³ इस प्रकार नेता समय और अवसर के अनुसार कार्य करते हैं जिस समय उनकी प्रशंसा होती है वहाँ वे बड़ी ही शान के साथ दिखाई देते हैं और जहाँ उनकी शिकायत होती है उन पर आरोप लगते हैं वहाँ से वह या तो धीरे से निकल लेते हैं या फिर उन्हें अनसुनी कर जाते हैं।

आजकल के नेता पशु-पक्षियों से भी गए गुजरे हैं। पशु पक्षी अपने मालिक के वफ़ादार होते हैं किंतु वर्तमान समय में मनुष्य इतना निकृष्ट हो गया है कि जो उसका भला करता है उसे ही वह नुकसान पहुँचाने में तनिक भी पीछे नहीं हटता है। गोपाल जी भी नेता और गिद्ध की तुलना करते हुए कहते हैं- “कुछ समझदार नेता और पंछी की तुलना सही बतलाते हैं। उनका कहना है कि नेता और पंछी एक जैसे हैं। दोनों मरे का मांस नोचने में समर्थ हैं। गिद्ध थोड़ा कमजोर पड़ता है। वह अपने बनाए घोंसले वाले पेड़ में छेद करने से बाज नहीं आता है।”²⁴ जिस प्रकार गिद्ध निर्जीव का मांस नोचकर खाते हैं। उसी प्रकार नेता असहाय, गरीब, निरीह जनता को लूटकर अपना आशियाना बनाते हैं, अपनी भूख की आग को शांत करते हैं। वे अपने भले के लिए तथा देश का अहित करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। ये नेता देश को खोखला ही बनाते जा रहे हैं। नेता के सत्य का उद्धाटन करते हुए गोपाल जी कहते हैं- “नेता और बारात का एक मात्र आसान उसूल देश और भेड़ (अर्थात् लड़की के माँ बाप) को मूँडना होता है। एक सत्ता का सत्य खोजता है दूसरा दहेज का।”²⁵

नेता कभी किसी के बारे में नहीं सोचता वह अपने भले के विषय में ही सोचता है। गोपाल जी नेता को पशु पक्षियों से भी निंदनीय बताते हुए देश का कलंक मानते हैं- “नेता की बात में हमें दम लगा। पालतू पंछियों के अलावा पखेरुओं का नाम नहीं होता है। जनता उसके लिए गौरैया है। एक से दूसरी में कोई अंतर नहीं है। यही हाल नेता का है। चूँकि नेता पालतू तो हो नहीं सकता, इसलिए हर नेता सिर्फ नेता है और जनता की दृष्टि में निंदनीय है। कुछ विचारक इस राय के हैं कि नेता को अपने आपको पंछी कहना पक्षियों का अपमान है। कोई अंधा भी कैसे नेता का हंस, मोर, कोयल, कबूतर या मैना के समकक्ष होने का दावा स्वीकार कर सकता है। ये पंछी प्रकृति के शृंगार है। नेता मानवता का कलंक है।”²⁶ अर्थात् नेता केवल भाषणबाजी करते हैं, जनता से उन्हें कोई लेनादेना नहीं है, मानवता से उनका कोई सरोकार नहीं है। वे तो केवल जनता से ठग करना ही जानते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में बरसाने लाल चतुर्वेदी कहते हैं- “नेता और

अभिनेता समानधर्मी तथा समानकर्मि होते हैं। दोनों ही का काम दूसरों के पैसों पर गुलछर्रे उड़ाना होता है। दोनों को ही अपनी ठग विद्या करनी पड़ती है।”²⁷ अतः नेता का कार्य सेवा करना नहीं बल्कि ऐश करना मात्र ही होता है जो अपनी इस ठग विद्या से जितने पैसे कमाकर ऐश करेगा आज के युग में वह उतना ही बड़ा नेता होगा।

जनसेवा का दिखावा करने वाले नेता के मन में केवल 'कुर्सी' ही समाई रहती है। कुर्सी को प्राप्त करने के लिए लालायित ये नेता अपनी इस महत्त्वकांक्षा की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। उनके कुर्सी प्रेम को जब वोटर जान लेता है तब नेता के लिए बड़ा संकट आ जाता है-“सरकारी दफ्तरों में 'कुर्सी कुर्सी' काफी लोकप्रिय खेल है। राजनीति में यही खेल जनसेवा के नाम पर खेला जाता है। राजनीति के कुर्सी-कुर्सी और क्रिकेट में सबसे बड़ी समानता दोनों का अनिश्चय का खेल होना है। विधायक या संसद बनकर अर्धशतक लगाने वाले और कभी मंत्री का पद हथियाकर शतक लगाने वाले प्रतिभाशाली खिलाड़ी चुनाव के दौरान ज़ीरो पर उड़ जाते हैं।”²⁸

नेता जैसे बहुरूपिये को स्पष्टतः सामने लाने के लिए चतुर्वेदी जी कभी उसके व्यवहार या प्रवृत्ति की तुलना क्रिकेट से करते हैं तो कभी उसकी तुलना दाँतों के डॉक्टर से- “दाँत का डॉक्टर दूसरे के दर्द की कमाई खाता है। जैसे नेता जनता की उम्मीदों की।”²⁹ अर्थात् नेता चुनाव के समय अपनी वाक्पटुता के माध्यम से भाषण देकर जनता को उम्मीदें तो बहुत बंधाता है और उन्हीं से जीत भी हासिल करता है पर चुनाव जीतने के बाद वह उन उम्मीदों का गला घोट देता है।

वर्तमान युग का नेता इतना शातिर है कि कुर्सी पाने के लिए ही अपने मित्रों को भी धोखा देने से नहीं चूकता है-“हमारे जनतंत्र की खासियत है इसमें टू-इन-वन नेता भी हैं। यह धन की सीढ़ी के साथ, सीढ़ी के प्रयोग में भी माहिर है। यह सीढ़ी ऐसी वैसी नहीं है। यह खुफिया सीढ़ी दृश्य और श्रव्य है। जुझारू नेता न इसमें अपने दोस्त को बख्शता है, न दुश्मन को। वह सर्वज्ञ है। उसे पता है कि सियासत में न कोई

मित्र है न शत्रु। एक गोंद है स्वार्थ की। उससे सब जुड़ते हैं कभी इसमें, कभी उस दल में। सबकी काया कुरसीमय है। जहाँ सत्ता की संभावना नज़र आती है काया वहीं डोल जाती है।”³⁰

अतः नेता, वर्तमान युग में राजनीति की सफेद चादर ओढ़े हुए स्वयं को पाक-साफ दिखाते हुए जनता को बर्गलाकर उसका शोषण करने वाला शेर की खाल में छिपा ऐसा भेड़िया है, जो बाहर से कुछ और अंदर से कुछ और ही नज़र आता है। उसकी छवि बाहर से जितनी साफ नज़र आती है असल में अंदर से उतनी ही धूमिल और मटमैली है। सत्ता में आकर जनता को लूटने तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाले इस नेता रूपी राक्षस का गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्यों में बड़ी ही बेबाकी से पर्दाफाश किया है।

4.1.4 पदलोलुपता एवं चमचागिरी

स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद नेता की पद लोलुपता निरंतर बढ़ती गयी। पद प्राप्त करने और उसे बचाये रखने के लिए वह प्रतिष्ठित लोगों की चमचागिरी करने में भी नहीं हिचकिचाता है। उसका लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह सभी प्रकार की तरकीबों को अपनाता है। गोपाल जी ऐसे कुर्सी पाने की आशा रखने वाले नेताओं पर खूब जमकर व्यंग्य करते हैं।

कुर्सी के प्रति अधिक लगाव ही व्यक्ति को नेता बनाता है। नेता बनकर जनता की कठिनाईयों को दूर करने की बात तो अब किताबी पन्नों में दर्ज दूर के आदर्शों की बात रह गई है। आजादी के बाद नेताओं में देश प्रेम की भावना केवल सत्ता की लालसा से जुड़ी हुई नज़र आने लगी है—“आजादी के बाद अपना देश 'नेहरू के बाद कौन' के सवाल में उलझा रहा। फिर उनकी शहादत ने पाँच साल गद्दी संभाली। प्रचार था कि उनकी याद का वारिस हारा तो सिर्फ प्रलय और विध्वंस संभव है। परिवार चला गया मुल्क बरकरार है।”³¹ अर्थात् आजादी के बाद लोकतंत्र होने के बावजूद भी राजनीति में परिवारवाद चला। कांग्रेस पार्टी में नेहरू प्रधानमंत्री बने उसके बाद उनकी बेटी इन्दिरा जी, इन्दिरा जी के पश्चात् राजीव

गाँधी और राजीव गाँधी के बाद वर्तमान समय में राहुल और सोनिया गाँधी कांग्रेस पार्टी की सत्ता संभाले हुए है।

आज समाज में व्यक्ति का नहीं कुर्सी का सम्मान है। जब तक व्यक्ति के स्थान पर कुर्सी का महत्त्व रहेगा, समाज में भ्रष्टाचार ही बढ़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान पाने की इच्छा होती है उसके लिए वह प्रयास भी करता है। जब तक कुर्सी का सम्मान है तब तक भ्रष्ट और सत्-असत् सभी तरीकों का प्रयोग करके व्यक्ति उसे प्राप्त करने की लालसा रखता है। गोपाल जी ने कुर्सी लोलुपता पर बड़ा ही सटीक व्यंग्य करते हुए कहा है- “उसके बाद चमचे भी बुद्धि की श्रेष्ठता में यकीन रखने लगे। चमचे अहसान फरामोश नहीं हैं। वे आज भी अपने धंधे में जवाहरलाल और उनके खानदान के योगदान का अहसान मानते हैं। यह बुद्धि की भावना पर विजय का प्रभाव है कि आज के चमचे किसी व्यक्ति की चमचागिरी सिर्फ उसकी कुर्सी की खातिर करते हैं। वह उस कुर्सी से हटा और दूसरा आया तो वे उसके चमचे हो जाते हैं। यानी वे सिर्फ कुर्सी के चमचे हैं किसी विशेष के नहीं।”³²

व्यंग्यकार शरद जोशी ने भी कुर्सीनामा नामक लेख में कुर्सी पाने की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है कुर्सी का गुणगान करते हुए वे कहते हैं-“जिस व्यक्ति ने किसी का पहली बार निर्माण किया था वह यह नहीं जानता था कि वह क्या ग़ज़ब ढाएगा इस देश पर। वह केवल एक बैठने की सुविधा ही नहीं रही, एक समूची मानसिकता बन गयी। आदमी से नीचे होने के बजाए आदमी के सिर चढ़ गयी। कुर्सी के बिना आदमी भयंकर असुरक्षा से घिर जाता है। कुर्सी उसका किला है, शस्त्र है, शक्ति है। डाल पर बैठे बिना जैसे कोयल का सुर नहीं लगता, उसी तरह कुर्सी पर बैठे बिना, मनुष्य की प्रतिभा शून्य हो जाती है। जिसके पास स्वयं नहीं है, वह किसी कुर्सी वाले का सहारा खोजता है। कुर्सी आत्मबल है बाहुबल है और इस देश में अर्थबल भी।.....कुर्सी परमगति, कुर्सी बिन दुर्गति। कुर्सी अंतिम सद्गति। रामहू कुर्सी, रावणाय कुर्सी। कुर्सी क्षेत्रम् कुरूक्षेत्रम्। कुर्सी कुरूस्यात् कुर्सी कुर्यस्ताम्।”³³ इस प्रकार कुर्सी मनुष्य के

लिए सब कुछ हो गई है। आज सभी कुर्सी के पीछे भाग रहे हैं। कुर्सी से ही मनुष्य का मान-सम्मान है और जब वही कुर्सी छिन जाए तो वह बेकार का आदमी हो जाता है लोग उससे कतराने लगते हैं। बरसाने लाल चतुर्वेदी ने भी कुर्सी के महत्त्व को बताते हुए कहा है- “देवरजी, कुर्सी की चाट एक बार लग जाए फिर उसी की याद आती है और किसी काम में मन नहीं लगता। कुर्सी किसी की नहीं रही ये बड़ी बेवफा है।”³⁴ इस प्रकार आज का नेता कुर्सी पाने या उससे चिपके रहने की, उस पर जमकर बैठने की कोशिश में लगा हुआ है और इसी तीव्र इच्छा के कारण ही कुर्सी छिन जाने पर उसके दुःख का पार नहीं रहता है।

जनसेवा का दिखावा करने वाले नेता के मन में तो केवल ‘कुर्सी’ समाई होती है। कुर्सी को हथियाने के लिए लालायित ये नेता अपनी इस महत्त्वकांक्षा की पूर्ति के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। गोपाल जी कुर्सी की इसी लोकप्रियता का वर्णन करते हुए कहते हैं-“सरकारी दफ्तरों में कुर्सी-कुर्सी काफी लोकप्रिय खेल है। राजनीति में यही खेल जनसेवा के नाम पर खेला जाता है। राजनीति के कुर्सी कुर्सी और क्रिकेट में सबसे बड़ी समानता दोनों का अनिश्चय का खेल होना है। विधायक का सांसद बनकर अर्धशतक लगाने वाले और कभी मंत्री का पद हथियाकर शतक लगाने वाले प्रतिभाशाली खिलाड़ी चुनाव के दौरान जीरों पर उड़ जाते हैं।”³⁵ इस प्रकार कुर्सी तक पहुँचने का जरिया आम जनता से होकर जाता है। आम जनता भी आज समझदार हो गई है वह बड़े-बड़े नेताओं को अपने वोट की ताकत से धराशायी कर देती है और नेता को कुर्सी से वंचित भी।

कुर्सी की महत्ता सदैव से ही रही है। कुर्सी के लिए भाई ने भाई को मारा है तो वहीं कुर्सी पाने के लिए छोटा आदमी बड़े आदमी की चापलूसी में लगा रहता है और जब उसे कुर्सी मिल जाती है तो वह उसी से चिपक जाता है उसे छोड़ना नहीं चाहता है। परसाई के शब्दों में -“पद की कुसिरियों में गीली गोंद लगी रहती है जो बैठता है चिपक जाता है।”³⁶ अर्थात् एक बार किसी व्यक्ति को कुर्सी मिल जाने पर वह उस पर किसी दूसरे को बैठने का मौका ही नहीं देता है।

राजनीति में कुर्सी के साथ-साथ चमचागिरी का भी विशेष महत्त्व है। कुर्सी प्राप्त करने का रास्ता चमचागिरी से होकर ही जाता है अतः राजनीति में आने के लिए पढ़े-लिखे होना आवश्यक नहीं है। नेता का चमचा बनने व्यक्ति को चाटुकारिता, बातें बनाना आना चाहिए। चमचागिरी भी सभी के बस की बात नहीं होती है चमचा बनने के गुण व्यक्ति में होने चाहिए गोपाल जी इसी संदर्भ में व्यंग्य करते हुए कहते हैं- “हमने उनसे प्रार्थना की कि वह हमें अपना चमचा ही बना लें। उन्होंने हमारी निजी जन्मपत्री की जानकारी ली-

आप पढ़े-लिखे हैं?

जी हाँ! लिटरेचर से एम.ए. किया है। हमने सीना फुलाकर उत्तर दिया।

झुगगी-झोपड़ी के लोगों पर आपका कोई असर है?

जी नहीं।

आप किसी ठेकेदार के आदमी हैं?

जी नहीं

अपने रास्ते लगिए। क्यों वक्त बर्बाद कर रहे हैं?

हम भी आपकी तरह नेताजी की सेवा करना चाहते हैं।

न आपके पास झुगियों के वोट हैं। न ठेके के नोट हैं। तिस पर आप

डिग्री याफ़ता हैं। नेताजी राजनीति करते हैं, कोई अनाथ आश्रम नहीं चला

रहे हैं।

उन्होंने जबरन हमें विदा कर दिया।”³⁷

इस प्रकार नेता के आस पास जो चमचे होते हैं वे भी बिना काम के नहीं होते हैं। नेता उन्हें ही अपना चमचा बनाते हैं जो उन्हें या तो चुनाव में वोट दिलवा सके या फिर नोटों से नेता की जेब भर सके।

नेता पढ़े-लिखे लोगों को अपना कार्यकर्ता या चमचा बनाने से कतराते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यदि कार्यकर्ता पढ़ा लिखा व्यक्ति होगा तो वह नेता जी की मीठी-मीठी बातों में नहीं आएगा। वह आदर्शवादिता और यथार्थवादिता में विश्वास रखने वाला होगा और वह नेता जी की हाँ में हाँ नहीं मिलाएगा। ऐसे लोगों के पार्टी में रहने से नेता जी की मान प्रतिष्ठा में कमी आने लगेगी। चुनाव के समय सही कार्यकर्ताओं का चयन करना बड़ा ही मुश्किल हो जाता है-’दलों को फिर भी दिक्कत है। सही कार्यकर्ताओं के अभाव हैं। पढ़ लिखकर लोगों के जिस्म में आदर्शों का जहर घुल जाता है। नेता प्रतिनिष्ठा संदेहास्पदा हो जाती है। दम दें भी तो हिला नहीं पाते। महंगाई को भ्रष्टाचार से जोड़ते हैं। गांधी की बात करते हैं। लुब्धे-लुबाब यह कि जम्हूरियत के उसूल नहीं मानते।”³⁸ इस प्रकार पार्टी ऐसे कार्यकर्ताओं की तलाश में रहते हैं जो नेता की हाँ में हाँ मिलाना जानते हों। नेता की चापलूसी करना उन्हें आता हो।

पार्टी कार्यकर्ता बनने के लिए पार्टी द्वारा कराये गए इंटरव्यू में किस प्रकार के योग्य व्यक्ति का चयन होता है इस पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं-

“आप पढ़े-लिखे हैं?

पांच साल पहले बी.ए. किया था।

क्या करते हैं?

पैसे लेकर जरूरतमंदों की अर्जी लिखता हूँ। मुकदमों में पुलिस की ओर से गवाही देता हूँ। जनता के हित में खाने-पीने की दुकानों का माल चखकर उनके स्तर की निगरानी रखता हूँ। सर इसी तरह समाज सेवा के कामों में वक्त गुजर जाता है।

आप किस वाद में यकीन रखते हैं।

जो भी आपका वाद हो सर।

भ्रष्टाचार के बारे में आपका क्या ख्याल है?

यही तो आज का आचार-विचार और समय की पुकार है सर! पैसा नहीं जोड़ा तो पार्टी चुनाव कैसे लड़ेगी? अगर चुनाव नहीं हुए तो प्रजातंत्र कैसे चलेगा, लोकतंत्र के लिए भ्रष्टाचार लाजमी है सर!

देश का नेता कैसा हो। बड़े नेता ने पूछा।

बिल्कुल आपके जैसा हो। प्रत्याशी ने उत्तर दिया।

उसके जाने के बाद नेता ने कम्प्यूटर का बटन दबाया। अट्टाहास गूँजा। यह बिन टेब्लिंग के परफैक्ट है इसे नियुक्ति पत्र दे दें। बड़े नेता ने छोटे नेता को आदेश दिया।³⁹

आज ऐसे व्यक्तियों का ही बोलबाला है जो नेता की जी हजूरी करना जानता हो। अपनी वाक्पटुता से नेता को खुश करना जानता हो। और जो खुशामद करना जानता हो। इस प्रकार के लोग ही इस देश में विकास कर पाते हैं।

आज वोटर से लेकर मंत्री तक सभी चमचें हैं। बरसाने लाल चतुर्वेदी भी इस चमचागिरी पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-“मंत्री बनने के लिए चमचागिरी का उस्ताद होना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों बेरोजगारी बढ़ेगी, राजनीति का धंधा ही सबको खाप सकेगा। चाहे गाँव में रहने वाला हो अथवा शहर में, इस

रोजगार की संभावनाएं बराबर बनी रहेंगी और यदि व्यक्ति चमचागिरी में माहिर होगा तो ग्राम पंचायत से शुरू करके जल्द मंत्री पद प्राप्त कर लेगा।”⁴⁰ इसमें लेखक ने राजनीति को रोजगार मानने पर करारा व्यंग्य किया है।

सरकार में चाटूकारों का ही बोलबाला है। जब समाज में चाटुकारिता बढ़ जाती है और सत्परामर्श देने वाला कोई नहीं रह जाता है तब सरकार का पतन निश्चित होता है। गोपाल जी ने इसका बड़ा ही जीवंत और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है- “चमचातंत्र में राजनीतिक दलों का पूरा संगठन चमचागिरी पर आधारित है। ऐसा नहीं है कि जाति, रिश्तेदारी और संप्रदाय की भूमिका पदों के बंटवारे में अपना महत्त्व खो बैठी है। पर पुत्र, भाई, साले, भतीजे भी वही आगे आते हैं जिनका चरित्र चमचा प्रधान है।”⁴¹ अतः चमचागिरी करना भी आसान कार्य नहीं है। लोग भले ये कहे कि नेता अपने भाई भतीजे आदि को तवज्जों देते हैं लेकिन नेता भी अपने उन भाई भतीजों पर ही ध्यान देते हैं जो चमचागिरी में उस्ताद हो।

इस प्रकार प्रजातंत्र में पद और कुर्सी पाने की लालसा मनुष्य में चमचागिरी करने के लिए उकसाती है आम जनता हो या छोटा नेता सभी को यह पता है कि बिना चमचागिरी के कुर्सी प्राप्त नहीं की जा सकती और इसी कुर्सी की, पद की लालसा के लिए ये लोग चमचागिरी करने में ज़रा भी गुरेज नहीं करते। इसी चमचागिरी के कारण वे उच्च पद पर असीन भी हो जाते हैं।

4.1.5 दलबदल का खेल

राजनीतिक परिवेश में सबसे अधिक अस्थिरता का वातावरण दल-बदल की राजनीति ने उपस्थित किए हैं। इस दल बदल के कारण सरकार की स्थिति डावांडोल हो जाती है। मंत्री-विधायक सरकार के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पारित कराते हैं। सन 1980 में इसी प्रकार ‘जनता-सरकार’ का पतन

हुआ। गोपाल जी ने दल-बदल विखण्डन पर तीखा व्यंग्य करते हुए कहा है- 'लो प्यारे हमारे बंधुआ एम. पी. आपके साथ हैं। बना लो सरकार, थोड़े दिन बाद इसको हटाओ उसको बैठाओ की शर्तें लगाकर फरमाते हैं आपका टर्न हो गया है हमें भी तो मौका दें।'⁴² इस प्रकार नेता दल बदल कर कभी सरकार बनाते हैं तो कभी सरकार गिराते हैं। पर ऐसा वे तभी करते हैं जब इसमें उनका अपना कोई लाभ हो।

इन दलबदलुओं के संदर्भ में हरिशंकर परसाई भी दलबदल करने पर एक नेता के मुँह से सफाई दिलवाते हैं- 'हर आदमी में मेरे जैसी फुरती नहीं है। देखिए न, मैंने जनता पार्टी बनायी। फिर मैं स्वतंत्र पार्टी में चला गया। फिर कांग्रेस में लौट गया। फिर मैं भारतीय क्रांति दल में चला गया। फिर भारतीय क्रांति दल से निकलकर जनता पार्टी बना ली। मेरे लिए राजनीतिक दल अण्डरवियर है। ज्यादा दिन एक ही को नहीं पहनता क्योंकि बदबू आने लगती है।'⁴³ दल बदलने वाले नेताओं के विषय में लतीफ घोंघों भी व्यंग्य करते हैं- 'दल बदलना उनके लिए सिर्फ टोपी बदलना है।'⁴⁴

इसी संदर्भ में रवींद्रनाथ त्यागी जी 'टिड्डी' जैसे जीव को लेकर राजनीतिज्ञों के दल बदलू स्वभाव तथा अवसरवादिता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं- 'इसके पर इस रंग के होते हैं कि मौके के अनुसार वह किसी भी पेड़ के पत्तों में आसानी से छिप सकती है और दलबदल करने की उसकी यह प्रवृत्ति उसे एक विशेष प्रकार की राजनीतिक मान्यता प्रदान करती है। उसका रंग भी पास पड़ोस के अनुरूप बदलता रहता है। इस कीड़े में एक बड़ा राष्ट्रीय गुण यह भी है कि अवसर के अनुसार यह बाकी कीड़ों को खा जाता है।'⁴⁵

वर्तमान युग में राजनीति में पद प्राप्त करने के लिए दल बदलना एक आम बात हो गई है। नेता जहाँ देखते हैं कि उन्हें इस पार्टी में रहने पर ज्यादा फायदा होगा बस वे तुरंत दल बदल लेते हैं। ऐसे अवसरवादी नेताओं पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं- 'राजनीति में दमदार नेता वह है जो राजनीति

की सुविधा के अनुसार लगातार दल बदलने की कुव्वत रखता हो।”⁴⁶ अर्थात् राजनीति में वही नेता टिक सकता है या आगे बढ़ सकता है जो अवसर के अनुरूप दल बदलने में माहिर हो।

आज दल बदलने के पीछे सिद्धांत नहीं वरन् धन और पद का प्रलोभन है। दल बदल करते समय नेताओं को किंचित मात्र भी ग्लानि नहीं होती है। ये नेता आत्मा की आवाज के नाम पर दल बदल करते हैं जबकि यह वस्तुतः आत्मा की आवाज होती है। ऐसे नेताओं में गजब का आपसी सौहार्द होता है। यह एक दूसरे के पाले में अक्सर टहलते हुए चले आते हैं। इसी संदर्भ में एक कवि ने कहा था-

”आत्मा ने धरे

कई-कई चोले हैं-

हमने सिद्धांत नहीं

केवल दल बदले हैं।”⁴⁷

इस प्रकार दल बदलना नेताओं के लिए फैशन सरीखा हो गया है। जिस दल में वे अपने भविष्य की बेहतर संभावना देखते हैं फट से उस दल में जाकर मिल जाते हैं। किंतु ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह किसी भी दल में जाए उसका सिद्धांत नहीं बदलता है। जनता को लूटना, देश और जनता के विकास के नाम पर स्वयं का विकास करना इस प्रकार के उनके सारे सिद्धांत दल बदलने पर भी जस के तस बने रहते हैं। वे राजनीति में आकर दल बदल के माध्यम से अपने विकास की ओर अग्रसर रहते हैं।

इस प्रकार वर्तमान राजनीति में कुर्सी पाने के लिए दलबदल की प्रवृत्ति साधारण सी बात हो गयी है और इस प्रवृत्ति को जिस राजनीतिक दल ने सबसे अधिक प्रश्रय दिया, वह था कांग्रेस। कांग्रेस में सक्रिय विभिन्न प्रेशर ग्रुपों ने सत्ता हासिल करने के लिए यह खेल प्रारम्भ किया था किंतु सर्वव्याप्त इस

भ्रष्ट राजनीति से आज कोई भी पार्टी अछूती नहीं है। सिद्धांत के नाम पर दल बदलने का मजाकिया खेल नेताओं द्वारा खूब खेला जा रहा है। उनका मतलब केवल सत्ता पाने से रहता है। इस तरह सत्ता पाने के बाद नेता जनता के लिए, जनता के नाम पर जनता का शोषण करता रहता है।

गोपाल चतुर्वेदी राजनीतिक-यथार्थ की बहुत गहरी समझ तथा निकट पहचान लेकर हमारे सामने आते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के प्रति उनमें गहरा असंतोष है जिसकी अभिव्यक्ति राजनीतिक दलों, नेताओं, प्रजातांत्रिक व्यवस्था तथा पद लालसा पर तीखे व्यंग्य प्रहारों के रूप में हुई है। गोपाल जी ने देश की राजनीतिक व्यवस्था के जन विरोधी चरित्र को उघाड़ते हुए जनता और शासन के बीच निरंतर बढ़ती दूरी, राजनीतिक दलों की सिद्धांतहीनता और विचारशून्यता राजनीतिज्ञों के दोहरे चरित्र चुनाव प्रणाली के भ्रष्ट स्वरूप राजनीतिक विसंगतियों एवं विकृतियों को अपने व्यंग्य प्रहार का लक्ष्य बनाया है।

वास्तव में राजनीति में परामर्श की परत के नीचे स्वार्थ छिपा रहता है। जनता के कल्याण की योजनाएं सरकार बनाती तो है लेकिन उससे बू आती है स्वार्थ की। गोपाल जी ने अपने व्यंग्यों के माध्यम से ऐसे व्यक्तियों का पर्दाफाश किया है जो कल्याण के नाम पर केवल अपना और अपने परिवार का कल्याण करते हैं। स्वयं को जनता का रक्षक कहने वाले ये नेता जनता के भक्षक के रूप में दिखाई देते हैं। नैतिकता और राजनीति के नाम पर ये जनता से कूटनीति करते हैं। गोपाल ने समाज सेवा और राजनीति के नाम पर नेताओं की इस संवेदनहीनता से पाठकों को रूबरू करने का प्रयास किया है। इनके राजनीतिक व्यंग्यों को पढ़कर जनता में आक्रोश पैदा होता है। इनके व्यंग्यों के प्रहार कहीं न कहीं बदलाव का तिलिस्म पैदा करने का प्रयास करते हैं।

4.2 प्रशासन संबंधी व्यंग्यों में भ्रष्टाचार का उद्घाटन

सार्वजनिक और निजी, प्रशासन के दो क्षेत्रों में सार्वजनिक प्रशासन क्षेत्र सरकारी तंत्र के सीधे नियंत्रण में होता है। स्वभावतः सरकारी तंत्र की समस्त अच्छाईयाँ, बुराईयाँ सार्वजनिक प्रशासन के क्षेत्र में स्वमेव ही उतर आती हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में सरकारी और राजनीतिक क्षेत्रों में विकसित हुई विकृतियों का प्रभाव सार्वजनिक प्रशासनिक क्षेत्र पर भी पड़ा है। अधिकारियों में अधिकार-चेतना जिस अनुपात में विकसित हुई है उसी अनुपात में दायित्व चेतना लुप्त हो गई है। भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद, अफसरशाही, गैरजिम्मेदारी आदि बढ़ गई है लेकिन विडम्बना तब पैदा हो जाती है जब इसको सार्वजनिक सेवा का क्षेत्र घोषित किया जाता है। जनसेवा, न्याय, निष्पक्षता, ईमानदारी के नाम पर ठीक उल्टा आचरण किया जाता है। व्यंग्यकार अपनी व्यंग्य लेखनी से इसी अंतर्विरोध का उद्घाटन करते हुए उस पर लगातार चोट करता जाता है। अगर नेता राजनीतिक क्षेत्र का खलनायक है तो अफसर प्रशासनिक क्षेत्र का। अफसर का खलनायक बनना नेता से अधिक घातक है क्योंकि नेता और उसकी पार्टी का तंत्र तो परिवर्तनशील होता है जबकि प्रशासन का तंत्र स्थिर रहने वाली व्यवस्था है। इस कारण प्रशासनिक क्षेत्र में स्थायित्व आ जाने का खतरा पैदा हो जाता है। आज सार्वजनिक नैतिकता जैसी कोई चीज़ प्रशासनिक क्षेत्र में नहीं रह गई है। प्रशासनिक कार्यालयों का वातावरण कलुषित हो गया है। सिफारिश, चापलूसी, खुशामद, रिश्तत आदि पूरे प्रशासनिक तंत्र का हिस्सा बन चुके हैं। गोपाल चतुर्वेदी भी प्रशासनिक अधिकारी के रूप में प्रशासन का हिस्सा रहे हैं। कन्हैयालाल नंदन के शब्दों में, “अफसरों के बीच रहकर अफसरी का सारा तामझाम गोपाल को अच्छी तरह मालूम है। अपनी लेखनी से गोपाल उसकी बखिया भी उधेड़ते आ रहे हैं। लेकिन मुझे भी ताज्जुब होता रहा है और भारत के पूर्व महालेखा परीक्षक एवं नियंत्रक त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी को भी कि गोपाल के लिखे का उनके सहयोगी ने आज तक बुरा क्यों नहीं माना। मैंने उनसे कई बार हँसते-हँसते कहा भी है कि तुम्हें लेने के देने पड़ जायेंगे। गोपाल ने सिर्फ इतना कहा अरे भाई साहब की बात जब

जो आयेगा देखा जायेगा लेकिन लिखने में बेईमानी क्यों करना’’⁴⁸ प्रशासन में रहते हुए इन्होंने चपरासी से लेकर अफसर तक के क्रिया कलापों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और जाना है और बड़ी ही बेबाकी के साथ साहित्य में इसे व्यंग्य के रूप में उतारा है। दफ्तर संस्कृति से संबंधित इनके व्यंग्यों को पढ़ने पर पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि यह उसी के साथ घटित हुई कोई घटना है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार संबंधी जिस प्रकार के व्यंग्य इनके साहित्य में देखने को मिलते हैं वैसे अन्यत्र कहीं नहीं।

4.2.1 अफसरशाही

प्रशासनिक क्षेत्र की विकृतियों अथवा उपयुक्त कार्यवाही की असफलताओं के लिए पूर्ण रूप से अफसर ही जिम्मेदार होता है। स्वहित की भावना ने उसको उचितानुचित सब कुछ करने के लिए बाध्य कर दिया है। ’’समाज में मुखौटा संस्कृति का एकाध अपवाद संभव है, सरकार में यह कतई नामुमकिन है। यहाँ के सब पेशेवर सफेदपोश चोर-डाकू सज्जनता के अभिनय में निष्णात हैं। यह तब है जबकि आज के साधु में सज्जन नहीं रहे हैं।’’⁴⁹ अर्थात् शासन में सभी अफसर दो रूप में हैं जो ऊपर से तो साधु नज़र आते हैं सज्जन दिखते हैं किंतु किसी चोर से कम नहीं होते हैं।

आज प्रशासन में इतना भ्रष्टाचार है कि रुपयों का चढ़ावा चढ़ाए बिना किसी भी साधारण व्यक्ति का कोई काम नहीं हो सकता है। कुछ अफसर तो ऐसे हैं जो अपने से नीचे तबके के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते सब अकेले ही हज़म कर जाते हैं गोपाल जी ऐसे ही अफसरों के विषय में बताते हुए कहते हैं- ’’साहब ऐसे वैसे नहीं हैं। उनके एक जूनियर सहयोगी बताते हैं कि साहब का जीवन-दर्शन बहुत ही सीधा और सरल रहा है। उनसे उसी मुंह लगे प्रिय पात्र ने कहा, ’सर! आप तो शेर हैं। शेर जब भी शिकार कर अपना पेट भरता है तो कुछ छीछड़े छोड़ देता है। सर! हम तो आपकी रियाया हैं कुछ हम भी कमा लें। बेटी का दहेज निबटे। आपके गुण गाएँगे। साहब ने उसे प्यार से समझाया कि वह शेर नहीं अजगर है। पूरा

का पूरा शिकार हड्डी समेत निगल जाते हैं। तभी तो हमने आपसे कहा था कि साहब ऐसे वैसे नहीं खास हैं।”⁵⁰

दफ्तर में यदि कोई व्यक्ति किसी प्रशासनिक कार्य के लिए जाता है उसे फाइलों में उलझा दिया जाता है। उसे दफ्तर के रोज-रोज चक्कर काटने पड़ते रहते हैं। लेकिन अफसर कम कमीशन लेकर भी अपने मन मुताबिक ही करता है गोपाल जी इसी फाइलबाजी पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-”सरकारी अफसर कर्मचारी तो मुल्क के स्थायी सेवक हैं। वे पूरी ताकत और कूवत से देश की सेवा करते हैं। फाइलें चलाते हैं। योजनाएं बनाते हैं। उनका काम ही कागज़ी कार्यवाही से इंसान की खिदमत करना है। हर दफ्तर इस लक्ष्य का गवाह है, उनकी कामयाबी इस बात से जाहिर है कि हमारी आबादी के मुकाबले, फाइलों की तादाद कहीं ज्यादा है।”⁵¹

आज अफसर काम के नाम पर केवल आराम करता है। योजनाओं के नाम पर जनता को लूटता है। दौरे के नाम पर विदेश भ्रमण कर केवल और केवल आराम करता है। अफसरों की इसी लूट को व्यंग्य रूप में गोपाल जी इस प्रकार प्रकट करते हैं ”आखिर नेता, मंत्री, अफसर भी तो इंसान हैं। अगर वे खुद प्यासे हैं तो दूसरों की प्यास कैसे बुझाएंगे? जनता सिर्फ इलैक्शन तक जनता है, जनार्दन है, हाड-मांस का इंसान है। उसके बाद वह सिर्फ आँकड़ा है, फाइलें है, शिकायत है, याचक है, सिरदर्द है। लीडर और जनता में यही तो फर्क है। मंत्री अफसर तो चैबीसों घंटों के सेवक हैं। लंबी तानकर सेवा करें या दौरे पर जाकर। कभी देश में जगह-जगह जाना पड़ता है, कभी विदेश में।”⁵² ये भ्रष्ट अफसर जनता को लूटकर स्वयं उसी के पैसों से विदेश घूमते हैं और ऐशो आराम करते हैं।

इन दिनों प्रशासन में कमीशन खोरी अपने चरम पर है बिना कमीशन के कोई सरकारी नौकर चाहे वह चपरासी हो या अफसर आम आदमी का कोई काम नहीं करता है। यहाँ तक की योजनाओं के नाम पर, देश के विकास के नाम पर बनाए जा रहे बड़े-बड़े प्रोजेक्ट में ऊपर से लेकर नीचे तक सिर्फ कमीशन

खोरी ही है- आततायी के अनुसार विकास और कमीशन राम-लक्ष्मण की जोड़ी है। अगर कमीशन है तो विकास है। कमीशन नहीं है तो विकास भी नहीं है। फिलहाल आजकल कमीशन काल का संक्रमण समय है। इसी वजह से देश में हो हल्ला है। जनता को शिकायत है कि कमीशन की दरों में घनघोर असमानता है। यह कहाँ का इंसाफ है कि दरे खानेवाले की मर्जी से घटे-बढ़े। एक ही काम के कोई पचास वसूले कोई पाँच सौ। हमें निराश नहीं होना है। दरों की विविधता कमीशन की व्यापक एकरूपता की सूचक है।”⁵³

इसी प्रकार सरकारी तंत्र में प्रमोशन पाने के लिए भी जी हूजूरी करनी पड़ती है। जो लोग चाटुकारिता जानते हैं ऑफिस में कोई भी काम नहीं करते हैं तब भी उनका प्रमोशन हो जाता है किंतु जो लोग दफ्तर का काम पूरी मेहनत व लगन से करते हैं वे प्रमोशन के लिए तरसते हैं। प्रमोशन पाने की सलाह देते हुए गोपाल जी कहते हैं-”आप दफ्तर में मेहनत से काम करते हैं” वर्मा सर ने सवाल किया। मैंने हामी भरी फिर आपका प्रमोशन क्यों हो! जाहिर है कि आप बिना पदोन्नति की स्थिति से संतुष्ट हैं। सरकार क्यों आप पर अधिक पैसा खर्च करे,” उन्होंने हमें पाठ पढ़ाया। हमने उनसे अपील की कि हमें इस अंधेरे से उबारें वर्मा सर का अगला प्रश्न था, आप अपने साहब के यहाँ आते जाते हैं।”

सर! रोज दस घण्टे दफ्तर आने-जाने और काम करने में निकल जाते हैं। फिर घर के राशन-पानी और बच्चों की पढ़ाई में वक्त लग जाता है।

मेहमानों की खातिर तबज्जो अलग। दोस्त-रिश्तेदारों से महीनों मुलाकात नहीं होती। कैसे जाएँ साहब के घर हमने अपनी विवशता बयान की।

‘सर’ ने निर्णय सुनाया कि हम उल्टी गंगा बहा रहे हैं। साहब को सलामी अनिवार्य है जबकि सरकारी काम ऐच्छिक है। आप पीएच.डी. तकनीक प्रमोशन के लिए लगाइए, उन्होंने आदेश दिया।”⁵⁴

इस प्रकार प्रशासन में भी प्रमोशन पाने के लिए चापलूसी का विशेष स्थान है और जो व्यक्ति इस चाटुकारिता धर्म से वंचित रहता है। वह प्रमोशन से भी वंचित रह जाता है।

नेता की तरह सरकारी कर्मचारियों के व्यवहार में तथा राजनीति की तरह प्रशासनिक कामकाज के निबटारे में पर्याप्त विसंगतियां दिखाई देती हैं। एक अफसर होने के कारण जो विसंगतियां जो स्वार्थपरता सरकारी कार्यालयों में विकसित हो रही है उसे देखते हुए चतुर्वेदी जी कहते हैं-“भारत सरकार के किसी आर्थिक मंत्रालय के उपसचिव पद पर काम करने के यही कुछ तो फायदे हैं। होली-दीवाली पर भेंट उपहार और नये वर्ष के अवसर पर कैलेंडर डायरी। लंच-डिनर तो खैर होते ही रहते हैं।”⁵⁵

वर्तमान समय में भ्रष्टाचार का बोलबाला हर जगह है नेता, मंत्री, अफसर, ठेकेदार सभी भ्रष्टाचार में सने हुए हैं। इन सब के भ्रष्टाचार का उद्घाटन करते हुए गोपाल चतुर्वेदी कहते हैं-“जैसा सब जानते हैं कि आधुनिक भारत के निर्माण में औरों के अलावा लीडर, अफसर और ठेकेदारों का महत्वपूर्ण योगदान है। भ्रष्टाचार की नींव पर बनी गिरती इमारतें टकते पुल, चेचक ग्रस्त सड़के जनता को ठिकाने लगाने को प्रस्तुत प्रशासन, अतीत के राजाओं से टक्कर लेते सामंती मंत्री जनता को ठेंगा दिखाते दरबारी (जिन्हें जनतांत्रिक व्यवस्था में विधायक या सांसद भी कहते हैं) इसके जीते जागते उदाहरण हैं।”⁵⁶ हरिशंकर परसाई भी देश में विकास के नाम पर हो रहे घटिया कंस्ट्रक्शन और ऊपर से नीचे तक हो रही कमीशनखोरी पर व्यंग्य करते हैं-“यह है राष्ट्रीय विकास का पौधा। इसके आस-पास तमाम योजनाओं के चबूतरे बनाए गए। जैसे ब्लॉक डेवलपमेंट, सहकारी आंदोलन, विभिन्न प्रोजेक्ट। इसकी रक्षा के लिए चौकीदार खड़े हो गए यानी बड़े अफसर मंत्री और नेता।.....साधो, विकास के पौधे को इस तरह चरा जा रहा है। तुम देखते हो कि ब्लॉक डेवलपमेंट अफसर की जीप 10 मील दूर पान खाने आती है। आधे मील सड़क बनावाने का खर्चा दो लाख रुपया है। योजना का सामान उठाकर बाजार में बिकता है। नया पुल पहली बरसात में ही बैठ जाता है, इमारत बनते ही तिड़क जाती है। बांध की दीवार टूट जाती है और

करोड़ों पानी में बह जाते हैं। सैकड़ों टन गल्ला सरकारी गोदाम में सड़ जाता है। लाख रुपये की संस्था के उद्घाटन में दो लाख रुपये लग जाते हैं।⁵⁷ इस प्रकार भारत निर्माण के नाम पर नेता और अफसर दानों ही कमीशन खाते हैं। ठेकेदार भी घटिय क्वालिटी के सामानों का प्रयोग करके बिल्डिंग, सड़कों, पुल आदि का निर्माण करते हैं। करोड़ों का काम लाखों में करके बाकी बचे सारे पैसों को वह डकार जाता है निर्माण होने के बाद वह चाहे साल भर चले या छः महीने इससे ठेकेदार, अफसर, नेता को क्या लेना देना उनका काम तो निर्माण करवाना था सो हो गया।

इस प्रकार प्रशासन में सरकारी अधिकारियों की मनमानी ने प्रशासन को कमजोर बना दिया है। स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे-धीरे प्रशासनिक कार्यों में घूसखोरी को बढ़ावा मिलने लगा। अधिकारी प्रशासन में फैले भ्रष्टाचार को रोकने की बजाए, उसी के द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि का प्रयास करने लगे। देश में विकास को दिखाने के लिए अक्सर विविध प्रदर्शनियों का आयोजन होने लगा, लेकिन इससे देश और उसकी जनता को नहीं अफसरों को ही लाभ हुआ। आज अफसर अपने पद और पैसे के मद में इतने चूर हो चुके हैं कि वे बड़ें-बुजुर्गों की इज्जत करना भी भूल गए हैं। यहाँ तक कि पद और पैसा मिलने के बाद वे अपने माता पिता को ही गंवार समझने लगते हैं और किसी बड़े अफसर से उन्हें मिलाने में झिझक महसूस करते हैं। पद को प्राप्त कर लेने के बाद लोगों में मानवीय संवेदना समाप्त हो जाती है। अफसरों द्वारा किए जा रहे इसी प्रकार के भ्रष्टाचार एवं संवेदनहीनता को गोपाल जी ने जनता के समक्ष व्यंग्य रूप में प्रस्तुत किया है।

4.2.2 निठल्लापन

शासकीय कार्यालय अपने निठल्लेपन और गैर जिम्मेदाराना कार्यों के पर्याय बन गए हैं। धांधली और अंधेरगद्दी का आलम यह है कि जनसेवा के केंद्र आम जनता की नफ़रत और घृणा का पात्र बन गए हैं। गोपाल चतुर्वेदी का व्यंग्य संग्रह “फाइल पढ़ि पढ़ि” दफ्तर संस्कृति की इन तमाम छोटी-बड़ी

घटनाओं से पाठकों को रूबरू कराता है। सचिवालय का परिचय कराते हुए गोपाल जी कहते हैं-
''सचिवालय से पहले ही परिचय में हमारा खासा ज्ञानवर्धन हुआ। मसलन सचिवालय एक बेहद सुरक्षित क्षेत्र है और वहाँ हर आगंतुक को स्वाभाविक रूप से संभावित आतंकवादी माना जाता है। यहाँ के अधिकांश लोग कैण्टीन में काम और कमरे में आराम करते हैं। कर्मचारियों व अधिकारियों की मूल प्रवृत्ति मदद करने की है, पर किसी के पास समय नहीं रहता और कोई स्वयं नहीं रहा।''⁵⁸ अर्थात् दफ्तर जाकर भी सरकारी कर्मचारी केवल आराम ही करते हैं।

सरकारी कर्मचारी कार्यालयों में कुछ काम नहीं करते हैं और जब छुट्टी आती है। तब घर पर कार्यालय के काम का रोना रोकर घर पर भी आराम ही करना चाहते हैं-''एक दिन छुट्टी का मिलता है खच्चर की तरह सरकारी लादनी के बाद। यदि इस छुट्टी में आराम कर रहा हूँ तो कौन सी आफत आ गयी। बड़ा काम करते हो दफ्तर में। अलावा गप्पों के और कैण्टीन के चक्करों के कुछ और किया होता तो आज देश की यह दशा होती। इससे चाय पी ली, इससे मिठाई झटकी ली, बस हो गया काम।''⁵⁹ इस प्रकार यह सरकारी कर्मचारी काम के नाम पर घर के लोगों तथा आम जनता दोनों को ही बेवकूफ बनाने का प्रयास करते हैं।

कार्यालय कहने को तो सुबह दस बजे से ही खुल जाता है किंतु जब कोई व्यक्ति वहाँ अपना काम करवाने आता है तो चपरासी उससे कहता है कि साहब मीटिंग में हैं और वह व्यक्ति घंटों मीटिंग खत्म होने का इंतजार करता रहता है-''हमें यहाँ के अधिकारी से मिलकर शिकायत करनी चाहिए, एक सुझाव आया। साहब के यहाँ जरूरी मीटिंग चल रही है। उनकी मेम साहब उनके पास बैठी हैं, चपरासी ने हमें इंतजार करने की सलाह दी और कमरे के बाहर जलती हुई लाल बत्ती की ओर इशारा किया। हमने देखा कि पूरे बरामदे में कतार से अफसरों के कमरे थे और पूरा बरामदा 'रेड लाइट एरिया' बना हुआ था। क्या यह सारे अधिकारी ऐसे ही मीटिंगों में व्यस्त हैं? मैंने जानना चाहा। ''और नहीं तो क्या! अभी मीटिंग चल

रही हैं और फिर लंच, फिर मीटिंग, उसने सिलसिला बताया। यहाँ काम कब होता है? हमने शंका जतायी। काम ही तो हो रहा है। बेचारे साहब लोग सुबह से आते हैं और देर रात घर जाते हैं उसने खैनी पीटी। और आप लोग क्या करते हैं? मैंने इस अनंत कार्य-व्यस्तता की प्रक्रिया में उसकी भूमिका दरियाफ्त की। हम भी सेवा करते हैं। कागज इधर-उधर ले जाते हैं। फिर ओवर टाइम। कभी चाय का इंतजाम, कभी कॉफी का।⁶⁰ इस प्रकार मीटिंग के नाम पर कर्मचारी चाय कॉफी पीकर बीवियों के साथ अंदर केबिन में आराम करते हैं और आम जनता बाहर उनका इंतजार।

कार्यालय में आकर कर्मचारी काम में कम और खाने में ज्यादा ध्यान देते हैं-‘मेरे लिए समोसा अकसर कागज में लिपटा आता है। मैं समोसा खाती हूँ, रामलाल जी कागज सहेजते हैं। कई बार दफ्तर से गायब महत्त्वपूर्ण पालिसी सर्कुलर समोसे में लिपटे चले आते हैं इस प्रकार सरकारी कार्यक्षेत्र का सामान्य ज्ञान बढ़ाने में भी समोसों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।’⁶¹ इस प्रकार ऑफिस में कर्मचारियों का अधिकतर समय गपशप करने व समोसे खाने में ही बीत जाता है। काम तो वे नाम मात्र का ही करते हैं।

सरकारी कार्यालयों में एक बार नौकरी पा लेने तक ही लोगों में चुस्ती-फुरती होती है। नौकरी मिल जाने के बाद वे काम करें या न करें। सरकार से वे वेतन पाने के हकदार हो जाते हैं। काम न करने की इस प्रवृत्ति के विषय में गोपाल जी कहते हैं-‘ऐसे वह रेल के दफ्तर में लिपिक थे, पर उनके परिचित जानते थे कि वहाँ वह सिर्फ हाजिरी लगाने का वेतन पाते हैं। दफ्तर की सीट पर अधिकतर उनकी टोपी ही उनकी उपस्थिति के प्रमाण स्वरूप पायी जाती है।’⁶² अतः सरकारी कार्यालयों में सरकारी नौकर आकर सबसे पहले रजिस्टर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कर देते हैं और उसके बाद घंटो अपनी कुर्सी पर नजर नहीं आते हैं। कभी वह दफ्तर की कैटीन में होते हैं कभी पान की दुकान पर, कुर्सी पर तो वे ईद के चाँद जैसे ही बैठे नजर आते हैं।

कार्यालय में कर्मचारी के यदि दर्शन हो भी जाएं तो वह काम नहीं करना चाहते हैं वे अपना काम कैसे दूसरे पर टाल देते हैं देखिए-“यह मेरा कार्यक्षेत्र नहीं है। रिकार्ड रूम का सहायक छुट्टी पर है। तब तक आप लोग खुद कोशिश करें। अपने देश की यही तो दिक्कत है। सब हाथ पर हाथ धरे सरकार का मुँह ताकते रहते हैं। हमें अपनी मदद आप करना सीखना है। सरकार क्या-क्या करे। यही क्या कम किया था कि कभी फाइल खुलवा दी। अब आप चाहते हैं कि उसे तलाशें भी।”⁶³

सरकारी कर्मचारी फाइलों का प्रयोग तकिया के रूप में करते हैं जो उन्हें आराम देने में बड़ी ही मददगार साबित होती है “हमारे दफ्तर के पास सरकार ने एक पार्क बनवा रखा है। शायद इसलिए कि गुनगुनी धूप हो तो फाइल उठाओ और किसी बेंच पर उसका तकिया बनाकर आराम फरमाओ। सामने की क्यारी के खिले गुलाबों की भीनी गंध की मादकता का आनंद लो। इसी सुखद स्थिति में हमें लगा कि दफ्तर के समय इसमें लेटना देश के हित में है।”⁶⁴

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सरकारी कार्यालयों में सरकारी कर्मचारी दफ्तर तो प्रतिदिन जाते हैं किंतु वे वहाँ कुछ काम नहीं करते। उनके दर्शन अधिकतर कैण्टीन में ही होते हैं। कुर्सी से वे सदैव नदारद रहते हैं। किसी दस मिनट के काम को करने में दस दिन लगा देते हैं। काम को टालने के लिए इनके पास अनेक बहाने होते हैं। कुल मिलाकर यदि देखा जाए तो अफसर से लेकर चपरासी तक ऑफिस में केवल आराम करने के लिए ही आते हैं। निठल्लेपन की इस प्रवृत्ति पर गोपाल जी ने सरकारी कर्मचारियों पर खूब व्यंग्य किए हैं। कर्मचारियों के निठल्लेपन की एक भी प्रवृत्ति गोपाल जी की कलम से छूट नहीं पाई है।

4.2.3 घूसखोरी

घूसखोरी या कमीशनखोरी प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना प्रशासन में कोई भी कार्य संभव नहीं है। बिना कमीशन के प्रशासन में कोई एक कागज भी इधर से उधर नहीं होता है। बाबू हो, चपरासी हो या अफसर बिना कमीशन के ये कोई भी कार्य नहीं करते हैं। सरकार का कोई भी प्रोजेक्ट हो, सड़के बननी हो, पुल, नालियाँ या गरीबों के लिए आवास सरकारी अधिकारी उन्हीं ठेकेदारों को टेंडर देते हैं जो उन्हें अधिक से अधिक कमीशन मुहैया करा सके। इस कमीशन में ऊपर से नीचे तक बंदरबाँट होती है। प्रशासन में इस कमीशन के खेल को अपने व्यंग्यों में गोपाल चतुर्वेदी ने बखूबी दर्शाया है- 'नई सड़क को बनना था, बन गई। मंत्री जी के मुबारक हाथों से उसका उद्घाटन भी हो गया। बस कुछ दिनों बाद ही गड्ढों की दिक्कत पेश आने लगी। मोहल्ले के डॉक्टरसे कोई शिकायत करता तो वह उसे समझाते.....। आज मुल्क की हर सड़क चेचक के रोग का शिकार है। बड़ी संक्रामक प्रवृत्ति है चेचक की। आप बेकार ठेकेदार को दोष देते हैं। वह बेचारा क्या करे। ऊपर से नीचे तक सबको खुश करके सड़क का ठेका पाता है। बड़ी मेहनत कर उसे बनाता है। जैसे ही बनकर तैयार होती है कि सड़क को चेचक हो जाती है।'⁶⁵

कमीशनखोरी की सरकारी कर्मचारियों को लत सी लग गयी है इसके बिना यह कोई भी कार्य पूरी लगन से नहीं कर पाते हैं। इनके अनुसार कमीशन से हाज़मा दुरुस्त रहता है- 'कमीशन भक्षकों की मान्यता है, मुरगा-मीट या रोटी-सब्जी अपच की जनक है। बस थोड़ा-बहुत चुग लिया। कमीशन से भूख बढ़ती है, हाज़मा दुरुस्त रहता है। जितना खा सको खाओ आसानी से पचाओ।'⁶⁶

सरकारी कर्मचारी कहते हैं कि आज के इस महँगाई भरे युग में पैसा सर्वस्व है। बिना पैसे के यहाँ कुछ नहीं होता है। सरकारी वेतन तो मात्र ऊँट के मुँह में जीरे केसमान है उससे घर खर्च चल पाना तो असंभव सी बात है। पैसे की इस महत्ता को बताते हुए गोपाल जी कहते हैं-

”गली-गली में शोर है,

पैसा ही सिरमौर है।”⁶⁷

आधुनिक भारत में प्रशासन में अफसर ही कमीशन नहीं खाते बल्कि यहाँ न्याय व्यवस्था के रखवालों में भी कमीशन का रेट फिक्स है। आजकल जज भी इस कमीशनखोरी से अछूते नहीं रह गए हैं-
”उसे जज का कथन बर्दाश्त न हुआ, 'जज साहब मुँह मत खुलवाइए। नाना के आगे ननिहाल की बातें। नीचे से लेकर ऊपर तक जज कौन से दूध के धुले हैं? बेल पर छोड़ने तक की तो रेट फिक्स है। बस यह दीगर है कि प्रेस और पुलिस सबकी 'करेप्ट' की ताकत के कारण बख्श देते हैं। अब तो ऐसों के काले कारनामों भी सामने आने लगे हैं।”⁶⁸ इस प्रकार आज के समय में कानून के रक्षक न्याय करने वाले भी कमीशन लेकर कानून तोड़ रहे हैं। पैसे लेकर वे अपराधी के पक्ष में फैसला देकर उसे बाइज्जत बरी कर देते हैं और निरपराधी को सज़ा देते हैं।

आज के समय में जिसे भी अवसर मिलता है वह कमीशन खाने से नहीं चूकता। वर्तमान समय में पैसा सभी को प्यारा है चाहे वह अफसर हो, अधिकारी हो, समाजसेवक हो, नेता हो या बाबू-”वह तो हमें अब पता लगा है कि आज के सफेदपोश चोरों को अंधेरे की दरकार नहीं है। उनमें भरे उजाले में किसी को कंगाल करने की कूवत है। वह गौरैया ऐसे भोले भी नहीं हैं कि भूख की विवशता में एक दो दाने या रोटी के टुकड़े से काम चलाते। वह हर धंधे में अपना कमीशन खाते हैं। उनकी पहुँच हर क्षेत्र में है। कुछ का कमाऊ दायरा समाज सेवा है, कुछ की पैठ शासन में है। कुछ बिल्डर हैं, कुछ फिक्सर। कुछ ने रक्षा सौदे में महारत हासिल की है। सब में पैसे खाने का समान तत्त्व है। सब खाऊ बिरादरी के माननीय सदस्य हैं।”⁶⁹ अर्थात् आज के इस युग में मानवीयता समाप्त सी हो गई है। स्वयं को समाजसेवक बताने वाले भी कमीशनखोर हैं आज के इस कलयुगी युग में चोरी करने के लिए अंधेरों की आवश्यकता नहीं है बल्कि

आज समाज के सम्माननीय सदस्य दिन के उजाले में जनता की खून-पसीने की मेहनत की कमाई को दिन के उजाले में ही डकार जाते हैं।

अफसर एक ही काम के लिए पैसों की वसूली आदमी की हैसियत के हिसाब से करते हैं। जो उन्हें थोड़ा गरीब लगता है उसका काम वो कम पैसे में कर देते हैं और जो पैसे वाला दिखता है उससे मोटी रकम वसूल कर उसका काम निपटाते हैं-''यों सड़कछाप अधिकारी भी सरकार में हैं। उनकी उगाही की मानसिकता लचीली है। वह न्यायप्रिय प्रवृत्ति के हैं। पहले खिलाने वाले की क्षमता को आँकते हैं। उसी के हिसाब से खाते हैं। ऐसों के लिए काम की एवज में खाना, उसूल का मसला है। वह उसूलन खाते हैं, इसलिए कभी-कभार रियायत भले कर दें, पर खाने का हक नहीं छोड़ते हैं''⁷⁰ अर्थात् कमीशन खाना हर अधिकारी का उसूल बन गया है कभी किसी से कम कभी ज्यादा पर ये कमीशन लिए बगैर कुछ नहीं करते हैं।

बिजली का बिल कम आए इसके लिए लोग कैसे अधिकारी को घूस देते है इस पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते हैं-''ऐसा सब ऊलजलूल, घूस के बल मुमकिन है। हमारे मित्र के घर, गरमियों में ए.सी. चलता है जाड़ों में गीजर और हीटर, पर उनकी बिजली का खर्च अपने दो पंखों और चार लट्टू के बिल से कम आता है। हमारे ताज्जुब जताने पर वह खुफिया अंदाज में हमारे कान में फुसफुसाते हैं-सब ठीक हो जाएगा बस इलाके के एस.डी.ओ. से एकमुश्त नकदी का सौदा कर लो या फिर मंथली रेट का।''⁷¹ इस प्रकार घर के बिजली के बिल को कम कराने के लिए भी घूसखोरी है।

इसी प्रकार किसी बड़े खेल का आयोजन हो या किसी अन्य कार्य के लिए आयोजन स्थल की व्यवस्था करनी हो नेता, मंत्री, ठेकेदार, अधिकारी इसमें सबका अपना अलग-अलग कमीशन फिक्स होता है। कामनवेल्थ गेम में प्रतियोगिता के आयोजन में हुए घोटाले पर व्यंग्य करते हुए गोपाल जी कहते

हैं-''कॉमनवेल्थ के आयोजन में खेल भावना से आयोजक पैसा खाते हैं। जब उनका नाम ही कॉमन-वैल्थ है तो अपने श्रम-परिश्रम के एवज में उस वैल्थ से अपना हिस्सा वसूलना उनका मौरूसी हक है।''⁷²

सरकारी कर्मचारी होने के बहुत से फायदे होते हैं। एक ही काम के वो चाहे कितने पैसे वसूल सकता है। इसके लिए न कोई कानून है और न ही कोई ताकत जो उसे रोक सके। बाबूओं से काम करवाना है तो भेंट तो चढ़ाना ही होगा-''आपने तो बाबूजी के साथ काम किया है वह तो कहते थे कि सरकार और भगवान में एक ही समानता है। दोनों को प्रसाद चढ़ाना पड़ता है। कभी पटते हैं कभी नहीं।''⁷³ अर्थात् चढ़ावा चढ़ाना तो काम करवाने के लिए बहुत जरूरी है। लेकिन यह गारण्टी नहीं है कि चढ़ावा चढ़ाने के बाद काम हो ही जाएगा।

आजादी के समय नेहरू जी ने नारा दिया था आराम हराम है आम आदमी के लिए महंगाई का बढ़ना, सरकारी दफ्तरों में फैला हुआ भ्रष्टाचार वाकई में आराम को हराम कर रहा है। सुभाष चंद्र ने आजादी के बदले खून माँगा था किंतु आधुनिक सरकारी कर्मचारी अपनी मेज से फाइल को सरकाने के लिए घूस की माँग करते हैं-''अपनी अहिंसक प्रवृत्ति से विवश बाबू खून की जगह घूस का पक्षधर है और चूंकि मुल्क आजाद हो चुका है इसलिए घूस के बदले संबंध फाइल को अपनी मेज की कारा से मुक्त कर सकता है। भैंस दूसरों के ठेलने पर अपने ठौर से हिलती है, बाबू की कलम सिर्फ घूस की प्रेरणा से चलती है।''⁷⁴ अतः यदि प्रशासन में कोई काम कराना हो तो नोटों को साथ में अवश्य रखे। बिन नोट दिए प्रशासन में कोई भी काम संभव नहीं है।

इतना ही प्रशासन में प्रमोशन और तबादले दोनों के लिए ही नोटों का चढ़ावा चढ़ाना पड़ता है गोपाल जी ने इसे बड़े अनोखे अंदाज में बयां किया है-''सिद्धेश्वरी देवी ने प्रमोशन तो करवा दिया। क्या तबादला चाहते हो? कैश काउंटर पर पाँच लाख जमा करो। इच्छित तीन स्थानों के नाम लिखो। एक माह में मनोकामना पूरी होगी।

प्रमोशन का कितना चढ़ावा है? हमने जानना चाहा, उसने बताया-‘दस लाख’। हम उलटे पाँव लौट आए। अपनी अकल में आ गया। यह सिद्धेश्वरी का नहीं भ्रष्टेश्वरी देवी का पूजाघर है।’⁷⁵

यहाँ पर अफसर बाबू ही नहीं बल्कि कार्यालय में चपरासी भी रिश्त लेने से पीछे नहीं रहता। उसे जब जहाँ मौका मिला अपनी चाय-पानी का खर्चा निकाल ही लेता है-’साहब से मिलना है क्या? दस रुपया लगेगा’ उन्होंने घोषणा की। हमने इनकार में सिर हिलाया।

’यह सरकार का दफ्तर है म्युनिस्पैलिटी का ‘पारक’ नहीं जो टहलते चले आए’ उन्होंने हमें खदेड़ा’⁷⁶

इस प्रकार गोपाल जी अपने व्यंग्यों के माध्यम से आम जनता को सचेत करना चाहते हैं कि किसी भी सरकारी दफ्तर में जाने के लिए उसकी जेब का नोटों से भरा होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि अपने काम को करवाने के लिए उसे हर कदम पर सरकारी कर्मचारियों को चढ़ावा चढ़ाना होगा। प्रशासन में घूसखोरी, रिश्त का खेल बड़ा ही अनोखा है कहीं पर सरकार औपचारिक रूप से कर के नाम पर पैसे वसूलती है और कहीं पर उसी सरकार के कारिन्दे कार्य सिद्धि के लिए अनौपचारिक रूप से पैसे की वसूली करते हैं। दोनों ही सूरतों में आम जनता को इससे रूबरू होना पड़ता है। गोपाल जी ने सरकार एवं प्रशासन में चल रही इस घूसखोरी का भंडाफोड़ अपने व्यंग्यों में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया है।

4.2.4 दफ्तरशाही

आज के युग में ‘दफ्तर’ ऐसा शब्द है जो आराम करने का केंद्र स्थल है। यहाँ काम के अतिरिक्त सभी कार्य होते हैं। मसलन पान खाना, समोसे खाना, घूमना फिरना इत्यादि। वैसे तो सरकारी दफ्तरों का खुलने का समय सुबह 10 बजे का है, पर यदि कोई व्यक्ति अपने काम के लिए 10 बजे दफ्तर में पहुँच गया तो माहौल कुछ इस प्रकार का रहता है-’मुझे लगा कि बिहार के बुद्धिजीवियों पर बुद्ध का बकायदा

प्रभाव है। वह अपना सिद्धांत समझाने मुझे पटना के एक सरकारी दफ्तर में ले गए। इस बजने के काफी बाद कार्यालय खाली पड़ा था। बस कुछ चूहे मेजों पर मटरगश्ती कर रहे थे और कबूतर छत पर गुटरगूँ।”⁷⁸ अर्थात् दफ्तर खुलने का समय तो दस बजे का है। किंतु कर्मचारियों का आना जाना 12 बजे तक होता है। इतना ही नहीं दोपहर के तीन बजे तक यह दफ्तर खाली भी हो जाते हैं मतलब आज के कर्मचारी इतने कार्य कुशल हैं कि सात घंटे का काम वो चार से पाँच घंटे में ही निपटा देते हैं। दफ्तर संस्कृति में जो काम टालने की प्रवृत्ति होती है उसका चित्रण गोपाल चतुर्वेदी ने बहुत ही सुंदर ढंग से इन पंक्तियों में किया है-

”मेरी अरथी के संग रखना,

चंद फाइलें कुछ हाला

राम नाम का जाप न करना

जपना सर सर माला

मेरी अस्थि विसर्जित करके

दफ्तर में लिखवा देना

जब तक संभव था

जीवन में इसने हर निर्णय टाला।”⁷⁹

दफ्तर के अंदर प्रवेश करते ही चारों ओर 'सर' का स्वर गूँजता नजर आता है। अफसर का अपना अलग ही रौब रूतबा रहता है किंतु रिटायर होने पर उसी अफसर की पूँछ अपने ही ऑफिस में नहीं होती है-“आप किसी भी दफ्तर में जाएं तो साहब के कमरे के सामने बैठा ऊँघता द्वारपाल आपको देखकर गुर्गता है पर किसी भी सर के नजर आते ही दुम हिलाने लगता है।..... वो समय के साथ साहब भी बदल जाता है। वही सर्वशक्तिमान व्यक्ति जो दफ्तर के जंगल में भूखे शेर की तरह दहाड़ता है, रिटायर होकर बिना 'सर' की स्वास्थ्यवर्धक खुराक कके भीगी बिल्ली बना अपने दिन गिनने लगता है।”⁸⁰ अर्थात् दफ्तर में कुर्सी का बड़ा ही महत्त्व है जब तक व्यक्ति कुर्सी पर विराजमान है 'सर' 'सर' कहकर सभी उसका सम्मान करते हैं और कुर्सी से हटते ही यानी रिटायर होते ही लोग उसे पहचानते तक नहीं हैं।

इस प्रकार प्रशासन का हर कदम पर भ्रष्टाचार फैला हुआ है। कहीं कर्मचारी सरकारी दफ्तरों से बिना काम किए वेतन लेते हैं। तो कहीं पर काम करने के लिए रिश्तत दफ्तर में लोग काम कम करते हैं और कैण्टीन का प्रयोग अधिक। इस प्रकार दफ्तर में फैली असंगतियों का गोपाल जी ने अपने व्यंग्य में उजागर किया है। एक प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर उन्होंने प्रशासन और दफ्तर में फैली सूक्ष्म से सूक्ष्म विसंगतियों एवं विषमताओं को देखा और समझा और पाठकों को इससे अवगत कराने का पूर्ण प्रयास किया है। प्रशासन संबंधी इनके व्यंग्य जहाँ एक ओर गुदगुदाते एवं हँसाते हैं वहीं दूसरी ओर मीठी चोट भी करते हैं।

संदर्भ-सूची :

1. कन्हैया लाल नंदन, गोपाल चतुर्वेदी की शान में एक गुस्ताखी, व्यंग्य यात्रा पत्रिका, संपादक: 73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली, 110063, अंक: 12-13, जुलाई-दिसम्बर: 2007, पृ.-48.
2. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-95.
3. शरद जोशी, जीप पर सवार झल्लियाँ, सं. 1990, राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृ.-25.
4. गोपाल चतुर्वेदी, जमीन से जुड़े इंसान और नेता, साहित्य अमृत, संपा. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2, जनवरी 2015, पृ.-36.
5. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 32.
6. अमृत राय, बतरस, सं. 2013, साहित्य अकादमी, 35, रवींद्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110001, पृ.-20.
7. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, सं. 2012, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.-37.

8. रवींद्रनाथ त्यागी, मेरी शोक सभा, सं. 2009, हिंदी बुक सेंटर, 4/5 बी, आसफ अली रोड, नियर डिलाइट सिनेमा, नई दिल्ली-2, पृ.-50.
9. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-152.
10. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-158.
11. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 55.
12. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-105.
13. हरिशंकर परसाई, विकलांग श्रद्धा का दौर, सं. 2015, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ. 23-24.
14. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-107.
15. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, सं. 2011, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ.-15.

16. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-158.
17. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-105.
18. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, सं. 1997, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-129.
19. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, , प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-161
- 20 गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 181 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-78.
21. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, पृ.-107.
22. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, सं. 2012, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.-39.
23. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 41-42.

24. वही, पृ.-175.
25. गोपाल चतुर्वेदी, खंभों के खेल, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़,
नई दिल्ली, पृ.-163.
26. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार,
दिल्ली-110006, पृ.-144.
27. संपा. काका हाथरसी तथा गिरिराज शरण अग्रवाल, सं. 1993, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध,
प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ. 62-63.
28. गोपाल चतुर्वेदी, दुम की वापसी, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड़,
नई दिल्ली, पृ.-80.
29. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़,
नई दिल्ली, पृ.-36.
30. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, सं. 2012, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन
शाहदरा, दिल्ली-110032, पृ.-195.
31. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, , प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली
रोड़, नई दिल्ली, पृ.-91.
32. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,

दिल्ली -110006, पृ.-89.

33. शरद जोशी, प्रतिदिन (दो), सं. 2005, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 40.
34. बनारसीलाल चतुर्वेदी, चैबे जी की डायरी, सं. 1989, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-124.
35. गोपाल चतुर्वेदी, दुम की वापसी, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 102-103.
36. हरिशंकर परसाई, रानी नागफनी की कहानी, सं. 1962, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ.-119.
37. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ.-51.
38. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ.-57.
39. वही, पृ.-57.
40. बनारसीलाल चतुर्वेदी, चैबे जी की डायरी, सं. 1989, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ.-4.
41. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,

दिल्ली -110006, पृ.-157.

42. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सं. 2002, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाजार,

दिल्ली-110006, पृ.-202.

43. हरिशंकर परसाई, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, सं. 2000, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23,

दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.-37.

44. लतीफ घोंघी, संकटलाल जिंदाबाद, सं. 2010, हिंदी बुक सेंटर, 4/5 बी, आसफ

अली रोड, नियर डिलाइट सिनेमा, नई दिल्ली-2, पृ.-43.

45. संपा. कमल किशोर गोयंका, रवींद्रनाथ त्यागी, सं. 1987, प्रतिनिधि रचनाएं, पराग

प्रकाशन, आई-2/16, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-2, पृ.-149.

46. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 181 इन्स्टीट्यूशनल एरिया,

लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-61.

47. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत के कालू, सं. 1993, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली

रोड, नई दिल्ली, पृ.-110.

48. कन्हैयालाल नंदन गोपाल चतुर्वेदी की शान में एक गुस्ताखी, व्यंग्य यात्रा पत्रिका, संपा.

प्रेमजनमेजय, 73 साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली 63,

जुलाई-दिसम्बर 2007 अंक.

49. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार,
दिल्ली-110006, पृ.-152.
50. वही, पृ.-104.
51. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30
ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ.-96.
52. वही, पृ. 96-97.
53. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,
दिल्ली -110006, पृ.-62.
54. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ. 88-89.
55. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़,
नई दिल्ली, पृ.-54.
56. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,
दिल्ली -110006, पृ.-118.
57. संपा. कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे, हरिशंकर परसाई, चुनी हुई रचनाएं, भाग दो, सं. 2013

- वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, पृ.-128.
58. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ. 10-11.
59. वही, पृ.-75.
60. वही, पृ.-47.
61. वही, पृ.-155.
62. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, सं. 2002, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, पृ.-69.
63. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, सं. 2010, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., एक्स 30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली-110020, पृ. 69-70.
64. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-66.
65. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ. 52-53
66. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली -110006, पृ.-62.

67. वही, पृ.-58.

68. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सं. 2014, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी चावड़ी बाजार,
दिल्ली-110006, पृ.- 39.

69. वही, पृ.-41.

70. वही, पृ. 50-51.

71. वही, पृ.-67.

72. वही, पृ.-83.

73. वही, पृ.-129.

74. वही, पृ.-151.

75. गोपाल चतुर्वेदी, देश में नए पूजाघर, साहित्य अमृत, संपा. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, 4/19,
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2, दिसंबर 2011, पृ.-39.

76. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, सं. 2011, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज,
नई दिल्ली-110002, पृ.-151.

77. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, सं. 2010, ज्ञान गंगा, 205-सी, चावड़ी बाजार,
दिल्ली -110006, पृ. 91.

78. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, सं. 2011, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज,

नई दिल्ली-110002, पृ.-34.

79. व्यंग्य यात्रा, संपा. प्रेमजनमेजय, बातचीत, 73, साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम बिहार नई

दिल्ली-63, जुलाई-दिसम्बर 2007, अंक 12-13, पृ.-38.

80. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, सं. 2008, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया,

लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पृ.-93.

पंचम अध्याय

गोपाल चतुर्वेदी की व्यंग्य शैली: एक आलोचनात्मक अध्ययन

5.1 शैली:

‘शैली’ शब्द से अभिप्राय किसी काम को करने के तरीके या ढंग से है। हिंदी शब्दकोश के अनुसार शैली का अर्थ है - “कार्य करने की रीति या पद्धति कला साहित्य आदि की रचना, अभिव्यक्ति की रीति, अभिव्यक्ति का कौशल।”¹ इस प्रकार शैली से किसी व्यक्ति, रचनाकार आदि के कार्य करने के ढंग का पता चलता है।

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के अनुसार शैली से अभिप्राय - “चाल, ढब, ढंग, प्रणाली, रचना का प्रकार।”²

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार - “शैली, शब्द अंग्रेजी के ‘स्टाइल’ का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिंदी में आया है... प्रसिद्ध यूनानी विचारक अफलातून या प्लेटो का यही मत है ‘जब विचार को तात्त्विक रूपाकार दिया जाता है तो शैली का रूप होता है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार स्तान्धाल ने भी शैली को अच्छी रचना का गुण मानते हुए विवेचन किया है। उसके विचार में शैली का अस्तित्व इसमें निहित है कि दिए हुए विचार के साथ उन सब परिस्थितियों को जोड़ दिया जाए जो कि उस विचार के अभिमत प्रभाव को संपूर्णता में उत्पन्न करने वाली है। इससे मिलता जुलता ही बर्नार्ड शाह का यह विचार है कि “प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति ही शैली का अर्थ और इति है। हमारी समझ में शैली अनुभूत विषय वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषय वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।”³

अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाना ही व्यंग्यकार का कार्य है। अतः वह भाषा के किसी एक रूप में अपना मंतव्य प्रकट करने के लिए विचारों को प्रत्यक्ष रूप प्रदान करता है, उसे शैली कहते हैं। शैली में व्यंग्यकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है। व्यंग्य विधा में शैली का वह स्थान है जो मनुष्य में उसके स्वरूप, वेशभूषा तथा सौंदर्य का होता है। शैली भाषा में भावाभिव्यक्ति का प्रमुख तत्त्व है। साहित्य में अन्य विधा की भाषा शैली से व्यंग्य विधा की भाषा शैली में पैनापन अधिक है। कुल मिलाकर व्यंग्य विधा की भाषा शैली कहीं भी छद्मी तथा बनावटी नहीं है। उसके प्रत्येक शब्द तथा वाक्य भी प्रहारी, चुस्त, सशक्त, सटीक, सार्थक और परिपूर्ण दिखाई देते हैं।

गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्य लेखन में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। इन्होंने व्यंग्य की सम्प्रेषणीयता के लिए सभी प्रचलित साहित्यिक विधाओं को अपनाते हुए वस्तु विन्यास में गति या विकास लाने के लिए भिन्न-भिन्न शैलियों का उपयोग किया है। शैली वैविध्य के कारण गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य अनूठापन और ताज़गी लिए हुए होते हैं। इन्होंने अपने व्यंग्य लेखन में वर्णनात्मक, विवरणात्मक, आलोचनात्मक, पत्रात्मक, साक्षात्कार शैली, स्वप्न शैली, मिथकीय, पैरोडी, इंटरव्यू, पुराण, रेखाचित्र आदि लेखन शैलियों का प्रयोग किया है।

5.1.1 वर्णनात्मक शैली :

इस शैली में सहज तथा सरल भाषा का उपयोग किया जाता है और व्यंग्यकार विभिन्न पात्रों, वस्तुओं, दृश्यों तथा पदार्थों का चित्रण तटस्थ होकर करता है। वह किसी के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होता है, विसंगत स्थिति की वास्तविकता का चित्रण करना ही उसका लक्ष्य होता है। सारी विसंगतियों का तटस्थ वर्णन करते हुए व्यंग्यकार बीच-बीच में अपने विचार, अपनी समीक्षाएँ एवं मान्यताएँ भी प्रकट करता चलता है।

‘हम वकील क्यों न हुए’ व्यंग्य निबंध में गोपाल चतुर्वेदी की वर्णनात्मक शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है - “यह उन दिनों की बात है जब देश तो स्वतंत्र हो गया था, पर पिता जैसे बुजुर्गों से नई पौध आजाद नहीं हुई थी। हमारे परिवार पर बाबू-मानसिकता इस कदर हावी थी कि बालक या पुरुष होने का पर्याय ‘बाबू’ कहलाता था। पिता जी को दादी ‘बाबू’ कहती थीं और हमें ‘छोटे बाबू’! हमसे छोटे भाई ‘बबुआ’ थे। हमें यकीन है कि राधेश्याम जी अपने घर में ‘वकील बाबू’ रहे होंगे और उनके पुत्र मझले और छोटे वकील बाबू तकदीर भी अपने आड़े आ गई। हमने पहले ही प्रयास में एम.ए. पास कर लिया। वरना पढ़ाई के दायरे में हमारे प्रयाग विश्वविद्यालय में लखनऊ के तकल्लुफ का दस्तूर था। कुछ लोग मुस्तकिल विश्वविद्यालय में जमें रहते। दो-तीन एम.ए. एकाध किसी विदेशी भाषा का डिप्लोमा, एक अदद ला करते-करते माह दस साल पलक झपकते निकल जाते। भाग्यशाली यूनियन के नेता बन चंद हड़ताले, यूनियन का फड़ और मौके-बेमौके उगाहा हुआ चंदा निगल डकार भी न लेते। कुछ प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग्य आजमाते।”⁴

एक अन्य स्थान पर उद्घाटन का दिन व्यंग्य निबंध में भी वर्णनात्मक शैली का एक अच्छा उदाहरण देखिए - “युद्ध-स्तर पर तैयारियाँ हो रही थीं। शामियाना लग चुका था। स्थानीय रेल मंडल अधीक्षक सक्सेना को महाप्रबंधक श्री बनर्जी का विशेष निर्देश था कि समारोह शानादार होना चाहिए और सुरुचिपूर्ण भी। मंत्री जी पहली बार इस क्षेत्रीय रेल के किसी उत्सव में पधार रहे थे। पूरा रेल प्रशासन इस प्रयास में जुटा था कि मंत्री महोदय समारोह की मधुर और यादगार स्मृतियाँ लेकर जाएँ। श्री सक्सेना पिछले एक हफ्ते से अपने मंडल के विभागीय अधिकारियों के साथ उद्घाटन समारोह के हर पहलू पर सविस्तार चर्चा कर रहे थे। इस बीच दो दुर्घटनाएँ हो जाने से उनका समय जो पूरी तरह से समारोह को अर्पित था, नाहक दुर्घटना स्थल तक आने-जाने में नष्ट हो गया। आज वह चिंतित थे कल परीक्षा की घड़ी है।”⁵

इसी प्रकार डील सोलर कूकर की, किस्सा छबीलदास का, फार्महाउस के लोग, दाँत में फँसी कुरसी, सौन्दर्य हाट, बारात बनाम राजनीति, गंगा से गटर तक आदि व्यंग्य निबंध में वर्णनात्मक शैली के उदाहरण देखने को मिलते हैं।

5.1.2 पत्र शैली :

पत्र शैली में स्वयं लेखक के या रचना के अन्य पात्र के पत्रों द्वारा वस्तु-विन्यास प्रस्तुत किया जाता है। गोपाल चतुर्वेदी ने फाइल पढ़ि-पढ़ि पुस्तक में पत्र शैली के माध्यम से अनेक विसंगतियों पर प्रकाश डाला है। प्रशासन में किस प्रकार एक छोटे से काम को करने के लिए पत्रों के माध्यम से एक दूसरे पर काम को टाला जाता है। इसका उदाहरण पत्र शैली में पशुपालन विकास व्यंग्य लेख में गोपाल जी इस प्रकार देते हैं -

समग्र आर्थिक विकास की एक रूपरेखा फाइल के कुछ अंश

पशुपालन विकास की आवश्यकता पर सरकार ने 16.12.83 को सचिवों की एक समिति का गठन किया था। समिति को निर्देश था कि वह अपनी सिफारिशों मंत्रिमण्डलीय उपसमिति के समक्ष छः माह की अवधि में प्रस्तुत करे। इसी बीच एक सचिव ने अवकाश ग्रहण कर लिया, दूसरे की सेवाएँ उनके राज्य को सौंप दी गई। समय की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए कमेटी ने तीसरे सदस्य से इस समस्या के गहन अध्ययन के लिए यूरोप, अमेरिका, जापान आदि के दौरे के बाद विस्तृत सिफारिशें दी तो रिपोर्ट 'क' पर अवलोकनार्थ प्रस्तुत है।

कबीना सचिव कृपया देखें।

रा.म. तिवारी

सहायक

3.1.85

अवर सचिव,

अब आवश्यक है कि एक स्वतः पूर्ण टिप्पणी के साथ इस महत्वपूर्ण रिपोर्ट का सार संक्षेप हम मंत्रिमण्डल उप-सचिव के विचारार्थ पेश कर दें।

क. वेकटेशन

4.1.85

संयुक्त सचिव

अवर सचिव का प्रस्ताव स्वीकृति के लिए देख लें। इसके पश्चात् एक सप्ताह के अंदर बाकी की कार्यवाई पूर्ण कर मिसिल फिर से पेश की जाएगी।

भ.क. मसीन

4.1.85“6

पेंशन पंचायत और प्रशासन, प्रशासन के उसूल, सरकार और समोसा, कागज और चूहा, देश के लिए दौड़, बे-कार दर्शन आदि लेख गोपाल चतुर्वेदी के पत्र शैली में लिखे व्यंग्य निबंधों के अंतर्गत आते हैं।

“व्यंग्य की सम्प्रेषणीयता के लिए पैरोडी भी एक सशक्त माध्यम है। इस शैली में रचनाकार के मूल शब्दों के उलट-पलट कर व्यंग्य उभर जाता है। हिंदी में कतिपय मुक्तक पदों को छोड़कर ऐसी व्यंग्य रचनाएँ नहीं

मिलती हैं जो पूरी पैरोडी शैली में लिखी गई हों। लेकिन व्यंग्य रचनाओं के बीच-बीच में इस शैली का प्रयोग अवश्य हुआ है।“ (डॉ. ए.एन. चंद्रशेखर रेड्डी, शबरी संस्थान 1/5971, कबूल नगर, शाहदरा दिल्ली 110032 संस्करण 1989 पृ. 138)

5.1.3 पैरोडी शैली :

डॉ. ए. एन. चंद्रशेखर रेड्डी के अनुसार “व्यंग्य की संप्रषणीयता के लिए पैरोडी भी एक सशक्त माध्यम है। इस शैली में रचनाकार के मूल शब्दों को उलट-पुलट कर व्यंग्य उभारा जाता है। हिंदी में कतिपय मुक्तक पदों को छोड़कर ऐसी व्यंग्य रचनाएँ नहीं मिलती हैं, जो पूरी पैरोडी शैली में लिखी गयी हो। लेकिन व्यंग्य रचनाओं के बीच-बीच में इस शैली का प्रयोग अवश्य हुआ है।”⁷ वहीं वागीश सारस्वत के अनुसार ‘पैरोडी’ मूलतः अंग्रेजी भाषा का शब्द है। हिंदी भाषा में ‘पैरोडी’ शब्द को यथावत् स्वीकार कर लिया गया है। किसी स्थापित एवं प्रसिद्ध रचना की मूल अनुकृति में तबदीली करके उसी शैली में लिखी गई रचना को पैरोडी कहा जाता है। पैरोडी में हास्य और व्यंग्य की सर्जना होती है। पैरोडी का प्रयोजन हास्य की सृष्टि करते हुए विडम्बनाओं पर प्रहार करना ही होता है। पैरोडी सरसता के साथ हल्के-फुल्के अंदाज में उड़ाई गई खिल्ली या मजाक होता है।⁸ गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्य निबंधों में जहाँ-तहाँ आवश्यकतानुसार पैरोडी शैली का इस्तेमाल किया है। कहीं उन्होंने अपने व्यंग्य निबंधों के शीर्षक की पैरोडी की। जैसे देश फाइलों का दर्पण है, गंगा से गटर तक, कविता की कूड़ा विधा, धाँधलेश्वर, हमारे राष्ट्रीय शौक, कबीर और कुर्सी दर्शन, जात पूछियो साधु की, भैंस और सरकार, भूतों का विद्रोह, नानक दुखिया सब संसार, कब होंगे काबयाब, मुल्क मचाए शोर आदि।

लक्ष्मी जी की आरती की पैरोडी का उदाहरण देखिए -

“लक्ष्मी मैया, वर दे।

दूजे का सब सोना, चाँदी,

अपने घर में भर दे।”⁹

इसी प्रकार उन्होंने देशभक्ति गीत हम होंगे कामयाब की पैरोडी की है-

“कब होंगे कामयाब,

कब होंगे कामयाग,

मन में है सवाल

कब होंगे कामयाब।”¹⁰

जनहित के नाम पर भ्रष्टाचार का काम ऊपर कुर्सी पर विराजमान लोगों के इशारे पर होते हैं। राम नाम की लूट पर इस जनहित की पैरोडी बहुत ही मजेदार है-

“बस जनहित के नाम पर

है फंडो की छूट

सत्त का जो है सगा

लूट सके सो लूट”¹¹

इसके अतिरिक्त अन्य और भी पैरोडी शैली के उदाहरण हैं जो निम्नलिखित है-

“आम आदमी को भलाई दे,

उसको दूध-मलाई दे,

भ्रष्ट का काम तमाम करो,

प्रजातंत्र का नाम करो।

जल्दी गति शैतान की-

जय हो हिंदुस्तान की।”¹²

“भूख से न मरता है,

आग से न जलता है।

सूखे में जिंदा है,

बाढ़ में न डूबा है।

भारत का आदमी,

वाकई अजूबा है।”¹³

“देश की इज्जत का रखवारा

सबका नेता भैया प्यारा।”¹⁴

“पृथ्वी है प्लेट

इस पर से खाओ

चाहे कटलेट या

आमलेट।”¹⁵

गोपाल चतुर्वेदी ने जीवन-पर्यंत प्रशासनिक पद पर रहते हुए भी सभी सरकारी घटनाओं के प्रत्येक पहलू पर पैनी नजर रखी और मौका पड़ने पर उसे कलमबद्ध भी किया। कुछ व्यंग्य विनोद के साथ इन्होंने निम्नलिखित प्रकार से ‘मधुशाला’ की पैरोडी की है-

“मेरी अर्थी के संग रखना

चंद फाइलें, कुछ हाला

राम नाम का जाप न करना

जपना सर-सर की माला

मेरी अस्थी विसर्जित करके दफ्तर में लिखवा देना

जब तक संभव था

जीवन में इसने हर निर्णय टाला।”¹⁶

इस प्रकार जहाँ-जहाँ आवश्यकता पड़ी सामाजिक विसंगतियों को दिखाने के लिए गोपाल चतुर्वेदी ने अपनी रचनाओं में पैरोडी शैली के रूप में इन विद्रूपताओं पर व्यंग्य किया।

5.1.4 संवाद शैली :

गोपाल चतुर्वेदी ने अपने व्यंग्य साहित्य में संवाद शैली का खूब प्रयोग किया। इनके अधिकतर व्यंग्य लेखों में संवाद शैली देखने को मिलती है। संवाद का यह प्रयोग व्यंग्य को संप्रेषण के धरातल पर तो अद्वितीय बनाता ही है शिल्प की दृष्टि से भी अनूठा बना देता है। व्यंग्य निबंधों में संवाद शैली का प्रयोग गोपाल चतुर्वेदी की विशिष्टता है। हालांकि परंपरागत कसौटी पर कसकर देखने वाले आलोचक इसे वैचित्र्य की संज्ञा भी दे सकते हैं। लेकिन यह प्रयोग कलाकृति की आवश्यकता है। यह शिल्पगत प्रयोग व्यंग्य को क्षमतावान बनाता है। परंपरा के अनुसार अगर देखे तो साहित्य की कहानी तथा नाटक में ही कथोपकथन का प्रयोग होता रहा है; लेकिन गोपाल जी ने अपने व्यंग्य निबंधों में इसका बड़ा ही सटीक प्रयोग किया है। इस कथोपकथन के प्रयोग से पाठकों में रचना के प्रति अपनापन जागृत होता है।

गोपाल चतुर्वेदी के ज्यादातर निबंधों में कथोपकथन को प्रयोग किया हुआ है। कुछ निबंधों में कथोपकथन की प्रक्रिया अत्यल्प है जबकि अनेक निबंधों में कथोपकथन या संवाद बड़े पैमाने पर होता है। इनके कुछ व्यंग्य तो सिर्फ संवाद में ही पूर्ण हो जाते हैं। कूड़े का समाजवाद व्यंग्य लेख में इसकी संवाद शैली का नमूना देखिए-

“अखबारों में छप रहा है कि दिल्ली हैजे की चपेट में है। क्या यह सच है?”

हो सकता है

आपने कोई केस देखा क्या?

“हाँ! अस्पताल में कै-दस्त के कई मरीज आकर स्वर्ग सिधार गए। पर बदहजमी, मिलावट कच्ची शराब, कुपोषण आदि कई कारणों से मतली आ सकती है। ऐसा आवश्यक नहीं कि हैजा की हो।”

पर अभी तक इतने लोग मर तो नहीं रहे थे ?

अरे भई! मौत का क्या ठिकाना। भले-चंगे व्यक्ति बैठे-ठाले चल बसते हैं।“

लेकिन आप तो हैजे की सुइयां लगा रहे हैं। लाखों लगा भी चुके हैं।“

“यह तकनीकी बातें आप जैसों की समझ में आने से रहीं। बुखार आए तो अक्सर मलेरिया की दवा भी देते हैं। टीका चिकनपाक्स का भी लगाते हैं, टी.बी. और टायफाइड का भी। इसका यह मतलब तो नहीं कि इनमें से सारी बीमारियाँ हैं।“

तो आप यों ही सताने के शौक में बदन को छली करते हैं।

यही तो आपको पता नहीं है। कई बार इंजेक्शन बचाव के लिए लगाए जाते हैं। आपने अपनी ‘विल’ लिखवा दी।

जी हाँ

ज्यों जिंदा रहने पर आपने ‘विल’ बनवा ली, हम बहुधा भविष्य का खयाल कर सुइयां लगा देते हैं जिससे न बीमारी हो न आपकी जान जाए। अपना समझकर मैं आपको राज की बात बताता हूँ। कोई भी मरीज यदि दवा के बावजूद जिंदा बच निकले तो समझ लो कि किसी दुआ का असर है।”¹⁷

गोपाल चतुर्वेदी छोटे-छोटे कथोपकथन के माध्यम से संवाद शैली का प्रयोग करते हैं। इसका उदाहरण गाँधी बनाने का संकल्प व्यंग्य लेख में इस प्रकार देखा जा सकता है-

“कभी मौका पड़ा तो लोन दिलवा दोगे, भैया।

इधर लोन-मेले बंद हैं। पर क्यों चाहिए।

बच्चों की स्कूल-यूनिफार्म, किताबें, घर के राशन-पानी के लिए।

हम योजनाओं के लिए उधार देते हैं रोजमर्रा के खर्चों के लिए नहीं।

पर सरकार तो कर भी वसूलती है और कर्ज भी।”¹⁸

गोपाल चतुर्वेदी के अधिकतर व्यंग्य लेख में कहीं कम हो कहीं अधिक संवाद शैली का प्रयोग हुआ है। उनके व्यंग्य लेख देख फाइलों का दर्पण है। दुम की वापसी, फ्री के फायदे, लाल आँख के फायदे, छोटे नेता और नाक, कुत्ता चाँद पर भूँकता क्यों है, हमारे राष्ट्रीय शौक आदि में कहीं-कहीं संवाद शैली का प्रयोग हुआ है जबकि प्रमोशन और पीएच.डी. तकनीक पालिटिक्स और पटना कूड़े का समाजवाद, दहेज की दरकार, बिल का सदाचार आदि व्यंग्य लेख पूरे ही संवाद शैली में लिखे गए हैं।

5.1.5 साक्षात्कार शैली :

साक्षात्कार शैली की तरह स्वयं लेखक या मैं पात्र अन्य आदमी से मुलाकात की घटना का विवरण देता है। इस दृष्टि से यह शैली विवरणात्मक शैली का एक अंग है। इस शैली में दो पात्रों के या पात्रों के एक समूह के बीच संवादों के सहारे वस्तु का प्रस्तुतिकरण किया जाता है। इस शैली की अधिकांश रचनाओं में दो पात्रों का ही चित्रण होता है। निबंध की शुरूआत में विवरणात्मक शैली की तरह रचना में पात्र का विवरण देता है।

इस शैली में एक या अधिक व्यक्ति दूसरे एक व्यक्ति से किसी निश्चित स्थान और समय पर बैठकर कुछ प्रश्न करते हैं जिसका उत्तर सामने बैठे व्यक्ति से अपेक्षित होता है। गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य ‘चुनाव वर्ष: कार्यकर्ताओं की तलाश’ पूरा ही साक्षात्कार शैली पर आधारित है। जहाँ चुनाव का समय नजदीक आ गया है। पार्टी के नेता ऐसे कार्यकर्ताओं की तलाश में हैं जो उनकी चापलूसी भी कर सकें और जनता

को भरमा भी सकें। अतः इन कार्यकर्ताओं की तलाश में वे साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्त करते हैं। एक नमूना देखिए-

“दूसरे कैंडिडेट को बुलाया गया।

आप पढ़े-लिखे हैं।

पाँच साल पहले बी.ए. किया था।

क्या करते हैं?

‘पैसे लेकर जरूरतमंद की अर्जी लिखता हूँ। मुकदमों में पुलिस की ओर से गवाही देता हूँ। जनता के हित में खाने-पीने की दुकानों का माल चखकर उनके स्तर पर निगरानी रखता हूँ। सर! ठसी तरह से समाज सेवा के कामों में वक्त गुजर जाता है।

आपका किस वाद में यकीन है।

जो भी आपका वाद हो सर!

....देश को नेता कैसा हो, बड़े नेता ने पूछा।

बिल्कुल आपके जैसा हो प्रत्याशी ने उत्तर दिया।”¹⁹

इसी प्रकार ‘भगवान न हो पाने का संत्रास’ लेख में गोपाल जी ने साक्षात्कार शैली के माध्यम से ही आधुनिक मानसिकता में व्याप्त जहालत, अज्ञान और मूर्खता को बड़े ही कौशल से प्रस्तुत किया है-

“आपने तुलसी दास का नाम सुना है?

जी नहीं

रामचरितमानस का

क्या वह रामायण जैसी है?

जी हाँ

सुना ही नहीं। टी.वी. पर देखा भी है।

इसके लेखक कौन थे ?

सर रामानन्द सागर।

राम के बारे में कुछ बता सकते हैं?

बिल्कुल सर! राम का रोल अरुण गोविल ने किया है। पहले फिल्मों में छोटे-छोटे रोल करते थे। अब तो स्टार बन गए हैं। उनकी बीवी सीता को रावण उठा ले गया। उन्होंने ढेर सारे बंदर जोड़े और टेक्नीकलर तीरों की बौछार कर रावण को मार ही डाला। बीच-बीच में समय निकालकर गोविल राम ने चुनाव प्रचार भी किया।²⁰

इस प्रकार अपने व्यंग्य लेखों में गोपाल चतुर्वेदी ने आधुनिक मानसिकता की जड़ता और मूर्खता को साक्षात्कार शैली के माध्यम से दिखाने का एक सफल प्रयास किया है।

5.1.6 प्रश्नोत्तर शैली :

यह साक्षात्कार शैली से मिलती-जुलती शैली है। परंतु साक्षात्कार शैली से थोड़ा अलग इस शैली में सामान्य संवाद प्रश्न और उत्तर के रूप में होता है। साक्षात्कार शैली की तरह इसमें विवरण की

आवश्यकता बिल्कुल भी नहीं होती। इस शैली में दो पात्रों के बीच के संवाद के सहारे परिस्थितियों का प्रस्तुतीकरण और स्पष्टीकरण हो जाता है। गोपाल चतुर्वेदी के अधिकांशतः व्यंग्य निबंधों में प्रश्नोत्तरी शैली के उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

“आपके लाडले क्या कर रहे हैं? मैंने एक भजिया आपरेशन में दखल दिया।

सरकार में है।

वह दफ्तर में जाते हैं? मैंने सवाल किया।

क्यों? उन्होंने सवाल दागा।

इधर संदीप दिनभर उनके साथ मटरगश्ती करते हैं।

आपको कोई एतराज है? उन्होंने पंचम का आलाप किया।

नहीं तो! पर आजकल संदीप कुछ गाली-गलौच ज्यादा करते हैं। हम तो चाहते हैं कि आपके बेटे उन्हें समझाएँ शायद उनकी मान लें।

गनीमत है। हरीश का ख्याल है कि लातों की आदी सरकार बातों से काबू नहीं आएगी।“21

अपना बड़ा न बनने का दर्द, खम्भा होन की नियति, दादा का अहिंसा-उसूल, देश फाइलों का दर्पण है आदि व्यंग्य निबंधों में गोपाल चतुर्वेदी ने प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया है।

5.1.7 अन्योक्ति शैली :

जिस आदमी की पोल खोलनी है। उससे बचकर उसके साथ उल्टे रागात्मक संबंध बनाए रखना, व्यंग्यकार के लिए आवश्यक होता है। असल में व्यंग्य की महिमा इसी में रहती है। यह बचने की प्रवृत्ति,

वकृता के साथ कहने वाली प्रवृत्ति व्यंग्यकार को अनेक तरकीबें अपनाने को बाध्य करती हैं। इन तरकीबों में अन्योक्ति भी एक है। अन्योक्ति में व्यंग्यकार विसंगतियों को और किसी पात्र मुख्यतः जानवरों और पक्षियों पर लागू करके अपने कथ्य को सम्प्रेषित करता है। कभी-कभी राजाओं की कहानी, पौराणिक कथा आदि के माध्यम से भी व्यंग्य का सफल सम्प्रेषण किया जा सकता है।

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य लेख ‘आदमी और गिद्ध’ में इस शैली का उदाहरण मिलता है। आधुनिक जीवन की अनेक विकृतियों पर इस लेख में कुत्ते की बातों के द्वारा टिप्पणी की गई है। गिद्ध आपस में बात कर रहे हैं- ‘‘गिद्ध डैने फैलाए आकाश के चक्कर काट रहे हैं, जैसे छोटे जहाज किसी शहर की टोह ले रहे हों। गिद्धों की नजर धरती पर एक घर पर टिकी है।

एक किशोर गिद्ध ने दूसरे से पूछा ‘‘अभी कितनी देर है।?’’

बुजुर्ग ने उसे सलाह दी ‘‘इंतजार और अभी और अभी।’’

किशोर ने रूखे स्वर में असंतोष जताया, ‘‘आपको तो सिर्फ इंतजार सूझता है।

यहाँ कल से आँखें गड़ाए हैं। यह इंसान है कि टें बोलता ही नहीं है।’’²² इसमें लेखक ने गिद्धों के वार्तालाप के माध्यम से इंसानों के छल-छद्म को उजागर किया है। सत्ता और सांड, चुनाव और चूहे, सियार और जंगल का बूढ़ा शेर, महानगर में भटका गधा आदि व्यंग्य निबंधों में भी अन्योक्ति शैली का प्रयोग किया गया है।

5.1.8 रेखाचित्र शैली :

व्यक्तियों के व्यंग्य चित्र खींचने के लिए रेखाचित्र की शैली सबसे अधिक उपयुक्त एवं प्रभावशाली होती है। रेखाचित्र की तरह व्यंग्यकार इस शैली के अंतर्गत व्यंग्य पात्र की जीवनी संबंधी

विवरण देकर उसका व्यंग्य चित्र खड़ा करता है। व्यंग्य पात्र का रहन-सहन, उसकी मानसिक दशा, पोशाक, कार्यक्षेत्र आदि में असंगतियों को दिखाता है।

गोपाल चतुर्वेदी अपने व्यंग्य निबंध ‘कब होंगे कामयाब’ में रेखाचित्र शैली का प्रयोग करते हुए कहते हैं- “कहने को एक प्राथमिक चिकित्सा केंद्र है पर यहाँ तो एक कमरा है। सामने अहाते में किसी किसान के बैल बँधे हैं। कौन जाने सरपंच के हैं कि किसी और हस्ती के। कोई बीमार पड़े तो सीधा ऊपर जाता है या शहर। कमरा खंडहर हो चला है और बताता है कि यहाँ कभी कोई डॉक्टर भूले-भटके भी नहीं आया है। पता नहीं गाँव वाले हम होंगे कामयाब का प्रेरणा गीत कभी सुनते हैं कि नहीं। सुनते भी है तो समझते हैं कि नहीं। अगर समझते हैं तो कामयाबी के भविष्य को सोचते हैं कि नहीं।”²³

5.1.9 विवरणात्मक शैली :

व्यंग्य रचनाओं में यह शैली सबसे अधिक मात्रा में मिलती है। इस शैली में रचना का ‘मैं’ पात्र अनेक वस्तुओं, अपने जीवन की अनेक घटनाओं का विवरण इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि आँखों के सामने वे साक्षात् खड़ी हो जाए। अपने निजी जीवन की घटनाओं के रूप में विवरण देना ही व्यंग्यकार की विशेषता है। लेकिन अधिकांश रचनाओं में यह केवल बहाना मात्र रहता है। रचना में वर्णित सभी विसंगत घटनाओं का अनुभव रचना के ‘मैं’ पात्र अपने काल्पनिक तथा विवरणात्मक प्रतिभा की सहायता से विसंगत घटनाओं एवं परिस्थितियों का पाठक की आँखों के सामने रनिंग कमेण्टरी की तरह विवरण देता है।

विवरणात्मक शैली में सिद्धहस्त व्यंग्यकार द्वारा प्रस्तुत घटनाएँ चाहे युद्ध की हो या शिकार की हो, यात्रा की हो या इतिहास की हो या कल्पना की, हमारी आँखों के समक्ष घटित होती हुई प्रतीत होती

है। यह शैली मुख्यतः व्यंग्य निबंधों में पाई जाती है। एकाध पात्र तथा घटनाओं के चित्रण के द्वारा इस शैली में लिखे गए निबंधों में कथात्मकता भी देखने को मिलती है।

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य निबंधों में विवरणात्मक शैली के उदाहरण खूब देखने को मिलते हैं। एह उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है- “मैं जीवन की निरक्षरता को सोच रहा हूँ। समय किसी के रोके नहीं रुकता। कितने दिनों से विश्व कप का इंतजार था वो गया। अय्यर अनुभाग अधिकारी बनना चाहते थे वे बन गए। पर कितने दिन? एक दिन उम्र की साइकिल के टायर घिसे तो रिटायर हो जाएँगे। घर के किसी कोने में रद्दी की तरह पड़े-पड़े किसी रोज बिक जाएँगे। फिर भी लोग कैश और कलैण्डर के चक्कर में रहते हैं, गोरख ने पहली बार अय्यर पर चोट की। वर्मा ने हाँ में हाँ मिलायी, वाकई गोरख! देखते-देखते जीवन के मूल्य बदल गए हैं। पूरा माहौल ही भ्रष्टाचार का है। कमाने वाले मंत्रालय की सफाई के नाम पर पैसा कमा रहे हैं। लोग चंदन का टीका-तिलक लगाते हैं, धर्म के उपदेशों की बात करते हैं और अधर्म के काम करते हुए उन्होंने फाइलों पर झुके अय्यर को अर्थपूर्ण दृष्टि से ताका।”²⁴ इसके अतिरिक्त इनके अधिकतर व्यंग्य निबंधों में विवरणात्मक शैली देखने को मिलती है।

5.1.10 मिथकीय शैली :

ऐसी परम्परागत कथा जो अतिप्रसृष्ट घटनाओं और प्रभावों से संबंधित होती है। उसे ‘मिथक’ कहते हैं। परम्परा पर आधारित होने के कारण मिथक का संबंध वास्तविकता से ज्यादा विश्वास से जुड़ा होता है। मिथक में एक नई दुनिया की कल्पना होती है। परम्परागत विश्वास के कारण उसे पूर्णतः नकारा भी नहीं जा सकता। जैसे रावण के दस सिर आदि भ्रमजनक लगते हैं लेकिन ये सब एक सामाजिक परम्परा में सतत प्रचलित होते रहने के कारण हमारी जातीय स्मृति के अंग बन गए हैं। यहाँ पर इस बात से

अभिप्राय मिथकों की वास्तविकता पर विचार करके उनके प्रति लोगों में विश्वास जगाना नहीं है बल्कि व्यंग्यकार अपने कथ्य की सम्प्रेषणीयता के लिए किस प्रकार मिथकों का, मिथकीय पात्रों तथा घटनाओं का उपयोग करता है। इसका विचार करना है।

विश्वासों पर आधारित होने के कारण मिथक व्यंग्यकार के लिए उसका काम आसान कर देते हैं। व्यंग्यकार उन प्रसंगों तथा पात्रों को नए संदर्भ में लाकर प्रस्तुत करता है। उन प्रसंगों तथा पात्रों के प्रति एक परम्परागत दृष्टि होने के कारण व्यंग्यकार के कथ्य का सम्प्रेषण बहुत आसानी से हो जाता है। स्वभावतः पूर्व के बल पर बहुत विस्तृत अर्थ से सम्पन्न होने वाले मिथक नए परिवेश में आक्षेपित हो जाने के बाद अर्थ के नए आयामों को खोल देते हैं और व्यंग्य की धार को तेज करते हैं। व्यंग्यकार मिथकीय पात्रों और कथाओं के माध्यम से आज के जीवन के विघटित मूल्यों पर गहरा व्यंग्य करता है। राम, कृष्ण, एकलव्य, अर्जुन, गांधारी आदि मिथकीय पात्रों तथा उनकी कथाओं के सहारे युग जीवन के भ्रष्टाचार एवं विसंगतियों पर व्यंग्य करना आसान हो जाता है। इसलिए मिथकों से मुक्त व्यंग्य रचनाओं में प्रतीकात्मकता के कारण अर्थ का बहुत बड़ा आयाम निर्मित हो जाता है।

गोपाल चतुर्वेदी ने आधुनिक कन्हैया अर्जुन संवाद तथा गांधारी की पट्टी शीर्षक लेख में मिथकीय प्रसंगों और पात्रों द्वारा व्यंग्य दिखाई देता है। श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद के माध्यम से वे आज के राजनीतिक नेताओं के भ्रष्टाचार तथा कुर्सी की लालसा पर करारा व्यंग्य किया है - “कन्हैया गुरु भी पहुँचे हुए हैं। सब समय का फेर है। द्वापर के कृष्ण ने अर्जुन को गीता दी। इक्कीसवीं सदी के अर्जुन को कन्हैया गुरु बिना सोचे समझे विध्वंस का पलीता दे गए। अर्जुन थोड़ा हिचके पर उनके सामने कुर्सी का सवाल था। उन्होंने आव देखा न ताव, बिना किसी तैयारी के शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण का मंडल बाण चला डाला। नतीजे की चिंता उन्हें होती है जो कल का सोचे। सत्ता के आधुनिक अर्जुन कल का नहीं, सिर्फ अपनी कुर्सी के बेशकीमती कमाऊ पल का सोचते हैं।”²⁵

5.1.11 फंतासी शैली :

वर्तमान जीवन में व्याप्त विसंगति और एब्सर्डिटी को तल्खी के साथ अतिरंजित बनाकर चित्रित करने के लिए व्यंग्यकारों ने 'फंतासी' को एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनाया है। इस प्रकार की रचनाओं में एक ऐसी दुनिया की कल्पना की जाती है जो अवास्तविकता, आश्चर्यजनक और विस्मयपूर्ण लगती है। फंतासी शैली में विकृति को ही प्रकृति के रूप में चित्रित करते हुए लेखक विकृतियों या विसंगतियों तथा उनके परिणामों की वास्तविकता का पाठकों को बोध कराना चाहता है।

साधारणतः व्यंग्यकार फंतासी की संरचना करते समय कथा के ऐसे ताने-बाने तैयार करता है जिसमें विसंगतियों और व्यंग्यात्मक स्थितियों को जोड़कर अपने कथ्य को व्यंग्यात्मक शैली में पाठकों तक पहुँचाता है। यह शैली मुख्यतः व्यंग्य कहानियों, व्यंग्य उपन्यासों और व्यंग्य कविताओं में पाई जाती है। गोपाल चतुर्वेदी की फंतासी लेखन शैली का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है- मैंने भी जब यह गाना सुना था ऐसा ही सपना संजोया था। मैंने ही क्या, इस पूरी युवा और कुंवारी पीढ़ी ने यही स्वप्न देखा होगा, जो सब माँ-बाप बनकर समय से पिछड़ गई है। सोंधी सी महकती धरती, हल्की बूँदा-बाँदी और किसी सुंदरी का साथ। एक बार जब बूँदे पड़ रही थीं, तब बड़ी हिम्मत जुटा अपनी एक सहपाठिन से कहा भी कि बड़ा प्यारा मौसम है, चलो थोड़ा सा घूम आएँ। उसने मुझे सिर से पैर तक घूरा। मेरे स्कूटर को देखा, जो मेरे पिताजी का था और उपेक्षा भरे स्वर में इनकार कर दिया। मेरे व्यक्तिगत अनुभव ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि अपने देश में जीवन का सारा रोमांस तो फिल्मी पर्दे के साथ में है और पूरा कटु सत्य उसके बाहर।”²⁶

गोपाल चतुर्वेदी ने अपनी व्यंग्यात्मक निबंधों में प्रतीकात्मक, नाटकीय आदि कथा शैली के साथ ही भाषण शैली, सामान्तर कथा शैली, आत्मकथात्मक कथा शैली, विश्लेषण शैली, व्याख्यापरक शैली,

वार्तालाप शैली, यात्रा शैली आदि का प्रयोग विशेष रूप से किया है। इनके प्रयोग से व्यंग्य की धार और भी पैनी और उसके मार या प्रहार की प्रकृति भी अत्यंत घातक हो गई है।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. मुकेश चंद्रगुप्त, हिंदी-हिंदी शब्दकोश, लक्ष्मी प्रकाशन, जी 30/बी गली नं. 4 गंगा विहार, दिल्ली-110094, संस्करण: 2013, पृष्ठ: 701
2. सं. रामचंद्र वर्मा, संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नई दिल्ली, सं. संवत्:
2065 वि. पृ. 929
3. सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्यकोश भाग-1, प्रकाशक: ज्ञानमंडल लिमिटेड, संत कबीर रोड, वाराणसी, सं. 2005, पृ. 680-681
4. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, सं. 2011, पृ. 16
5. वही, पृ. 95
6. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, सं. 2008, पृ. 146
7. डॉ. ए. एन. चंद्रशेखर रेड्डी शबरी संस्थान 1/5971, कबूल नगर, शाहदरा दिल्ली-110032, सं.-1989, पृ.- 138
8. वगीश सारस्वत, व्यंग्यर्षि शरद जोशी, शिल्पायन प्रकाशन, 10295, लेन नं. 1 वेस्ट गोरखपार्क, शाहदरा दिल्ली-110032, सं.-2013, पृ.- 270

9. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस-पास, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन, शाहदरा दिल्ली-110032, सं.-2012, पृ.- 155
10. वही, पृ. 193
11. वही, पृ. 39
12. वही, पृ. 29
13. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सत्साहित्य प्रकाशन, 205, बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, सं.-2014, पृ.-33
14. गोपाल चतुर्वेदी, कुर्सीपुर का कबीर, ज्ञानगंगा, 205, सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, सं.-2010, पृ.-144
15. गोपाल चतुर्वेदी, आज़ाद भारत में कालू, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ़अली रोड, नई दिल्ली, सं.-1993, पृ.-137
16. गोपाल चतुर्वेदी, संकलित व्यंग्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेस-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, सं.-2012, पृ.-15
17. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, सं. 2008, पृ. 280-281
18. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई

दिल्ली, 110003, सं. 2008, पृ. 103

19. गोपाल चतुर्वेदी, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, डायमंड बुक्स, एक्स-30, ओखला, इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-2, नई दिल्ली-110020, सं.-2010, पृ.-56-57
20. गोपाल चतुर्वेदी, संकलित व्यंग्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेस-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, सं.-2012, पृ.-10-11
21. वही, पृ.-112
22. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, ज्ञानगंगा, 205, सी चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, सं.-2010, पृ.-63
23. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस-पास, मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन, शाहदरा दिल्ली-110032, सं.-2012, पृ.- 192
24. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, सं. 2008, पृ. 103
25. गोपाल चतुर्वेदी, संकलित व्यंग्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेस-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, सं.-2012, पृ.-06
26. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, 110003, सं. 2008, पृ. 25

उपसंहार

युगीन किसी वस्तु, घटना या प्रसंग के तथ्यपूर्ण आधार पर की गई वक्रोक्ति पूर्ण अभिव्यक्ति व्यंग्य है। स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यंग्य की बाढ़ सी आ गई है। अतः अब यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्य में व्यंग्य का आभाव है, व्यंग्य नगण्य है, व्यंग्य एक साधन है, व्यंग्य एक अभिव्यक्ति प्रणाली है तथा व्यंग्य एक शैली या उपविधा है। आज व्यंग्य हिंदी साहित्य की एक स्वतंत्र, सशक्त एवं स्वायत्तपूर्ण विधा है। स्वतंत्र्योत्तर काल के सामज में अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, प्रांतिक-भेद, हिंसा, निर्दयता, बेरोजगारी, जाति-भेद, पदलोलुपता, मिलावट, अविश्वास, नशा आदि से भरा हुआ तनाव और संघर्षपूर्ण जीवन हम देख रहे हैं। परिणाम स्वरूप मनुष्य के जीवन की मान्यताएँ ही बदलने लगी हैं। अतः शाश्वत मूल्यों को बनाए रखने तथा विसंगतियों से समाज को निकालने के लिए व्यंग्य की अत्यधिक आवश्यकता महसूस होने लगी है और व्यंग्यकारों ने भी समाज को सुधारने एवं परिवर्तन लाने के लिए समाज को जागृत करने के लिए व्यंग्य का प्रयोग हथियार के रूप में किया है। इस दिशा में कदाचित् उन्हें सफलता भी मिली है।

हिंदी में व्यंग्य साहित्य के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि नाथों एवं सिद्धों के साहित्य से हिंदी में व्यंग्य की शुरुआत हो जाती है। लेकिन भक्ति काल में कबीर के काव्य में ज्यादा व्यंग्य की तीक्ष्णता के दर्शन होते हैं। कबीर के काव्य में, धार्मिक कर्मकाण्ड, सामाजिक आडम्बरों पर पैसे व्यंग्य देखने को मिलते हैं। उनकी उलटबासियों में व्यंग्य ही है। अतः हिंदी साहित्य में कबीर से व्यंग्य की शुरुआत संभवतः मानी जाती है। इसके पश्चात् रीति काल में इसकी चाल थोड़ी धीमी हो जाती है। किंतु स्वतंत्रता से पूर्व आधुनिक काल में व्यंग्य फिर से एक नए रूप में अवतरित होता दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालमुकुंद गुप्त आदि के साहित्य में अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता पर किए जा रहे शोषण का चित्रण व्यंग्य रूप में ही मिलता है। फिर द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में और

लगभग 1930 के आसपास और उसके बाद जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, निराला के साहित्य में व्यंग्य का तीखापन देखने को मिलता है। इन साहित्यकारों के साहित्य में जहाँ अंग्रेजों से शोषित पीड़ित जनता की सहानुभूति में व्यंग्य के दर्शन होते हैं वहीं स्वतंत्र्योत्तर समाज के साहित्यकारों ने समाज में जाति, धर्म, सम्पन्नता आदि के आधार पर दबे कुचले लोगों, राजनीतिक भ्रष्टाचारों आदि को अपने साहित्य में व्यंग्य के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया। जिसमें रामबिलास शर्मा, धूमिल, नागार्जुन आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। किंतु अब तक के इन साहित्यकारों के साहित्य में व्यंग्य उनकी कविता, उपन्यास, कहानी आदि में एक शैली के रूप में दिखलाई पड़े।

हरिशंकर परसाई आधुनिक गद्य साहित्य में व्यंग्य के प्रयोक्ता एवं प्रस्तोता हैं। हिंदी के पहले और सबसे सशक्त व्यंग्यकार के रूप में उनकी प्रशस्ति है। परसाई जी ने ही 'व्यंग्य' को साहित्य में पूर्ण रूप से स्थापित करने का कार्य किया है। परसाई के साथ-साथ शरद जोशी तथा रवींद्रनाथ त्यागी ने व्यंग्य के स्वरूप को नए आयाम दिए। इसे शैली के आवरण से निकालकर साहित्य में विधा के रूप में स्थापित करने का श्रेय भी इन व्यंग्यत्रयी को ही जाता है। इनके बाद लतीफ घोंघी, डॉ. शेरजंग गर्ग, श्रीलाल शुक्ल, कन्हैया लाल नंदन, बालेंदु शेखर तिवारी, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी आदि व्यंग्यकारों ने इस व्यंग्य विधा की परम्परा को आगे बढ़ाया तथा व्यंग्य के स्वरूप को अलग-अलग तरह से चित्रित करते हुए व्यंग्य का विवेचन एवं विश्लेषण किया।

आधुनिक समय में व्यंग्य की रचना करने वाले व्यंग्यकारों में श्री गोपाल चतुर्वेदी का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है। प्रशासन में रहते हुए इन्होंने प्रशासन में हो रहे भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, अफसरशाही, जनतंत्र में धनतंत्र और भ्रष्टतंत्र के तालमेल से स्थिति को पूर्ण रूप से बेकाबू होते देखा। अतः समाज को इन स्थितियों से अवगत कराने के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया। हालांकि शुरू-शुरू में इनके कुछ लेख अंग्रेजी में आए किंतु मातृभाषा के लगाव ने इन्हें हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित

किया। हिंदी में भी लेखन की शुरुआत इन्होंने काव्य से की। इनके दो काव्य संग्रह ‘कुछ तो हो’ और ‘धूप की तलाश’ प्रकाशित हुए किंतु अफसरी करते हुए प्रशासन और राजनीति को करीब से देखते हुए उनकी खामियों और विसंगतियों को देखकर उन्हें जनता तक पहुँचाने के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया। आज वे एक व्यंग्यकार के रूप में साहित्य में स्थापित भी हो चुके हैं।

व्यंग्य साहित्य की उपादेयता पर विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि ‘व्यंग्य’ व्यंग्यकार की बुद्धि का चमत्कार नहीं है बल्कि वह समाज के प्रति एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व को संभालता है। समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं, कुरीतियों आदि को देखकर एक व्यंग्यकार के मन में रोष एवं आक्रोश उत्पन्न होता है जिसे वह अपनी लेखनी के माध्यम से जनता के समक्ष रखते हुए उसमें आक्रोश उत्पन्न करने की कोशिश करता है। गोपाल चतुर्वेदी ने भी इस प्रकार की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, प्रशासनिक घटनाओं को करीब से देखा परखा और उससे रुबरु होते हुए उसे जनता तक पहुँचाकर जनता को जागृत करने का प्रयास किया।

व्यंग्य विसंगतियों के परिवेश में ही उभरता है। ये विसंगतियाँ न ही रोचक हो सकती हैं और न ही उन्हें हँसकर टाला जा सकता है। सचमुच युगीन सत्यों को व्यक्त करने वाला व्यंग्य, वक्त की पेचीदगियों, आपाधापियों, दुर्घटनाओं को रेखांकित करने वाला व्यंग्य मात्र मनोरंजन का साहित्य नहीं है, बल्कि वह विपरीत परिस्थितियों के प्रति असंतोष जगाने के साथ-साथ बदलाव की आकांक्षा को भी आंदोलित करता है। गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। इन्होंने अपने व्यंग्य लेखों के माध्यम से युगीन सत्यों, वक्त की पेचीदगियों, आपाधापियों, विपरीत परिस्थितियों, धार्मिक आडम्बरों तथा रूढ़िगत मान्यताओं पर गहरा प्रहार किया है। गोपाल चतुर्वेदी ने अपने लंबे लेखकीय और प्रशासकीय अनुभवों से जिन विसंगतियों, विद्रूपताओं, विडंबनाओं, असहनीय परिस्थितियों को देखा-परखा, जाना-पहचाना है। उन्हें अपनी बेबाक, मधुर मगर तीखी खिलदंडी शैली में मुक्त भाव से व्यक्त किया है।

गोपाल चतुर्वेदी वर्तमान समय में ऐसे गिने-चुने वरिष्ठ व्यंग्यकारों में हैं जो व्यक्ति और व्यवस्था में मौजूद कमजोरियों को ही नहीं, विसंगत और त्रासद स्थितियों को भी बड़ी बेबाकी से व्यक्त करने में विश्वास रखते हैं। उन्होंने हर स्थिति में मनुष्य की कमजोरियों, गुस्ताखियों, स्वार्थपरताओं, मार्मिकताओं को अपनी कलम का शिकार बनाया है। इनके मारक व्यंग्यबाणों ने समाज के हर उस वर्ग को अपना निशाना बनाया है जिनके लिए मानवीय मूल्य, संवेदना और सरोकार कोई मायने नहीं रखते। वे हवा से भरे गुब्बारे की तरह हैं, जिन्हें इनके व्यंग्यों की तीखी नोक फुस्स कर देती है।

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य मीठी चिकोटी के स्थान पर तीखा प्रहार करते हैं। यही कारण है कि ऊपर से सामान्य हास्य रचना का भ्रम उत्पन्न करने वाली इनकी रचनाएँ अंत तक आते-आते करूण व्यंग्य में परिवर्तित हो जाती है। व्यंग्य के संबंध में वे स्वयं कहते हैं कि व्यंग्य एक पढ़े-लिखे और सभ्य इंसान की प्रतिक्रिया है, सभ्य समाज की विभिन्न असभ्यताओं के बारे में। व्यंग्य के लिए भाषा की शालीनता व्यंग्यकार का एक कारगर हथियार है।

जनतंत्र में सरकारी तंत्र के तिलिस्म को तोड़ना जायज़ ही नहीं ज़रूरी भी है। बिना किसी कटुता और लाग-लपेट के स्थितियों और पात्रों के चित्रण द्वारा गोपाल चतुर्वेदी ने इस काम को सफलतापूर्वक अंजाम दिया। इनके व्यंग्य की यही विशिष्ट कुशलता है कि इन्होंने आम आदमी के साथ व्यवस्था की जड़ता और संवेदनहीनता से सामान्य कर्मचारी की त्रासदी को भी जोड़ा है। भारतीय प्रशासनिक सेवा में विभिन्न उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर रहते हुए भी गोपाल जी समूचे तंत्र पर लगातार अपने तीखे व्यंग्यों के माध्यम से प्रहार करते रहे हैं।

गोपाल चतुर्वेदी ने राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यंग्यों में छोटी से छोटी विसंगति को भी अपना निशाना बनाया है। सरकारी तंत्र से संबंधित कोई भी विषय घूसखोरी, लालफीताशाही, अफसरशाही, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, पदलोलुपता, चमचागिरी आदि इनकी लेखनी से अछूता नहीं रहा है।

राजनीतिक और प्रशासनिक व्यंग्य को पढ़ते समय पाठक के समक्ष ये व्यंग्य एकदम जीवंत वातावरण प्रस्तुत कर देते हैं। पाठक को इन व्यंग्यों को पढ़ते समय यह अहसास ही नहीं हो पाता कि वह अपने घर में बैठकर इन व्यंग्य लेखों को पढ़ रहा है अथवा किसी कार्यालय में सरकारी तंत्र के जाल में घिरा हुआ है।

प्रशासनिक एवं राजनीतिक व्यंग्यों के साथ ही गोपाल चतुर्वेदी के सामाजिक व्यंग्य भी सच्चाई की एक-एक परत उधेड़ने में कमतर नहीं है। जहाँ इन्होंने सरकारी तंत्र की पोल खोली है वहीं समाज के कोने-कोने में झाँककर अपनी पैनी दृष्टि से विसंगतियों को ढूँढ़ा और उसे जनता के सामने रखा। इनके सामाजिक व्यंग्यों में आम जीवन की छोटी-बड़ी सभी समस्याएँ देखने को मिलती हैं। अपने सामाजिक व्यंग्यों के अंतर्गत समकालीन शिक्षा व्यवस्था, कानून व्यवस्था, धार्मिक कर्मकाण्ड एवं आडंबर, स्वास्थ्य संबंधी, साहित्य संबंधी, आर्थिक व्यवस्था, संबंधों के विघटन आदि सभी सामाजिक स्थितियों-परिस्थितियों पर व्यंग्य करते हुए गोपाल चतुर्वेदी ने उसकी परत-दर-परत उधेड़ने का कार्य किया है।

गोपाल चतुर्वेदी कथात्मक शैली के माध्यम से अपनी बात को कहते हैं। इनकी व्यंग्य रचनाएँ व्यंग्यात्मक टिप्पणियों का लेखा-जोखा नहीं हैं अपितु वर्तमान में व्याप्त विसंगतियों पर विभिन्न चरित्रों तथा कथात्मक घटनाओं के माध्यम से प्रहार है। गोपाल जी ने अपने व्यंग्य को रोचक बनाने के लिए पत्रात्मक, कथात्मक, फंतासी, अन्योक्ति, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, मिथकीय, संवाद, साक्षात्कार, प्रश्नोत्तर आदि विभिन्न शैलियों का सहारा लिया है। विषयानुसार शैली के चुनाव और उसमें फंतासी संवाद और भाषाई रंगत का तालमेल इनकी अपनी विशेषता है। इनकी भाषा की बनावट एवं बुनावट अपने वैशिष्ट्य के कारण व्यंग्य को नई ताजगी देकर उसे प्राणवान बनाती है। गोपाल चतुर्वेदी ने अपनी रचनाओं, अपने व्यंग्यों में समस्याओं को तो रखा है लेकिन उसका समाधान कहीं पर भी प्रस्तुत नहीं किया है। इसके लिए वे स्वयं कहते हैं कि लेखक का कार्य अपनी लेखनी के माध्यम से जनता को

समस्याओं से रूबरू कराना है। इन समस्याओं के समाधान के लिए जनता को स्वयं आगे आना होगा क्योंकि समस्याओं का समाधान लेखनी से नहीं बल्कि आंदोलनों से संभव है।

यह कहा जा सकता है कि राजनीति, शासन, समाजसेवा, संस्कृति, शिक्षा-व्यवस्था, कानून व्यवस्था आदि क्षेत्रों में मनुष्य की संवेदनहीनता को रेखांकित करना, उस पर चिकोटी काटना, उस पर बौद्धिक एवं तार्किक प्रहार करना गोपाल जी का अभिष्ट रहा है। उन्हें पढ़ना आज के समाज, मनुष्य राजनीति आदि से सीधे जुड़कर सबकी भीतरी परतों में झाँककर उसमें निहित विसंगतियों से दो-चार होना सचमुच में एक मनोरम अनुभव है। उन्हें पढ़कर सचमुच एक ऐसे रचनाकार को पढ़ने का सुख मिलता है जो हालात की शर्मनाक बेचारगी को बख्शाता नहीं बल्कि अपने व्यंग्य प्रहारों से कहीं न हीं बदलाव का तिलिस्म पैदा करने की कोशिश करता है। गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों को पढ़ना अपने समय के मिथ्याचार और कदाचार से दो-चार होना है। यही उनकी रचनाशीलता की पुरजोर पहचान है। वे आधुनिक समय के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार, हिंदी व्यंग्य विधा के सशक्त हस्ताक्षर ही नहीं बल्कि आधुनिक हिंदी व्यंग्य के सुमेरू भी हैं।

साक्षात्कार

दिनांक 29.05.2016

प्र.1 विसंगतियों और विद्रूपताओं को उद्धाटित करने में क्या व्यंग्य लेखन सबसे अधिक समर्थ है?

‘व्यंग्य’ कहा जाता है कि एक शिक्षित मस्तिष्क के अपने आसपास की परिस्थितियों पर टिप्पणी है। व्यंग्य से ये अपेक्षा की जाती है कि उसके पाठक पढ़े लिखे हों, उनकी अपनी समझ विकसित हो। व्यंग्य वर्तमान की परिस्थितियों पर लेखक की प्रतिक्रिया है जबकि उसके पाठक से भी ये अपेक्षा की जाती है कि उसे सही संदर्भों से जोड़ सके। व्यंग्य एक अस्त्र है, जिससे व्यंग्यकार सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करता है। व्यंग्य के पीछे जो आदर्श आप मानकर चलते हैं, वो अतीत से संबंधित है, भविष्य से नहीं। व्यंग्य भविष्य की कल्पना नहीं करता। आज ऐसा समय आ गया है कि व्यंग्य सबके लिए सार्थक बन गया है, अपने मन की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए। इसलिए जहां तक मुझे लगता है, सामाजिक विरोधाभासों, लोक आदर्शों को उद्धाटित करने का एक सार्थक साधन है।

आपका जो प्रश्न है उसके अनुसार व्यंग्य सच को उद्धाटित करने का एक मार्ग है लेकिन व्यंग्य वास्तव में वह झूठ की तलाश है। सच को उद्धाटित करता है क्योंकि वह झूठ को तलाशता है। ये व्यंग्य की सीमा भी है, ये अतीत के संदर्भ में वर्तमान की विसंगतियों को उद्धाटित करता है। व्यंग्य ने किसी आदर्श की तलाश करता है न भविष्य की तसवीरें दिखाकर भ्रमित करता है।

प्र.2. हास्य और व्यंग्य में आप क्या अंतर मानते हैं ? क्या व्यंग्य के लिए हास्य का होना आपकी दृष्टि में आवश्यक है ?

देखिए, हास्य और व्यंग्य में अंतर तो है। व्यंग्य के लिए हास्य जरूरी नहीं है किंतु जहां सायास लाया जाता है, वह व्यंग्य को मजबूत बनाता है, लेकिन जहां हास्य अनायास आ जाता है, वह व्यंग्य को कमजोर बना देता है। शरद जोशी के व्यंग्य को पढ़िए, वहां सायास हास्य है, यह हास्य स्वाभाविक रूप से उभरता है, जो उनके व्यंग्य को एक नई शक्ति देता है। व्यंग्य की एक और शर्त है, व्यंग्य में अगर रोचकता नहीं है तो लोग उसे पढ़ेंगे नहीं। जैसे कुनैन की गोली में थोड़ी मिठास डाली जाती है ताकि मरीज उसे खाकर बीमारी से ठीक हो सके। इस तरह व्यंग्य रोचक शैली में लिखा हुआ लेखन है उसके लिए जहां

अनायास हास्य आ जाता है या ठूँसा जाता है, वह व्यंग्य को कमजोर बनाता है। मैं ये नहीं मानता कि हास्य के आने से व्यंग्य निम्न हो जाता है।

प्र.3. व्यंग्य को अभी तक एक पृथक् विधा के रूप में नहीं माना जाता बल्कि रचना में अंतर्भूति, 'स्पिरिट' माना जाता है। आपका इस संबंध में क्या विचार है ?

व्यंग्य को आप विधा बनाते हैं तो व्यंग्य का क्षेत्र सीमित करते हैं। आज व्यंग्य कहानी में है, कविता में है, नाटक में है। यदि आप व्यंग्य को विधा बना देंगे जो जैसे श्रीलाल शुक्ल 'रागदरबारी' जो सबसे सशक्त व्यंग्य उपन्यास है, को लिखते हैं तब अपने को कहते तो व्यंग्यकार हैं लेकिन व्यंग्य को अलग विधा के रूप में वो भी स्वीकार नहीं करते। व्यंग्य सभी विधाओं में व्याप्त है, अलग विधा बनाकर हम सिर्फ उसका क्षेत्र ही सीमित करेंगे। व्यंग्यकार अपनी दृष्टि से जिस तरह समाज को देखता है, उसे किसी भी विधा में व्यक्त करने को स्वतंत्र होता है।

प्र.4. आपकी पहली व्यंग्य रचना कब और किस पत्रिका में छपी ? उसका विषय क्या था ?

मेरी पहली व्यंग्य रचना करीब 1974 में धर्मयुग पत्रिका में छपी थी। जिसका विषय था 'अफसर की मौत'। सबसे बड़ी बात 'धर्मयुग' जैसी पत्रिका, जिसके संपादक 'धर्मवीर भारती' जी थे, में लेख का छपना अपने आप में बहुत बड़ी बात थी क्योंकि भारती जी ऐसे संपादक थे जो प्रत्येक रचना को नाम के आधार पर नहीं बल्कि स्वयं पढ़कर छापते थे। उससे मेरा काफी उत्साहवर्धन हुआ और प्रेरणा भी मिली।

प्र.5. व्यंग्य के छोटे कैवलास में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति कहाँ तक संभव है ? क्या आपको इन स्थितियों को स्पष्ट करने में विधागत परेशानी का सामना करना पड़ता है ?

मुझे तो ऐसा नहीं लगा। देखिए, जब निदा फाजली एक दोहे में पूरे समाज के दर्शन को उड़ेल सकते हैं। वह दोहा बड़ा आसान है-

‘छोटा करके देखिए, जीवन का विस्तार

आंखों भर आकाश है, बांहों भर संसार।’

जो आपकी बांहों में रहता है वही संसार है आपके लिए, जो आपकी आंखों में दिखता है वही आकाश है। आप छोटे में ही बड़ी बात कह सकते हैं। यह जरूरी नहीं है, अपनी बात कहने के लिए आप महाकाव्य

ही लिखें। जीवन के दर्शन के अनुरूप यदि एक दोहे में जीवन के सच को कहा जा सकता है तो व्यंग्य क्यों नहीं ? अगर आपकी सोच स्पष्ट है तो आपकी भाषा में वह सब आ जाएगा जो आप लिखना चाहते हैं। देखिए, वैचारिक बंधुता के साथ भाषा की बंधुता आती है। अगर आपकी सोच स्पष्ट है तो समय सीमा या शब्द सीमा का कोई बंधन मायने नहीं रखता।

प्र.6. क्या व्यंग्य लेखन के कारण आपको व्यक्तिगत जीवन में कभी संघर्ष का सामना करना पड़ा? कोई अविस्मरणीय घटना ?

नहीं, हां इस विषय में इतना जरूर कहा जा सकता है कि हिंदी में लेखन करना मेरे लिए लाभप्रद रहा। क्योंकि देखिए, आपकी सरकार अंग्रेजी में चलती है, जिसके कारण मैं संकटों से बचता रहा। अंग्रेजी में लिखता तो जरूर फंस जाता। केंद्रीय सरकार आज भी हिंदी नहीं पढ़ती है। अंग्रेजी में लिखता और व्यंग्य लिखता तो नौकरी पर खतरा हो सकता है।

प्र.7. अंग्रेजी साहित्य को पढ़ते हुए हिंदी की ओर झुकाव कैसे हुआ ? इसके पीछे कोई घटना या किसी व्यक्ति विशेष का योगदान रहा ?

देखिए, आदमी जब लिखता है, तो उसकी अपनी एक मातृभाषा होती है, जब वह भाषा पढ़ता है, एक भाषा सीखता है और एक भाषा लिखता है। इसलिए आदमी को एक दक्षिण भाषा जरूर सीखनी चाहिए। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं नहीं सीख पाया। अंग्रेजी मैंने पढ़ी क्योंकि आज भी अगर आपको नौकरी चाहिए तो आपको अंग्रेजी के बिना नौकरी नहीं मिलेगी।

एक तो आप अपनी मातृभाषा में खुद को अच्छे से व्यक्त कर सकते हैं। अंग्रेजी में बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनका भाव वैसा का वैसा नहीं आ पाता, उनका अनुवाद संभव ही नहीं है। सबसे बड़ी दिक्कत तब आती है जब आदमी सोचने अंग्रेजी में लगता है। इस बात से मुझे चिढ़ थी। हम हिंदुस्तानी अंग्रेजी में क्यों सोचते हैं ? इसलिए मैंने जब भी लिखा, मातृभाषा में लिखा। मेरी रुचि, अभिरुचि शुरू से ही हिंदी में थी।

प्र.8. प्रशासन में रहते हुए.... प्रशासनिक और राजनीतिक व्यंग्य करना एक कठिन कार्य है। व्यक्तिगत तौर पर आपको इस तरह की किसी समस्या का सामना करना पड़ा ?

जी नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। प्रशासन में रहकर आप इसे ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं, इसका विरोध कर सकते हैं। प्रशासन कैसे एक अर्जी को घुमा देता है, कैसे एक इंसान को सिर्फ फाइल बना देता है। प्रशासन में रहते हुए प्रशासन के तौर-तरीकों से आप परिचित रहते हैं। जिस क्षेत्र से आप जुड़े रहते हैं उसके बारे में सबसे अच्छा लिख सकते हैं क्योंकि उसमें आपका जिया हुआ सच शामिल होता है। आदमी कैसे फाइल बना जाता है, कैसे पेंशन के लिए पेंशन नंबर बन जाता है। इससे क्या हुआ देखिए, जो सरकारी नौकरी में आते हैं, तो आपके सपने होते हैं, लेकिन जब व्यवस्था को देखते हैं तो आपको लगता है कि आपके जो सपने थे, उन सपनों के टूट जाने से जो पीड़ा होती है, उसे आप अच्छे से अभिव्यक्त कर सकते हैं। ‘फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ’ में कुर्सी के मोह को मैंने दिखाया है। आप खुद टूट रहे हैं, इस टूटने से आप बच गए। उसके बारे में आपको लिखने का अधिकार मिल जाता है।

प्रशासन के जितने ढोंग हैं, जितनी चालबाजियाँ, कुर्सी का मोह है, सब उस व्यंग्य में आपको मिल जाएगा। कैसे एक बाबू कुर्सी के मोह में स्वयं को कुर्सी से बांधकर रखते हैं, ये सब दिखाया है। जिस क्षेत्र में आप काम करते हैं, उससे आप भली-भाँति परिचित होते हैं और दूसरी बात आपको उसका आधिकारिक ज्ञान होता है जो बाहर रहकर आपको कभी नहीं हो सकता।

प्र.9. वर्तमान समय में व्यंग्य लेखन से क्या सामाजिक, आर्थिक बदलाव संभव है ? यदि हाँ तो वो किस तरह समाज को बदलाव की दिशा में प्रेरित करता है ?

लेखन से बदलाव संभव है, ये मैं नहीं मानता। लेखन से परिवर्तन वैचारिक प्रस्फुटन के रूप में अवश्य आता है लेकिन जहां तक सामाजिक परिवर्तन आने की बात है, मैं इससे सहमत नहीं। समाज बदलने में बहुत समय लगता है। सामाजिक परिवर्तन हमेशा सड़क से आता है। क्रांति और आंदोलन से ही परिवर्तन संभव है और यह क्रांति भी सड़क से ही आती है। हम लोग कहते हैं ‘फ्रेंच रेवोल्यूशन’ इसलिए हुआ क्योंकि वहां बड़े-बड़े फिलास्फर हुए लेकिन वास्तव में हम देखें तो वहां भी क्रांति सड़क से ही शुरू हुई।

लेखक आपको वैचारिक प्रस्फुटित होने के लिए बीज देता है। लेखक आपको पूरा आदमी बनने में मदद करता है। लेखक अपने संतोष के लिए सामाजिक दोषों को सामने लाने के लिए लिखता है। सड़क के आंदोलन के बिना सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है।

प्र.10. समकालीन आलोचक व्यंग्य लेखन पर क्या विचार रखते हैं ? आप उनकी रचनाओं से किस हद तक सहमत हैं ?

व्यंग्य की अभी तक आलोचना संभव नहीं हुई है। व्यंग्य का इतिहास कहीं-कहीं लिखा गया है। शेरजंग गर्ग ने 'व्यंग्य क्या है' लिखा है लेकिन व्यंग्य की व्यवस्थित आलोचना की अगर बात करें तो वो अभी तक लिखी ही नहीं गई है। हमारे यहां हास्य की परम्परा है। मेरी मान्यता है कि व्यंग्य के दो ही आधार हैं - जिनमें एक है - वैचारिक आधार और दूसरा सौंदर्य पर आधार। हमारे यहां हास्य पर पहले अधिक जोर था। धीरे-धीरे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बोलने और लिखने की आजादी मिली। उसी से व्यंग्य का उदय हुआ। परिस्थितियों, विसंगतियों पर प्रहार आरंभ हुआ। जहां तक आलोचना का प्रश्न है, जब आप व्यंग्य को भारतीय आधार पर परिभाषित करेंगे या जो व्यंग्यकार हुए हैं, शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल इनके आधार पर परिभाषित करने का प्रयास करेंगे तब आप देखेंगे कि व्यंग्य का सौंदर्यशास्त्र तो अभी तक विकसित ही नहीं हुआ है। व्यंग्य आलोचना का अभी आरंभ ही नहीं हुआ है।

प्र.11. व्यंग्य के सर्वाधिक प्रखर विषय आपको कहाँ मिले ?

देखिए, व्यंग्य को अगर सही मायने में देखें तो जीवन के हर क्षेत्र में आप उसे पा सकते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में, खेल से लेकर रेल और बाजार से लेकर सरकार तक व्यंग्य के प्रखर विषय मौजूद हैं। मेरे विचार से व्यंग्य की प्रखरता प्रहार और प्रभाव उसकी प्रस्तुति में है, विषय में तो है ही। जहाँ तक आजीविका के क्षेत्र की बात है, सरकार के सफेद हाथियों का जंगल, जहां प्रदर्शन को आदर्श के बड़े-बड़े चमकीले दाँत कभी सहयोगी को खाते हैं, कभी सुविधा को, तो कभी प्लेटिनम, सोना और पैसे को। आज तो यह आलम है कि वहाँ ईमानदार की खैर नहीं है। लेखक कुछ हद तक प्रभावित तो हुआ है इससे।

प्र.12. भ्रष्टाचार के विषय में आप क्या सोचते हैं ? हम निरंतर भ्रष्टाचार को रोकने की बात करते हैं लेकिन समय और परिस्थितियों से विवश होकर हम स्वयं भी इसका शिकार हो जाते हैं। आपको क्या लगता है लेखन के द्वारा या सामाजिक संरचना में बदलाव के द्वारा या सामाजिक संरचना में बदलाव के द्वारा किसी हद तक इसे रोक पाना संभव है ?

एक बात तो अवश्य है, कि अगर भ्रष्टाचार खत्म करना है तो सामूहिक प्रयास करना होगा। लेखन से आंदोलन होता है, लेकिन समाज के सभी वर्ग के लोग अगर ठान लें, तो सफलता अवश्य मिलेगी। भ्रष्टाचार जाने का एकमात्र तरीका यही है कि पूरा राष्ट्र इसके खिलाफ चैतन्य हो जाए। इस देश में

भ्रष्टाचार की एकता कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब जगह एक जैसी है। हर छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी जगहों पर आपको भ्रष्टाचार मिलेगा। अब सवाल ये उठता है कि भ्रष्टाचार को कैसे रोके ? सबसे पहले छोटे कामगारों और सरकारी अधिकारियों की आमदनी का अंतर देखिये यही भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा कारण है। शिक्षा व्यवस्था भी दोषपूर्ण है।

हाँ, एक और बात है, पहले लोग भगवान से डरते थे, ये डर होता था कि गलत करने पर नरक में जाना पड़ेगा, अब लोग सवाल पूछने लगे हैं कि भगवान है कि नहीं। भौतिकतावादी सोच दरअसल भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है।

हाँ, सामाजिक विघटन या पारिवारिक संरचना में बदलाव भी इसका एक कारण हो सकता है। हमने परिवार को बांट दिया इससे हमारे जो हमारे मूल थे, नैतिक मान्यताएँ थी, मर्यादित रहने की जो अपरिहार्यता थी, सब लगभग समाप्त हो गई। सुविधाभोगी जीवन जीने की आकांक्षा भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। भ्रष्टाचार बढ़ते जाने के कुछ प्रमुख कारण भी हैं, जिनमें सामाजिक विघटन, नैतिक पतन, शिक्षा व्यवस्था में दोष, सामाजिक आचरण तथा भौतिक सुख की तलाश है।

प्र.13 व्यंग्य के विकास में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी की भूमिका पर अपने विचार बताइए।

हरिशंकर परसाई, शरद जोशी का बहुत योगदान है। परसाई जी में जो प्रहार करने की जो अद्भुत क्षमता है, वह उनके व्यंग्य को और अधिक शक्तिशाली बना देता है। परसाई जी प्रगतिवादी व्यंग्यकार थे।

शरद जोशी इसी रवैये से अलग हुए और उनकी प्रगतिशीलता भी हम उनके व्यंग्यों में देख सकते हैं। लेखन स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील होता है। वह आम आदमी से बहुत गहरे तक जुड़ा रहता है। शरद जी ने बेहद लोकप्रियता अर्जित की थी। व्यंग्य के क्षेत्र में इन तीनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। शरद जोशी का लेखन एक ऐसा लेखन है जो अपने आसपास की विद्रूपताओं को वैसे प्रस्तुत करता था कि आज भी और पहले भी उसे पढ़कर पाठक प्रभावित होता था।

व्यंग्य की प्राथमिक शर्त है कि व्यंग्य रोचक शैली में लिखा जाना चाहिए। शरद जोशी और हरिशंकर परसाई की ये खासियत रही कि किसी भी परिस्थिति में उन्होंने व्यंग्य की रोचकता के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं किया।

त्यागी जी में बड़ा पांडित्य है, बहुत पढ़ा है उन्होंने हालांकि वो भी सरकारी नौकर रहे हैं।

ये लोग व्यंग्य के दृढ़ स्मारक हैं, इन्होंने व्यंग्य को व्यवस्थित रूप से स्थापित किया है। व्यंग्य को गली-कूचों से निकालकर उसे राजपथ पर लाने को श्रेय इन लोगों का है।

श्रीला शुक्ल और शरद जोशी की विशेषता है कि वो लोग जो लिखते हैं उसे दोहराते नहीं हैं। श्री लाल जी का योगदान इस मायने में है कि जिसने रागदरबारी पढ़ा है, वो उपन्यास में जो व्यंग्य का शिल्प है, उससे अचंभित रह जाता है। इस तरह व्यंग्य को साहित्य की विधा के रूप में स्थापित करने में इन सभी का बहुत योगदान है।

प्र.14 इनमें से सबसे अधिक किससे प्रभावित हैं ?

देखिए! कुछ क्षणों के लिए, मैं सबसे ज्यादा प्रभावित हूँ। जहाँ प्यार की बात है तो परसाई जी मेरे प्रिय लेखक हैं। जहाँ शैली और शब्द चयन की चिंता की बात है तो शरद जोशी से प्रभावित हूँ। अपने खुद की पढ़ाई के स्तर की बात है तो रवींद्र त्यागी से बहुत प्रभावित हूँ, मैं खुद को उनका छोटा भाई मानता हूँ। श्रीलाल जी को व्यक्तिगत तौर पर और लेखक दोनों के रूप में जानने का अवसर मिला, इस स्तर पर उन्हें अपने अग्रज के रूप में मानता हूँ। श्रीलाल जी का पांडित्य बहुत ऊँचे दर्जे का है, उनकी जो ललक है उसका प्रभाव उनके लेखन में दिखता है, लेकिन एक बात है, इन सबसे पूरी तरह प्रभावित होते हुए भी मैंने कभी इनकी नकल करने की कोशिश नहीं की।

हाँ, इन सबसे मुझे कुछ न कुछ जरूर मिला है। मैंने ये कभी नहीं सोचा कि मैं इनके बराबर, समकक्ष या छोटा भी हो सकता हूँ। लेखन से मुझे बस आत्म संतुष्टि मिलती है, इसलिए लिखता रहता हूँ।

प्र.15 हरिशंकर परसाई जी बारे में कहा जाता है कि व्यंग्य विधा को उन्होंने शूद्र से ब्राह्मण न सही तब भी क्षत्रिय तो अवश्य बना दिया। इस विषय पर आप क्या सोचते हैं ?

देखिए, जातिप्रथा में मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं है। व्यंग्य, लेखक के हाथ में एक ऐसा अस्त्र रहा है जिससे वह लोगों को प्रभावित तो करता है, विसंगतियों के प्रति उत्तेजित भी करता है। क्षत्रिय इसलिए कि वह तलवार लेकर चलता है, व्यंग्य लेखक के हाथ में कलम होती है, वैचारिक आधार होता है। सामाजिक परिवर्तन के लिए वह एक आधार एक दिशा दे सकता है। सामाजिक समरसता लाने का प्रयास करता है,

सामाजिक कटुता को खत्म करने के लिए आगे बढ़ता है। व्यंग्य लेखक समाज के लोगों को अच्छा इंसान बनाने का प्रयास करता है।

परसाई जी में व्यंग्य लिखने की गजब की क्षमता थी, सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने का अद्भुत कौशल था और भाषा भी गजब की थी। अपने समय की एक विषम समस्या जातिप्रथा को कुछ हद तक समाप्त करने के प्रयास में जो उन्होंने कलम रूपी तलवार को अस्त्र के रूप में प्रयोग किया, हो सकता है इसलिए ऐसा कहा जाता हो।

प्र.16 अपने लेखन से आप कितने संतुष्ट हैं ?

मैं हमेशा खुश रहता हूँ। आत्म संतुष्टि का कारण व्यंग्य लेख नहीं नहीं है, हाँ, एक कारण अवश्य है। मैं इस समाज का सदस्य होने के कारण खुश हूँ, अपने मित्रों के कारण, इस देश में रहने के कारण संतुष्ट हूँ। भारत एक ऐसा देश है जहाँ आलसी आदमी भी बहुत खुश और संतुष्ट रहता है और फिर मैं तो ज्यादा नहीं तो कुछ कर ही रहा हूँ। देखिए, आत्म संतुष्टि कब मिलती है, जब आप चुनौतियों को स्वीकार करते हुए उनसे आगे बढ़ते हैं। लेखन में जब चुनौती मिलती है, जब आप नया पढ़ते हैं, सुनते हैं, तब आपको लगता है कि लोग आपको भी सुनें, पढ़ें। ये अनिवार्यता हो जाती है। यही अनिवार्यता प्रेरित करने वाली है। व्यंग्य में शब्द संख्या की एक सीमा है। मैं कम शब्दों में लिखने को एक चुनौती के रूप में देखता हूँ। लिखने को आप बौद्धिक सक्रियता बनाए रखने के लिए अनिवार्य मान सकते हैं। आप जितना पढ़ेंगे उससे ज्यादा लिख पाएंगे, यही काम मुझे संतुष्टि प्रदान करता है।

प्र.17 व्यंग्य की वर्तमान स्थिति और उसके भविष्य के विषय में आप क्या कहेंगे ?

वर्तमान में व्यंग्य की गुंजाइश पहले से अधिक है। खूब और अच्छा लिखा जा रहा है। भविष्य तो व्यंग्य का उज्ज्वल है। ये बहुत आगे बढ़ेगा, सीमाओं को अतिक्रमण करने की व्यंग्य में अपार क्षमता है। अपने सभी मानकों पर यह खरा उतरेगा, लेकिन भविष्य के बारे में एक बात और कहना चाहूँगा...काश वह दिन आए कि व्यंग्यकारों को लिखने के लिए कोई विषय नहीं मिले।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

1. गोपाल चतुर्वेदी, गंगा से गटर तक, ज्ञान गंगा, 205 सी चावडी बाजार, दिल्ली, संस्करण 1997
2. गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढ़ि-पढ़ि, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, संस्करण 2008
3. गोपाल चतुर्वेदी, राम झरोखे बैठ के, ज्ञान गंगा, 205 सी चावडी बाजार, दिल्ली, संस्करण 1997
4. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, ग्रंथ अकादमी, 1659 दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2011
5. गोपाल चतुर्वेदी, अफसर की मौत, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 2002
6. गोपाल चतुर्वेदी, दुम की वापसी, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 2002
7. गोपाल चतुर्वेदी, खंभो के खेल, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 2002
8. गोपाल चतुर्वेदी, नैतिकता की लंगड़ी दौड़, ग्रंथ अकादमी, 1659, पुराना दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 2002
9. गोपाल चतुर्वेदी, आजाद भारत में कालू, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, सं. 1993
10. गोपाल चतुर्वेदी, भारत और भैंस, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावडी बाजार, दिल्ली 110006, संस्करण 2002
11. गोपाल चतुर्वेदी, जुगाड़पुर के जुगाड़ू, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661, दखनीय स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली 110002, संस्करण 2005
12. गोपाल चतुर्वेदी, दाँत में फँसी कुर्सी, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661, दखनीय स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली 110002, संस्करण 2006
13. गोपाल चतुर्वेदी, निर्लज्ज समय के आस पास, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 32, संस्करण 2012
14. गोपाल चतुर्वेदी, आदमी और गिद्ध, ज्ञान गंगा 205-सी चावडी बाजार, दिल्ली 110006, संस्करण 2010

15. गोपाल चतुर्वेदी, धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, संस्करण 2008
16. गोपाल चतुर्वेदी, संकलित व्यंग्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नेहरू भवन, फेज 2 इंस्टीट्यूशनल एरिया, बसंत कुंज, नई दिल्ली 110070, संस्करण 2011
17. गोपाल चतुर्वेदी, सत्तापुर के नकटे, सत्साहित्य प्रकाशन, 205 बी चावड़ी बाजार, दिल्ली 110006, संस्करण 2014
18. संपा. गिरिराज शरण अग्रवाल, 51 श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, गोपाल चतुर्वेदी, डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि., 30 ओखला, इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110003, संस्करण 2010
19. गोपाल चतुर्वेदी, कुरसीपुर के कबीर, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 205 सी चावड़ी बाजार, दिल्ली 110006, संस्करण 2010

सहायक संदर्भ ग्रंथ :

1. शरद जोशी, जीप पर सवार झल्लियां, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण 1990
2. शरद जोशी, हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, सं. 2015
3. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, सं. 2010
4. हरिशंकर परसाई, प्रतिनिधि व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण 2013
5. हरिशंकर परसाई, विकलांग श्रद्धा का दौर, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण 2013
6. हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखायें, संभावना प्रकाशन, हापुड, सं. 1999
7. सं. कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे, हरिशंकर परसाई, चुनी हुई रचनाएं, भाग 1 भाग 2, वाणी प्रकाशन, 21ए दरियागंज, नई दिल्ली 110002, सं. 2013
8. रवीन्द्र नाथ त्यागी, मेरी शोकसभा, हिंदी बुक सेंटर, 4/5बी, आसफ अली रोड, नियर डिलाइट सिनेमा, नई दिल्ली 2, संस्करण 2009
9. रवीन्द्रनाथ त्यागी, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, ज्ञानभारती प्रकाशन, 3/1-2एम. डी, विश्वंतपुरी कालोनी, नवलपुर बसही, शिवपुर वाराणसी संस्करण 1978

10. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण 2013
11. अमृतराय, बतरस, साहित्य अकादमी, 35, रवीन्द्र भवन, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110002, संस्करण 1998
12. हरिशंकर परसाई, रानी नागफनी की कहानी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण 1962
13. बालमुकुंद गुप्त, शिवशम्भु के चिट्ठे, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, संस्करण 1998
14. हरिशंकर परसाई, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2000
15. संपा. काका हाथरसी तथा गिरीराज शरण अग्रवाल, श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य निबंध, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 1993
16. संपा. काका हाथरसी तथा गिरीराज शरण अग्रवाल, श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएं, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 1992
17. संपा. काका हाथरसी तथा गिरीराज शरण अग्रवाल, श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 1992
18. डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, हिंदी काव्य में व्यंग्य, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण 1973
19. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर कविता में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन, 21ए अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण 1986
20. सत्यव्रत सिंह, साहित्य दर्पण, चैखम्भा विद्याभवन, सी के 27/9 चौक वराणसी, संस्करण 1949
21. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 1978
22. मलय, व्यंग्य का सौन्दर्य शास्त्र, शिल्पायन प्रकाशन, शब्द सृष्टि, बी-710/1, गली नं. 10, विजय पार्क, मौजपुर, दिल्ली 110053, संस्करण 2008
23. डॉ. नंदलाल कल्ला, व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी, अमित प्रकाशन, कबूतरों का चौक, जोधपुर 342001, संस्करण 1990

24. मलय, सदी का व्यंग्य विमर्श, शिल्पायन, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली 110032, संस्करण 2008
25. वागीश सारस्वत, व्यंग्यर्षि शरद जोशी, शिल्पायन, 10295, लेन नं. 1, वैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा, दिल्ली 110032, संस्करण 2013
26. नरेन्द्र कोहली, सबसे बड़ा सत्य, राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड कश्मीरी गेट, दिल्ली 6, संस्करण 2012
27. संपा. कन्हैयालाल नंदन, श्रेष्ठ व्यंग्य कथाएं, राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड कश्मीरी गेट, दिल्ली 6, संस्करण 2013
28. प्रेम जनमेजय, संकलित व्यंग्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज 11, बसंतकुंज, नई दिल्ली 70, संस्करण 2013
29. अश्विनी कुमार दुबे, शहर बंद है, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, सं. 2005
30. ज्ञान चतुर्वेदी, जो घर फूँके, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, सं. 2013
31. जवाहर चैधरी, माननीय सभा सदो, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, सं. 2007
32. संपा. श्री लाल शुक्ल, प्रेम जनमेजय, हिंदी हास्य व्यंग्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज 11, बसंतकुंज, नई दिल्ली 70, संस्करण 1997
33. डॉ. एन. चन्द्रशेखर रेड्डी, हिंदी व्यंग्य साहित्य, शबरी संस्थान, 1/5971, कबूल नगर, शाहदरा, दिल्ली 110032
34. डॉ. बापूराव घोंडू देसाई, हिंदी व्यंग्य विधा: शास्त्र और इतिहास, चिंतन प्रकाशन, नौबस्ता, कानपुर 208021, संस्करण 1990
35. डॉ. श्रीमती स्मिता चिपलूनकर, अलका प्रकाशन, 34/6, एच.ए.एल कालोनी, रमादेवी, कानपुर 208007
36. डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, साहित्य भारती, 211/1, विधन सारणी स्ट्रीट, कोलकाता संस्करण 1979
37. संपा. रा.वा. पाटील, एक व्यंग्य यात्रा, आलोक सांस्कृतिक अकादमी, संस्करण 1979
38. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन,

पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद 211001
संस्करण 2012

39. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद 211001 संस्करण 2007
40. संपा. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, ए 95, सेक्टर 5 नोएडा 210361, संस्करण 2010
41. डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य में हास्य रस, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, संस्करण 1973
42. संपा. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 2011
43. संपा. शिवप्रसाद मिश्र, काशीकेय, भारतेन्दु ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण संवत् 2065
44. डॉ. माँगीलाल उपाध्याय, व्यंग्य और भारतेन्दु, युगीन गद्य, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा संस्करण 1987
45. संपा. डॉ. संसार चन्द, हिंदी हास्य व्यंग्य, निबंध रूपयात्रा किताब महल, 8 भूतल 20, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 2, सं. 1992
46. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सी.के 56-35 विशालाक्षी भवन चैक, वाराणसी 221001, संस्करण 2004
47. शशि शुक्ला, हरिशंकर परसाई का व्यंग्य, मेधा बुक्स, एक्स 11, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032, संस्करण 2007
48. डॉ. मदालसा व्यास, हिंदी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सी के 56-35, विशालाक्षी भवन चैक, वाराणसी 22001, संस्करण 1999
49. डॉ. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जाटवाडा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली 110002, संस्करण 1979
50. डॉ. बैकुण्ठ नाथ ठाकुर, हिंदी कहानी का शैली विज्ञान, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, प्रेमचंद मार्ग, राजेन्द्र नगर, पटना 800016, संस्करण 1986
51. कार्ल मार्क्स फ्रेडरिक एंगेल्स, अनु. रमेश सिन्हा, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, जी 82, विजय चैक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092, संस्करण 2000

52. विश्वनाथ त्रिपाठी, देश के इस दौर में, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 2, संस्करण 2005
53. सत्यव्रत सिंह, साहित्य दर्पण पर विमर्श, चैखम्भा विद्याभवन, सी के 27/9 चैक, वाराणसी, संस्करण 1995
54. तुलसीदास, कवितावली, अशोक प्रकाशन,
55. संपा. अनु. के कृष्णमूर्ति, आनंदवर्धन ध्वन्यालोक, एम एल बी. डी. दिल्ली, संस्करण 1982
56. वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य, सामयिक प्रकाशन, जाटवाडा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली 2, संस्करण 1996
57. रवीन्द्र नाथ त्यागी, भित्तिचित्र, राजकमल प्रकाशन, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली 2, संस्करण 1999
58. डॉ. रामकुमार वर्मा, रिमझिम एकांकी, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661, दखनीय स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली 110002, संस्करण 2002
59. संपा. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भण्डार, लखनऊ, संस्करण 1975
60. रणजीत, हिंदी की प्रगतिशील कविता
61. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली 2, संस्करण 2006
62. संपा. त्रिलोकीनाथ दीक्षित, हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक हिंदी साहित्य, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1661, दखनीय स्ट्रीट नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली 2, संस्करण 1993
63. डॉ. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, साहित्य भारतीय
64. अमृतराय, मेरी श्रेष्ठ रचनाएं, ज्ञान भारती प्रकाशन, 3/12, एम 24 डी, विश्वतपुरी कालोनी नवलपुर बसही शिवपुर, वाराणसी, संस्करण 1977
65. डॉ. कृष्णदेव झारी, रस शास्त्र और साहित्य समीक्षा, भारतेन्दु भवन, चैखम्भा, वाराणसी, संस्करण 1985
66. सरोज खन्ना हिंदी कविता में हास्य रस, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद 211001 संस्करण 1969
67. डॉ. गंगा सहाय प्रेमी, भ्रमरगीत सार, हरीश प्रकाशन मंदिर, आगरा, संस्करण 1996

68. श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली 2, संस्करण 1999
69. संपा. विद्यानिवास, गोविन्द रजनीश, रहीम ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली 2, संस्करण 2004
70. संपा. रामजी यादव, भारतेन्दु संचयन, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1996
71. अब्दुल बिस्मिल्लाह, भारतेन्दु युगीन व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली 2, संस्करण 1998
72. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, कुरुरमुत्ता, राजकमल प्रकाशन, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली 2, संस्करण 2009
73. नागार्जुन, रत्नगर्भ, वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली 2, संस्करण 2004
74. प्रभाकर माचवे, तेल की पकौड़ियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली 110003, सं. 1992
75. शरद जोशी(एक) किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005
76. शरद जोशी(दो) किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005
77. रवींद्रनाथ त्यागी, अतिथि कक्ष, राजपाल एण्ड सन्ज, 1590, मदरसा रोड कश्मीरी गेट, दिल्ली 6, संस्करण 1997
78. गिलबर्ट हिगेट, द अनाटमी ऑफ़ सटायर, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस कोलम्बिया, संस्करण 1973
79. ए निकोल, अनु. जॉन हेली डे, थ्योरी ऑफ़ ड्रामा, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 1988
80. मेरीडिथ, आइडिया ऑफ़ कॉमेडी, गिलेन बीयर यूनिवर्सिटी ऑफ़ केलिफोर्निया प्रेस, लंदन, संस्करण 1965
81. जोनाथन स्विफ्ट, सं. बैजामिन मोटे, वैटिल ऑफ़ बुक्स, संस्करण 1726
82. मैथ्यू हागर्थ, सटायर, जार्ज ओल्मस, हिल्डेथिम ज्यूरीच, न्यूयार्क 1730
83. एल. जी. पोर्ट्स, कॉमेडी, केलिफोर्निया पब्लिशर्स, संस्करण 1974
84. आर्थर पोलाड, सटायर, मैथ्यू एण्ड कम्पनी, संस्करण 1970
85. स्टीफन लीलाक, हाउ टू राइट लंदन, कैम्ब्रिज कलेक्शन, संस्करण 1969

हिंदी शब्दकोश

1. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, परिभाषिक शब्दावली, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, संत कबीर रोड, वाराणसी-1, संस्करण 2005
2. डॉ. मुकेशचंद्र गुप्त, हिंदी शब्दकोश, लक्ष्मी प्रकाशन, जी-30/बी गली नं. -4, गंगा विहार, दिल्ली-110094, संस्करण 2013
3. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश(भाग 1), हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण 2013
4. सं. सत्यव्रत सिंह, हिंदी साहित्य कोश(भाग-1) चैखम्भा विद्याभरन, सी के 27/3 चैक वाराणसी, संस्करण 1995
5. सं. रामचंद्र वर्मा, संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, नई दिल्ली, संस्करण संवत् 2067वि.
6. कामिल बुल्के, अंग्रेजी हिंदी कोश, मुंशीलाल, मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, सं. 1987
7. सं. बट्टीनाथ कपूर, बृहत पर्यायवाची कोश, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम तल, महात्मा गाँधी रोड, इलाहाबाद, उ. प्र. 211001, संस्करण 2012

अंग्रेजी डिक्शनरी :

1. बैक्सटर्स, थर्ड न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी, मैरियम बैक्सटर्स यू.एस., संस्करण 2008
2. सी.टी. आनियन, द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, संस्करण 1966
3. हैरी शा, डिक्शनरी ऑफ़ लिटरेरी ट्रम्स, मैकग्रा हिल हाइयर एजुकेशन न्यूयार्क, संस्करण 1972

पत्र/पत्रिकाएं :

1. साहित्य अमृत, सं. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी
2. नया ज्ञानोदय, सं. लीलाधर मंडलोई
3. व्यंग्ययात्रा, सं. प्रेम जनमेजय
4. वीणा, सं. नगेन्द्र
5. नई कहानियाँ, सं. अमृतराय